कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

॥ श्रीमद्भागवतैकादशस्कंधभाषा ॥

॥ श्री ॥

सर्वेश्वरो विजयतेतराम्.

॥ अथ श्रीमद्भागवत भाषा एकादशस्कंधकी प्रस्तावना ॥

श्रीविष्णुभगवान्के अवतारभूत परमाचार्य श्रीवेदव्यासजीनें एक वेदका चार प्रकारसैं विभागकरिके तिन वेदनके वाक्यनकी व्यवस्थाअर्थ ब्रह्मसूत्ररूप उत्तरमीमांसा शास्त्रकूं रचिके वेदविषे अनधिकारी जो स्त्री शूद्र और द्विजबंधु (द्विजाधम) आदिक हैं तिनकूं वेदार्थका ज्ञान होवै इस हेतुसैं महाभारतादि इतिहास और अनेक पुराण अरु उपपुराणकूं रचते भये । तिनसैंबी जब असंतोषकूं प्राप्त भये तब नारदके उपदेशतैं नारायण ब्रह्मा और नारदकी परंपरासैं प्राप्त सर्व पुराणोत्तम भक्तिवैराग्य और ज्ञानके अनेक प्रसंगों करिके युक्त धर्म अर्थ काम अरु मोक्षके बोधक और शुक परीक्षित्के संवादकरिके युक्त श्रीमद्भागवत नामक पुराणकूं रचते भये । तिसके वृक्षके पेडकी न्याईं द्वादशस्कंध है । और वृक्षके शाखाकी न्याईं तीनसैं पैंतीस (३३५) अध्याय हैं और वृक्षके पर्णकी न्याईं अष्टादश सहस्र (१८०००) श्लोक हैं । तिनके मध्य प्रथमस्कंधमैं प्रसंगसहित शुकागमनरूप उपोद्घात है १ और द्वितीयमैं मनुष्य कृत्यके प्रश्नका उत्तर और भागवतके संप्रदायसहित पुराणका लक्षण है २ ऐसैं ग्रंथकी भूमिकारूप दो स्कंध कहिके पीछले दशस्कंधनमैं पुराणके उक्त दश लक्षण योजना किये हैं । तिनविषै तृतीयस्कंधमैं

महत्तत्वादिकनकी स्वरूपसैं और ब्रह्मांडरूपसैं सृष्टिरूप सर्ग है ३ चतुर्थमैं चराचरभूतनकी उत्पत्तिरूप विसर्ग है ४ पंचममैं उत्पन्न कीये वस्तुनकी मर्यादाके पालनसैं भगवत्‌का उत्कर्षरूप स्थान (स्थिति) है ५ षष्ठस्कंधमैं स्वभक्तनविषै भगवत्‌का अनुग्रहरूप पोषण है ६ सप्तममैं हरिआराधनादि शुभकर्मकी वासनारूप युक्ति है ७ अष्टममैं सत्पुरुषोंके धर्मरूप (१४) मन्वंतर हैं ८ नवममैं ईश्वरावतारचरित्र और ताके भक्तनकी सत्कथारूप ईशानुकथा है ९ दशममैं दुष्टराजनका संहाररूप निरोध (प्रलय) है १० एकादशममैं अविद्याकरिकैं आरोपित कर्ताभाव आदिककूं छांडिके ब्रह्मस्वरूपसैं स्थितिरूप मुक्ति है ११ और द्वादशममैं परब्रह्म परमात्मा इननामोंसैं प्रसिद्ध उत्पत्ति अरु प्रलयका आधाररूप आश्रय कहा है १२ इस रीतीसैं तृतीय आदिक दशस्कंधनमैं पुराणके दशलक्षणोंकी योजना है ॥

जैसै द्वादश सूर्यनमैं विष्णुनामक सूर्य श्रेष्ठ है। तैसै तिन द्वादशस्कंधनमैंबी साधनसहित मुक्तिका प्रतिपादक होनेसे एकादशस्कंध श्रेष्ठ है ॥ यामैं एकतीस (३१) अध्याय हैं। तिनमैं पहिले अध्यायविषे मुसलाख्यान है १ और द्वितीयसैं लेके पंचम अध्यायपर्यंत २–५ वसुदेव, नारद अरु जनक, नव योगेश्वरनका संवाद है ५ और षष्ठाध्यायविषे द्वारिकामैं ब्रह्मादिदेवनकरि कृष्णकी स्तुति और कृष्णके प्रति उद्धवका प्रश्न है ६ और सप्तमसैं नवमपर्यंत ७–९ दत्तयदुका संवाद है और ७–२९ पर्यंत, श्रीकृष्णउद्धवका संवाद है ७–२९ और पीछले दो अध्यायनविषै यदुकुलसंहारपूर्वक कृष्णका स्वधामके प्रति गमन कहा है ३०–३१ ॥ इसके प्रत्येक अध्यायका अर्थरूप विषय, नीचे धरी अनुक्रमणिकाविषै स्पष्ट

एकादश स्कंधः
नारदः
वसुदेव
उद्धव
श्रीकृष्ण
जनक
नवयोगिनः
यदु
अवधूत दत्तः
ऐलः
उर्वशी
कदर्यः
कदर्यः
जनः
सनकादयः
यादवयुद्धम्
राम
दारुकः
श्रीकृष्ण
व्याधः
द्वारका
वासिनः
दारुकः
यादवस्त्रिया
कृष्णपरिग्रहः
अर्जुन
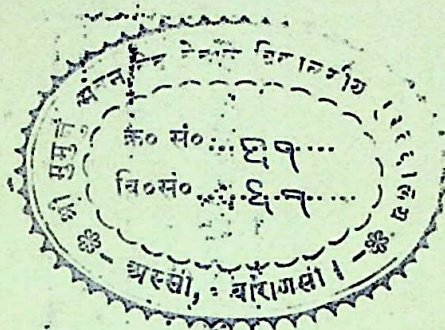
चतुरदासजी भये हैं तिनोंनैं सरल श्रेष्ठ और अनुभवयुक्त दोहा चौपाईबद्ध यहभाषा एकादशस्कंध किया है ॥ यह ग्रंथ बहुत प्राचीन है, याको (२६५) वर्ष भये। याके प्रत्येक अध्यायके आरंभमें प्रत्येक अर्थका दोहा। श्रीधरस्वामी उक्त श्लोकनके अनुसार सलेमाबाद निवासी पंडित श्रीधरने रखे है॥ सो परंपरासैं छपती आई है। अब टाइपके अक्षरोंमैं याकी प्रथम अवृत्ति अजमेर निवासी पण्डित रामलालात्मज हरिशंशकरशर्मासे पदच्छेद व शुद्ध करवायके हमनें छपाई है ॥ याके आरंभमैं एक एक अध्यायके अर्थके वर्णनरूण अनुक्रमणिका रखी है ॥ सो देखनेमेंसैं अभ्यासीजननकूं इच्छित अध्यायके अर्थका जल्दिही लाभ होवैगा ॥ या ग्रंथका अर्थरूपविषय याके पीछे धरी अनुक्रमणिकामैं स्पष्ट जनाया है॥ यह ग्रंथ ब्रह्मवेत्ता गुरुके मुखद्वारा पढ़नेसे भक्तिसहित ब्रह्मविद्याका जनक होवैगा। यातैं उक्त गुरुके मुखसैं पढना चाहिये यह विशेष विज्ञप्ति है।

आपका हरिप्रसाद भगीरथजी.

कालकादेवीरोड-रामवाडी.

मुम्बई
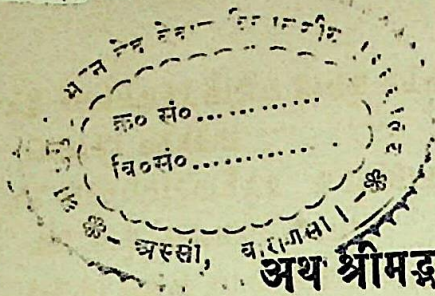
॥ श्रीकृष्णपरमात्मने नमः ॥

अथ श्रीमद्भागवतभाषा एकादशस्कंधकी अनुक्रमणिका ॥

एकतीस अध्यायनमें मुक्तिका कथन।

अध्याय अंक.	विषय.	पृष्ठ.

इति श्रीमद्भागवतगत भाषा एकादशस्कंधकी अनुक्रमणिका समाप्ता ॥

श्रीगणेशायनमः ॥ श्रीगोपालकृष्णायनमः ॥ अथश्रीएकादशस्कंधभाषालिख्यते ॥ दोहा ॥ हरिगुरुभक्तप्रसादतैं, श्रीधरमिलतविवेक ॥ एकादशइकतीसमैं, अधिकएकतैं एक ॥ १ ॥ वेदव्यासकृतमूलपैं, चतुर्दासकृतसार ॥ सुगमजानसबनरगहैं, लहैं सुतत्त्वविचार ॥ २ ॥ श्रीधरपहलेध्यायमैं, चतुर्दासकहिमान ॥ विप्रशापकेव्याजतैं, मूसलकौआख्यान ॥ ३ ॥ ॥ चौपाई ॥ संतदास सतगुरुके चरना ॥ तिनकौ गहौं सुदृढ करि शरना ॥ जातैं उपजै ज्ञान विचारा ॥ छूटै भर्म कर्म व्यवहारा ॥ १ ॥ बहुरों जगत जन्म नहि आउं ॥ तिनकौं निजानंदपद पाउं ॥ तिनकी आज्ञा हिरदै धरौं ॥ लोकहितारथ भाषा करौं ॥ २ ॥ श्रीभगवान विरंचिहिं भाष्यो ॥ सो विरंचि नारदसौं आष्यो ॥ सो नारद व्यास हि समुझायौ ॥ व्यास भासकरि शुक हि पढायौ ॥ ३ ॥ सो शुक कह्यौ परीक्षित आगे ॥ छूट्यौ द्वैत सुपन ज्यौं जागे ॥ सोइ सूत अजहुं विस्तरैं ॥ सहस्र अठ्यासी ऋषि मन धरैं ॥ ४ ॥ श्रीभगवान आप यह भाष्यौ ॥ तातें नाम भागवत राष्यौ ॥ आप मिलनकौ पंथ बतायौ ॥ या मारग बहुतनि हरि पायौ ॥ ५ ॥ ॥ दोहा ॥ व्यासदेव जो भागवत ॥ भाष्यो द्वादश स्कंध ॥ तिनमैं एकादश कह्यौ॥नैन लहैं ज्यौं अंध॥६॥ चौपाई ॥ एकादश इकतीस अध्याय॥तिनकौं बहुरों कहूं सुनाय॥यदुकुल नाश प्रथम मैं गायौ॥बहुत भांति वैराग्य उपायौ ॥७॥हरिपुरिपंथ कह्यो पुनचारी॥ जनकहि जोगेश्वरानि बिचारी ॥ सो नारद वसुदेव हिं कह्यौ ॥ पायौं ज्ञान परम पद लह्यौ॥८॥

छठे कृष्ण उधव प्रस्ताव ॥ तेइसकर निज ज्ञान सुनावं ॥ द्वै यादवविनाश विस्तार ॥ ए इकतीस ज्ञान निजसार ॥९॥ श्रीशुकदेव करत आरंभा ॥ श्रोता नृपति अडिग तज अंभा ॥ तब शुकजी यहाकियो विचारा ॥ ज्ञानबिना नाहीं उद्धारा ॥१० ॥ तातैं ब्रह्म ज्ञान समझाऊं ॥ प्रथम हिं दृढ वैराग्य उपाऊँ ॥ पंषी ऊडे पंष द्वै जैसें ॥ ज्ञान विराग मिले हरि ऐसें ॥ ११ ॥ राजा सुनो जगत सुख जैसें ॥ जिनसौं लागी भ्रमत नर ऐसें ॥ भए कोटि छप्पन कुल यादव ॥ ज्यौं घनघमाडि चहूं दिशि भादव ॥ १२ ॥ तिनकौं बहुत भांति विस्तारा ॥ गनती करत लहें कोपारा ॥ भवन आपनौ कमला कियौ ॥ नवनिधि जहाँ बसेरा लियौ ॥ १३ ॥ बहुरि सुधर्मा सभा मँगाई ॥ बैठें जहां न व्यापे काई ॥ तिनकी समता कौंन बताउं ॥ तीनलोकमें कहीं न पाऊं ॥ १४ ॥ तिनकी बात कहत अब ऐसी ॥ पलकमांहि सुपनेंकी जैसी ॥ च्यार घरीमें सब संघारे ॥ ज्यौं बुदबुदा पवनके मारे ॥ १५ ॥ रामकृष्ण तहँ कौतिकहारा ॥ आपुहिं आप सकल संहारा ॥ विप्रशापको कीनौ व्याजा ॥ ए सब कृष्णदेवके काजा ॥ १६ ॥ लोकनि कौं वैराग्य जनायौ ॥ उद्धव या द्वारा समुझायौ ॥ प्रथम भीम अर्जुन द्वै अनी ॥ दुष्ट नृपति अरु सेना हनी ॥ १७ ॥ या विधि भूकौ भार उतार्‍यौ ॥ नाम रूप यशकौं विस्तार्‍यौ ॥ जाकौं गहि पहुंचैं भवपारा ॥ आगें जन जे होहिं अपारा ॥ १८ ॥ बहुत भांति करि अद्भुतकर्मा ॥ थाप्यो जगत भागवत धर्मा ॥ या विधि सबके काज सँवारे ॥ तब हरिजी वैकुंठ पधारे ॥ १९ ॥

॥ दोहा ॥ ॥ ऐसी सुनि अद्भुतकथा, यदुकुलकौं द्विजशाप ॥ प्रश्न करी राजा तहाँ, लषवै तिनकौं पाप ॥ २० ॥ राजोवाच ॥ चौपाई ॥ ते तो विप्रभक्त थे

सारे ॥ परमदानि अरु सेवक भारे ॥ विप्रकोप कीनौ क्यौं पूरण ॥ जातें नाश भए सब तूरण ॥ २१ ॥ कौंन निमित्त शापसो कौंना ॥ कहो कृपा करि करुणा भौंना ॥ एकमना यादव ते सारे ॥ आपुहि आप कौंन विधि मारे ॥ २२ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ भूको भार हरनके काजा ॥ भूअवतार लीयो ब्रजराजा ॥ बहुबिध भूको भार उतार्‍यौ ॥ तब मनमैं गोपाल विचार्‍यौ ॥ २३ ॥ ज्यौं लगि हैं जादवकुल सारो ॥ त्यौं लगि नहिं भूभार उतार्‍यौ ॥ मम आधीन रहें ए सारें ॥ तातें निजकर बनें न मारें ॥ २४ ॥ दूजो कोई सके न मारी ॥ तातें कीजे यतन बिचारी ॥ ज्यौं बहु वांस वढें वनमांही ॥ पवन निमित्त पाई घर साहीं ॥ २५ ॥ आप आपुमें अग्नि उपावैं ॥ तासौं लाग सकल जल जावैं ॥ है त्यौं इहां पवन द्विज शापा ॥ क्रोध अग्नि तहां आपहि आपा ॥ २६ ॥ करि विस्तार होइ संघारा ॥ यह ठहरायो कृष्ण विचारा ॥ आए सकल ऋषीस्वरभवना ॥ निकट क्षेत्र करवायो गवना ॥ २७ ॥ कणव अंगिरा विश्वामित्र ॥ दुरवासा भृगु अत्रि अगस्त ॥ कश्यप वामदेव अरु नारद ॥ और बहुत ऋषी बहु विसारद ॥ २८ ॥ तहां सबें मुनि सुखसों बैठे ॥ जदुकुमार तहां छलकरि पेठे ॥ सांबहि बनिता भेष बनायो ॥ वस्त्रादिकनि उदर अधिकायो ॥ २९ ॥ अति बिनतीसौं चरणनि लागे ॥ पूछें प्रश्न खरे तिन आगे ॥ यह बनिता पूछे द्विजराजा ॥ सनमुष होत लगै अतिलाजा ॥ ३० ॥ निकट प्रसव आयो हें याकौ ॥ करो विचार आपमें ताकौ ॥ तुम त्रिकालदरसी सब जानौं ॥ कहा जनहि सो हमहिं बषांनौ ॥ ३१ ॥ तब करी क्रोध वचन ते भनै ॥ कुलनासन मुसल ए जनै ॥ जातें तुम बहुमदसों माते ॥ दुष्टबुद्धि होवो सब जातें

॥ ३२ ॥ बैन सुनत अतिं भय मन आयौ ॥ तबही तहां उदर छटिकायौ ॥ देष्यो तहां लोहको मुसला ॥ तब तिन जान्यो नाहीं कुसला ॥ ३३ ॥ ते सब बहुत भांति पिछताये ॥ ले मूसल राजापैं आये ॥ उग्रसेन सौं बोले बैना ॥ अतिमलीन नहिं जोरें नैना ॥ ३४ ॥ सुन्यो श्राप अरु मूसल देष्यौ ॥ जीवन सबनि गयो करि लेष्यौ ॥ मूसल रेत चूरण करवायो ॥ कृष्णन पूछयो समुद्र बहायो ॥ ३५ ॥ तातें रेत रह्यो अतितुच्छा ॥ ताकौं निगल गयो एक मच्छा ॥ ते चूरण लहरिनके मारे ॥ आए तीर भए तृण सारे ॥ ३६ ॥ धीवर एक जाल विस्तार्‍यो ॥ औरनिसंग मच्छसो पकर्‍यो ॥ ताके उदर लोह सोपायौ ॥ व्याध एक सो बान बनायौ ॥ ३७ ॥ हरिजी बात सकल सो जानी ॥ बहुत भली हिरदेमें मानी ॥ जद्यपि जोग अन्यथा करणें ॥ परि मनमांहि सकल संहरणें ॥ ३८ ॥ यहि विधि सकल आप मन भाई ॥ ताको फेरी सकै क्यूं काई ॥ निश्चै ऐसी थापी व्यापू ॥ यदुकुल षोऊं द्विजके शापू ॥ ३९ ॥ ॥ दोहा ॥ यह वैराग्य निरूपयो, ज्ञानकाज शुकदेव ॥ ज्ञान कहौं अब ज्यौं लह्यौ, नारद सौं वसुदेव ॥ ४० ॥ इतिश्रीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधे अष्टादशसाहस्र्यांसंहितायांयदुकुलश्रापानिरूपणंनामप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

॥ दोहा ॥ दूजे श्रीवसुदेवजी, पूछ्यो नारद पास ॥ नव योगेश्वर जनकप्रति, कीनौ ज्ञान प्रकास॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ चौपाई ॥ द्वारावती आप जहां पालकैं॥

तहां नहीं दक्ष श्राप कौ तालक ॥ नारद तहां निरंतर आवै ॥ कृष्णदेवके दरसन पावै ॥ १ ॥
जीवनमुक्त भजे नित जाकौं ॥ बंध्यौ जीव तजे क्यौं ताकौं ॥ जाकौं सकल लोकमें काल ॥
जहां तहां निसिदिन बिहाल ॥ २ ॥ मानवतन इंद्रियनिसौं राजा ॥ इतनि हरि सेवाके साजा॥
वंछे जांही ब्रह्मसुरराजा ॥ कृष्णदेवसेवाके काजा ॥ ३ ॥ ऐसी देह भाग्यतें पावें ॥ हरिकी
सेवा क्यौं छटिकावें ॥ पलमें काटे कालके पासा ॥ हरिकौं पावें हरिके दासा ॥४॥ एकवार वसु
देवके भवना॥नारद कियो कृपा करी गमना॥तिन बहुविध पूजा विस्तारी॥ता पीछैं तिन अस्तुति
करी ॥ ५ ॥ वसुदेव उवाच ॥ हे प्रभुजी तुमरो आगमना ॥ सब देहिनकौं सुषकौ भवना ॥
उपमा तुमही कौंनकी दीजें ॥ जिनकें दरस सकल भय छीजें ॥६॥ और देव देवें सुषदुषकौं ॥
तुमसें साधु प्रगट परसुषकौं ॥ जिनके हृदय विराजे रामा ॥ तिनतें होइ कौंन नहीं कामा ॥ ७ ॥
ऐसे फलदाइक सबदेवा ॥ ते तो लहें जेतिकरें सेवा ॥ ज्यौं कर ले दरपनकौं कोई ॥ आप
करें आभासे सोई ॥ ८ ॥ तुमसे साधु सदा सुषदाई ॥ जिनकी महिमा कही न जाई ॥ जद्यपि
दरसमें भयो कृतारथ ॥ पूछों देव तथापि हितारथ ॥ ९ ॥ जो भागवत धर्मसुनि जीवा ॥ जनम
मरण तजि पावे पीवा॥ जिन आचर्णनि तुमकौं देवा॥हरि प्रसन्न सो भाषौ भेवा॥१०॥पूर्व जनम
सेवा में करी ॥ माया मोह्यो समुझ न परी ॥ तब में हरि पुत्रकरी वर्‍यौ ॥ तांहिहु तें नहीं उद्ध
र्‍यौ ॥ ११ ॥ तातैं अब में तुमरी सरना ॥ सो कछू करो मिटे ज्यौं मरना ॥ कहांलों कहों जग
तके दुषा ॥ जामें सुपनमांही हुं नहीं सूषा ॥ १२ ॥ जहां जहां जाइ तहां तहां काल ॥ हरिबिन
जीव सदा बिहाल ॥ ऐसें वचन सुनें जब नारद ॥ तब ते बोले परम विशारद ॥ १३ ॥

॥ दोहा ॥ परम बचन वसुदेवके, सुनिकै भयो अनंद ॥ भागवत धर्म प्रकाशियो, बोले पूरनकंद ॥ १४ ॥ नारदउवाच ॥ चौपाई ॥ धन वसुदेव धन्य तुम बानी ॥ जाकरि पूछें सारंगपानी ॥ कोई होइ सकलजगघातक ॥ विष्णुधरमतें रहे न पातक ॥ १५ ॥ श्रवण कीरतन आदरध्याना ॥ अनुमोदनउ करैं सयाना॥सो पुनीत होवें ततकाला ॥ बहुरी परें नहि जमके जाला ॥ १६ ॥ तुम यह कियो बडो उपकारा ॥ मोहिं सुमरायो सिरजनहारा ॥ जाको श्रवण कीरतन एसौ ॥ अंधकारकौं सूरज जैसो ॥ १७ ॥ तुमसौं कहौं कथा इतिहासा ॥ जातें छूटे भवके पासा ॥ ऋषभदेव सुत नवयोगेसा ॥ तिनतें सुनीयो जनक नरेसा ॥ १८ ॥ सुनिके ब्रह्मपरायन भयो ॥ जन्म मरन संसार सब गयो ॥ अब उतपती कहत हौं तिनकी ॥ पूरण प्रीत रामसौं जिनकी ॥ १९ ॥ स्वायंभुमनु नृपती सिरताजा ॥ ताकौं तनय प्रियव्रतराजा ॥ ताकौं आग्नीध्र सुत भयौ ॥ नाभि जनम ताहीतें लयो ॥२०॥ ताके ऋषभदेव अवतारा ॥ जिन प्रगटायो ब्रह्मविचारा ॥ ताके पुत्र एकशत भए ॥ सकलवेदके पारहिं गए ॥२१॥ तिनमें बडे भरतसें नामा॥ जाके हृदय बसे नित राम॥ जातें भरतखंड यह कह्यौ ॥ तातें अजनाभ नामतें लह्यौ ॥ २२ ॥ प्रथम बीतहि भोगे भोगा॥समझ त्याग पुनि लीयो जोगा॥मन क्रमवचन करी हरिभक्ति ॥ तीजे जनम लही तिन मुक्ति ॥ २३ ॥तिनमें नव नव षंड नरेसा॥ एक अरु असी करम उपदेसा ॥ नव ते महाभाग अधिकारी ॥ सब तजि सेवें चरण मुरारी ॥ ॥२४॥ तजि अनर्थ अर्थ विस्तारें ॥या विधि जीव बहुत निस्तारें ॥ देह अतीत दिगंबर भेषा ॥ सदा हृदयमें एक अलेषा ॥२५॥ कवि हरि अंतरिक्ष पिप्पलायन ॥ आविर्होत्र प्रबुद्ध परायन॥

द्रुमिल चमस कर भाजन नामा॥इन नवनिको ब्रह्ममें धामा॥२६॥आपहिं आदि संसार पसारा॥ सबकों जानें सिरजनहारा ॥ द्वैतभावको कीनों फंदा ॥ याविधि विचरे सकलब्रह्मंडा ॥ २७ ॥ सुर अरु साध्य सिद्ध गंधर्वा ॥ किन्नर जक्ष नाग नर सर्वा ॥ सकल लोकमैं इच्छाचारी ॥ आडरहित सबमें अधिकारी ॥ २८ ॥ निमिष नाम जनकके सत्रा ॥ एकवार तिन कीनी यात्रा ॥ रविसी सोभित जिनकी देहा ॥ आवत देषें नृपति विदेहा ॥ २९ ॥ राजा अग्नि विप्र उठि धाए ॥ आगें व्हे लेवेकों आए ॥ क्रम क्रम आनि धरें सिंहासन ॥ क्रमहिं क्रमतें बेठे आसन ॥ ३० ॥ तबहि ताहि क्रम पूजा कीनी ॥ करि दंडोत प्रदक्षिणा दीनी ॥ श्रक आभरण वस्त्र बहुरंगा ॥ ते सब सोभे तिनके अंगा ॥३१॥ ज्ञान विचार ब्रह्ममय एसें ॥ ब्रह्मपुत्र सनकादिक जेसें ॥ तब कर जोरि भयो नृप ठाढौ ॥ बोल्यो वचन प्रेम अतिबाढौ ॥ ३२ ॥ दोहा ॥ तब नृपकों आनंद बढयो, कछु न रही संभाल ॥प्रेम मगन ह्वै बोलियो,बानी परम रसाल ॥३३॥ विदेह उवाच ॥ चौपाई ॥ ॥ तुम पार्षद परम हरिजीकै ॥ मैं जाने सब इनमें नीकै ॥ जीवनिके उद्धरवे कारज ॥ सकल लोकमें विचरो आरज ॥ ३४ ॥ धनमें धन मेरो अवतारा ॥ जातें पायो दरस तुमारा ॥ नाना योनि जीव यह पावें ॥ मानुष तनसों कबहुक आवें ॥ ३५ ॥ या विधि नरदेह बहु गेहें ॥ दुरलभ साधु संग नव लेहें ॥ जिनकें संग मिटें भवबंधा ॥ नैन अनंत लहें ज्यों अंधा ॥ ३६ ॥ प्राणनाथ हरि हृदे विराजें ॥ छूटे कर्म

भरम भय भाजैं ॥ आधोक्षण होवैं सतसंगा ॥ सोइ करे जगतभयभंगा ॥ ३७ ॥ तातैं
मम संदेह मिटावो ॥ परम क्षेम सो मोहि सुनावो ॥ भगवतधर्म कहो विस्तारि ॥ जो मैं हों
सुनबे अधिकारि ॥ ३८ ॥ जिनतें मिटें जगतभय भारी ॥ बहुरि आपकौं देत मुरारी ॥
ए सुनि बचन सबनि सुष पाए ॥ तब हीं मान दे बैन सुनाए ॥ ३९ ॥ दोहा ॥ ॥ नृपके
मन आनंद भयो, भाग्यो भरम अंदेस ॥ तब राजाकों प्रश्न करि, बोल्यो
कवि जोगेस ॥ ४० ॥ ॥ कविरुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ राजा प्रश्न कर्‍यो तुम ऐसो ॥
बडभागी पूछत हैं जेसो ॥ निरभय पद एक हैं देवा ॥ हरिके चरन कमलकी सेवा ॥ ४१ ॥
ताकौं छोडि करें नर जोइ ॥ दुषको मूल होत हैं सोइ ॥ जाईं जहां तहां दुष भारी ॥ काल
पास कहुं टरें न टारी ॥ ४२ ॥ तातें कहों भागवत धर्मा ॥ मिलें राम छूटें भवभर्मा ॥ श्रीमुष
श्रीभगवान सुनायो ॥ आप मिलनको पंथ बतायो ॥ ४३ ॥ मूरषहु जे होवें कोई ॥ इन पंथन
हरिपावे सोई ॥ श्रम नहि होइ विलंब न लागें ॥ भर्म निसा सुतो ज्यौं जागें ॥ ४४ ॥ आंषि
मूंदिउ ध्यावें कोई ॥ या हरिपंथन कछु भय होई ॥ हरि मिलनको मारग एहा ॥ हरिभाजि
मुक्त होइ यह देहा ॥ ४५ ॥ हरिकी भक्ति सबनितैं न्यारी ॥ कोटि विघनतैं टरै न टारी ॥
अजर नाम है भक्ति पियारि ॥ तातैं पार होइ नरनारि ॥ ४६ ॥ हरि मिलनेंको मारग कहौं ॥
तेरे उरको संसा दहौं ॥ मन क्रम बचन बुद्धि अरु चित्ता ॥ होइ सूभावहुतैं जो नित्ता ॥ ४७ ॥
सो सब हरि ही समर्पन करैं ॥ यौं भागवतधर्मनि विस्तरैं ॥ जब यह जीव हरि हि वीसर्‍यो ॥
तब हरिकी माया आवर्‍यो ॥ ४८ ॥ तब आपनो स्वरूप भुलायो ॥ आप मानि तन मे मन

लायौ ॥ द्वैतभाव तब उपजे मनमें ॥ ताहि तें यह मरी मरी जनमें ॥ ४९ ॥ तातें बुध सेवे हरिचरना ॥ जातें मिटें जनम अरु मरना ॥ सोधि लेइ उत्तम गुरुदेवा ॥ हरिसों जानि करै नित सेवा ॥ ५० ॥ सो ज्यौं ज्यौं आचर्ण बतावैं ॥ त्यौं त्यौं हरिसौं हेत लगावैं ॥ कपट न भजे तजें सबकामा ॥ छूटें जगत मिलें तब रामा ॥५१॥ द्वैत कछु है ये नहि राजा ॥ आभास्यो सो मनको काजा ॥ जेसें मृषा मनोरथ सुपना ॥ मनहीं करिते दोनों उपना ॥ ५२ ॥ हे कछु नाहीं परिहे सोहें ॥ ताके संग लागि सब मोहें ॥ तो संकल्प विकल्प न कीजे ॥ मन दृढ राषि रामरस पीजे ॥ ५३ ॥ हरिके जनम कर्म गुण नामा ॥ सुने कहें सुमरें सब जामा ॥ तजे लाज होवे निहसंगा ॥ मगन रहे नित हरिके रंगा ॥ ५४ ॥ ऐसें भजत प्रेम अधिकावें ॥ सब तन रोमांचित व्हें आवें ॥ गद गद शब्द अटपट बेंना ॥ द्रवें चित्त जल बरषें नेना ॥ ५५ ॥ रोवें हसें उंचें सुर गावें ॥ कबहुं मौन गही रहिजावें ॥ लोक बेद कुल लाज न जांने ॥ ज्यौं उन मत्त विवस यौं ठानै ॥ ५६ ॥ दसदिसि सरित सिंधु नग नागा ॥ रवि शशि तारा हंसरु कागा ॥ क्षिति जल पावक पवन अकासा ॥ जो कछु देषे हरिके दासा ॥ ५७ ॥ हरिकौ रूप सकलकौं जांनै ॥ जहां तहां पर नाम हिं ठांनै ॥ कबहूं भूलन भासै आना ॥ भयो अनन्य भजें भगवाना ॥ ५८ ॥ ज्यौं ज्यौं बढैं कृष्ण अनुरागा ॥ त्यौं त्यौं ओर सकलको त्यागा ॥ ज्यौं ज्यौं अनुभोजन प्रतिग्रासा ॥ तोष पोष अरु भूषविनासा ॥ ५९ ॥ या विधि करते साधन भक्ति ॥ हरिजीसूं बाढें अनुरक्ति ॥ तब कछु और भूलि नहीं भासैं ॥ तब हिरदेमें ज्ञान प्र कासैं ॥६०॥ ब्रह्म एक दसहूं दिशि देषें ॥ द्वैतभाव कर कदें न लेषें ॥ ऐसें अंग भागवतमांहीं ॥

सोहरि में हें जगमें नाहीं ॥ ६१ ॥ दोहा ॥ ए सुनि कविजीके बचन, कीनौ प्रश्न बिदेह ॥ अब भाषो भागवतके, लच्छन करुनागेह ॥ ६२ ॥ विदेहउवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ प्रभुजी कहो भागवत लच्छन ॥ जिन बस होवें राम बिलच्छन ॥ कोन धर्म हिरदें दृढ राषें ॥ क्यौं आचरें कोंन बिधि भाषें ॥ ६३ ॥ कोंन सुभाव निरंतर तिनकें ॥ द्वैतभाव नाहीं उर जिनके ॥ बोले हरि जोगेश्वर दूजे ॥ नृपके बचन बहुत तिन पूजें ॥ ६४ ॥ हरिरुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ स्थावर जंगम सूक्षम थूला ॥ एक प्रकृति सकलको मूला ॥ सो इक आतम के आधारा ॥ सो आतम अंस निराकारा ॥ ६५ ॥ हरिजीतें उपजें ए दोई ॥ अंत लीन हरि हीमें होई ॥ ताते अवहूं हरिकों जाने ॥ द्वैतभाव कबहूं नहीं आने ॥ ६६ ॥ ज्यौं सागर बुदबुदा तंरगा ॥ यौं सब जगत जगतपतिसंगा ॥ याबिध जांनी भयो जो थीरा॥सो हरि जन उत्तम हें बीरा ॥ ६७ ॥ जाकौं हरिसौं निहचल प्रेमा ॥ अरु हरिजनसंगति नित नेमा ॥ सब जीवनिपरि करुणा आनें ॥ सब उद्धरे हदें यो जानें ॥ ६८ ॥ जो कोउ तापरि दोषहीं ठांनें ॥ कहां तजेके ज्यौं त्यौं छांनें ॥ निसदिन रहें रामरंगराता ॥ सो हरिजन मध्यमही ताता ॥ ६९ ॥ जो मूरतिमें हरिकों जांनें ॥ मन क्रमबचन आन नहि आंने ॥ ताकौं पूजे हित चित लाई ॥ कछू न मागें सहज सुभाई ॥७०॥ पें हरि जन न भजे हरि जांनी ॥ सतगुरुबिना नाहि पहिचांनी ॥ सर्वातम हरिकों नहि जांनें ॥ सो प्राकृत जन साधु बषांनै ॥ ७१ ॥ बहुरि कहूं उत्तम हरिभक्ती ॥ ताहि पुरुषहु जे आसक्ती ॥दरसपरसतें कारज सारें ॥ ते हरिजन भवसागर तारें ॥ ७२ ॥ कृष्ण बसे जाके मनमांहीं ॥ ओर कछु सत जाने नाहीं ॥ जो क

छु कहें सुने अरु देखें ॥ इंद्रियकृत माया सब लेखें ॥ ७३ ॥ सो हरिजन उत्तम नरदेवा ॥
तातें मिलें निरंजन भेवा ॥ जो जन ब्रह्मविचारहि पायौ॥आप समझि सुषमांही समायौ॥७४॥
जनम मरन देहको जानें ॥ क्षुधा पिपासा प्राणहि मानें ॥ तृष्णा बुधि रु भय सो मनको ॥
यह लच्छन उत्तम हरिजनको ॥ ७५ ॥ कर्मवासना अरु सब कामा ॥ तिनकौ भूलि न जाने
नामा ॥ वासुदेवमें कीनौ वासा ॥ सो कहिए उत्तम हरिदासा ॥ ७६ ॥ जिनको जाति बरन
कुलकर्मा ॥ लोक न वेद नही आसरमां ॥ भूलिदेह अभिमान न आवें ॥ सो उत्तम हरिदास
कहावें ॥ ७७ ॥ किसी वस्तुपरि ममता नाहीं ॥ अरु तनको अभिमान न माहीं ॥ सब भूतनि
परि समता आनें॥ सो उत्तम हरिदास बखानें ॥ ७८ ॥ अष्टसिद्धि त्रिभुवन सुष आवें ॥
परि सो कबहूं मन न डुलावें ॥ लवनिमिषार्द्ध तजें नहि चरना ॥ गुणातीत निरभय पदसरना
॥७९॥जाकौं शिव विरंचि अरु देवा॥तन मन लाई करें नित सेवा॥ तेऊ जाके चरण न पावें ॥
ताकौं जन क्यौं करि छटिकावें॥८०॥हरिके चर्ण चंद्रचित जाकौं ॥ ईहाताप ऊठै क्यौं ताकौं ॥
एसो उत्तम हरिजन कहिए ॥ ताके संग परम पद लहिए ॥८१॥जाकों हरिजी निमिष न त्यागें ॥
प्रेमदोरि बांधे क्यौं भागें ॥ सो कहिए उत्तम हरिदासा ॥ कदें न तजिए ताकौ पासा ॥ ८२ ॥

॥ दोहा ॥ त्रिविध भक्त लच्छन कहैं, नृपसौं हरि योगेस॥ तब मायाके जानबे,
कीनों प्रश्न नरेस ॥ ८३ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे
भाषायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

दोहा ॥ कविहरिके वचन सुनि, पूछत हैं नृपराय ॥ अंतरिक्ष प्रबुद्धमुनि, पिप्पलायन ऋषिराय ॥ १ ॥ आविर्होत्र विचारते, कह्यो तत्त्व निजसार ॥ श्रीधर तीजेध्यायमें, हैं योगेश्वर च्यार ॥ २ ॥ राजोवाच ॥ चौपाई ॥ अब करि कृपा कहो हरिमाया ॥ जिन यह सकल लोक भरमाया ॥ तुमरे मुषसरोजकी बांनी ॥ हरिकि कथा अमृतमय जानी ॥ १ ॥ ताकौं पिवत तृप्ति नहीं मानौ ॥ सदा पीउं ऐसि मन जांनो ॥ भव के ताप तपत जो देही ॥ ताकौं परम औषधी एही ॥ २ ॥ ऐसें सुनी नृपतिके बैंना ॥वक्ताको उपजावत चैंना ॥ तब बोले बानी अभिरामा ॥ तीजे अंतरिक्षसें नामा ॥ ३ ॥ ॥ अंतरिक्ष उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ ॥ प्रथमहि दूजो हुतो न नामा ॥आपुहि आप बिराजे रामा ॥ ॥ दयासिंधु मनमांहि बिचारा ॥ तब यह कर्‍यो सकल संसारा ॥ ४ ॥ पंचभूत करि रचि या देहा ॥ बांध्यो तहां आतमा एहा ॥ जातें पहिलें भोगवें भोगा ॥ बहुर्‍यो दुषित होई भवरोगा ॥ ५ ॥ तातें मोसों चित्त लगावें ॥ मेरो निजानंद पद पावें ॥ मगन रहे मेरे आनंदा ॥ बहुरि नहीं पावें दुषद्वंदा ॥ ६ ॥ याहीतें यह भव विस्तार्‍यौ ॥ भीतर अंस आपनो डार्‍यौ ॥ इंद्रिय दस अरु मन विस्तारैं ॥ बहु भांतीके विषय सवारैं ॥ ७ ॥ सो यह अंस इंद्रियनि मनसौं ॥ भोग भोगवें सब या तनसौं ॥ आप भूलि भोग न मन दीनौ ॥ तब अभिमान देहकौ कीनौ ॥ ८ ॥ भोगनिमित्त कर्म विस्तारैं ॥ तिनके फल सुषदुष भए भारैं ॥ तिन कर्मनितें जोनि अनंता ॥ जनम मरणकौं लहें न अंता ॥ ९ ॥ प्रलयअवधिलौं भ्रमें निरंतर ॥ लीन होइ पुनि माया अंतर ॥ सृष्टिसमय बहुर्‍यो तन पावें ॥ भवसागरको अंत न आवें ॥ १० ॥ भ्रमत भ्रमत

प्रलयअवधी आवें ॥ तब सब नासकाल मन भावें ॥ तब सत बरस न वरषें जलधर ॥ तेज तपें तहां द्वादस दिनकर ॥ ११ ॥ बहुऱ्यों अग्नि शेषसुषनिसरें ॥ प्रलयपवन मिलि जहँ तहँ पसरें ॥ सारो लोक भस्म तब करे ॥ बहुरों प्रलय मेघ संचरैं ॥ १२ ॥ हाथीसूंढधार जल वरषें ॥ यौं अखंड वीते सत वरषें ॥ तब होवें विराटको नासा ॥ आतम करे प्रकृतिमे वासा ॥ १३ ॥ जो अभक्त होवें ब्रह्माहू ॥ तोहूं ब्रह्ममांहि नहि जाहूं ॥ जे हरिभक्तसु हरिकौं पावें ॥ ओर प्रकृतिमें सकल समावें ॥ १४ ॥ पवन करें जब गंधही क्षीना ॥ भूमि होइ तब जलमें लीना ॥ त्यौंहीं रसकौं हरें समीरा ॥ तातें मिलें तेजमें नीरा ॥ १५ ॥ अंधकार जब रूपहिं हरे ॥ तेज तबै पवन संचरें ॥ बहुरि स्परस हरे आकासा ॥ पवन करें तब नभमें वासा ॥ १६ ॥ काल कीयो जब शब्दहि क्षीना ॥ तामस अहंकार नभ लीना ॥ तामस अहंकार मन मिलें ॥ राजस अहंकार दोउगलें ॥ १७ ॥ इंद्रिय अरु राजस अहंकारही ॥ सत्व अहं कीनौ अहारहीं ॥ बुधी देव सात्विक अहंकारा ॥ महत्तत्त्व कीनौं संहारा ॥ १८ ॥ महत्तत्व सो प्रकृतिहि मिलें ॥ याविधि काल सकलकौं गिलें ॥ ऐसी ही विधि वारंवारा ॥ उतपति प्रलयन अंत न पारा ॥ १९ ॥ यह सब हरिकी माया करें ॥ उपजावें प्रतिपालें हरें ॥ मे तुमकों संक्षेप सुनाई ॥ बहुरी प्रश्न करो मन भाई ॥ २० ॥ ॥ दोहा ॥ ॥ ऐसी सुनी माया प्रबल, उपज्यो नृपके भीत ॥ तब पूछी आधीन है, ता तरवेकी रीत ॥ २१ ॥ विदेह-उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ ॥ ऐसी प्रबल ईशकी माया ॥ जिन यह सकल लोक भरमाया ॥ ताकौं

तुमसैं ज्ञानी तरैं ॥ हमसैं देही क्यौं निस्तरैं ॥२२॥ ताकों सुषें तरिए देवा ॥ सो करि कृपा बतावो भेवा ॥ ए सुनि वचन नृपतिके सुधा ॥ तब बोले चोथे प्रबुधा ॥ २३ ॥ ॥ प्रबुद्ध उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ सकल मनुष्य सुषनिके काजा ॥ करें कर्म आरंभहिं राजा ॥ तिनतें केवल दुष अधिकारा ॥ अबहूं अरु आगें विस्तारा ॥ २४ ॥ पाए हूं धन दुःष अपारा ॥ निशदिन चिंता कौं अधिकारा ॥ सोउ अतिदुर्लभ नहीं आवें ॥ जो आयो तो थिर न रहावें ॥ २५ ॥ त्यौंहीं ग्रह-कुंटब सुतदारा ॥ पलकमांहि ढइ जाइ पसारा ॥ ज्यौं पंथमांही मिलना होई ॥ घरिमांही विछरें सब कोई॥२६॥जो कछू इहां कर्म कमावें॥तिनतें ज्योनि ज्योनि दुष पावें॥ इनमें कोई नही छोडावें ॥ आप आपकौ सब कोई जावें ॥ २७ ॥ याहिविधि नश्वर परलोका ॥ स्थिर न रहें बिधिहुंको ओका ॥ छोटे बडे नीच बहु भांती ॥ तिनके मनकी मिटें न कांती ॥ २८ ॥ मद मत्सर अरु चाहे मांना ॥ काम क्रोध अरु लोभ समाना ॥ तृष्णा बंधे कछु नही जांने ॥ आप आपुमें जुधहिं ठांने ॥ २९ ॥ काल पाई उहांते परें ॥ बहुरि आई इहाँ अवतरें ॥ यों बिचारि बैराग उपावैं ॥ तबहि सोधि गुरुसरणें आवैं ॥ ३० ॥ ब्रह्म ज्ञानिता सेवा ठांनैं॥आलस कपट कामना भांनै ॥ तातैं सीषें भक्तिके अंगा ॥ जिनतें हरिजी तजे न संगा ॥ ३१ ॥ शब्दब्रह्म सकल जो भाषें ॥ परब्रह्म नित हृदये राषें ॥ ऐसें गुरुबिन ज्ञान न पावें ॥ तातें सोधि गुरुपें आवें ॥३२॥ सबतें मनको संग मिटावें ॥ उलटि साध संगतिसों लावें ॥ सम मित्र उत्तम बहु माने ॥ ब्रह्म ज्ञानी सब पूजा ठाने ॥ ३३ ॥ सौच पाठ तप मौन तितिक्षा ॥ बहुविधि लेवें गुरुसों शिक्षा ॥ ब्रह्मचर्य अरु कौमल रहना ॥ हिंसा त्यागि द्वंद्व सब सहना ॥ ३४ ॥ एकाकी आश्रम नहिं

बाँधें ॥ वस्त्र टूकके बलकल साधें ॥ जहां तहां आतमचेतन देषे॥परमातमा नियंता लेषें॥३५॥ ग्रंथभक्तिकी श्रद्धा करैं ॥ निंदा राग द्वेष परिहरैं ॥ देहवचन अरु मनकौं दंडैं ॥ सम दम सत संतोष न छंडैं॥३६॥जनम कर्म अरु गुण हरिजीकें॥सदा सुनेंउ धारणजीकें॥त्यौंही कहें निरंतर ध्यावें॥ सोई करें हरिहि जो भावें ॥३७॥ जप तप जोग जज्ञ व्रत दाना॥ तन मन धन दारा सुत प्राना॥जो कछु सो सब हरिहिं निवेदें ॥ याविधि सकल कर्मकौं छेदें ॥३८॥ थावर जंगम हरिमय जांनें ॥ परिसेवा संतनकी ठांनें ॥ मिली परस्पर हरिगुण गावें ॥ निसदिन कहत सुनत सुष पावें॥३९॥ पलपल प्रीति बढें हिय फूलें ॥ गुणनि संभारत तनकौं भूलें॥दूजा भाव न कबहूं उपनें॥प्रेम मगन जाग्रत अरु सुपनें॥४०॥ ऐसें प्रेमभक्तिकौं पावें॥पलपल तन पुलकित व्हे आवें ॥ कबहुं हरि चितवनतें रोवें॥कबहुं हसें आनंदित होवें॥४१॥कबहूं नाचें कबहूं गावें ॥ लजारहित ज्यौंज्यौं मन भावें ॥ कबहूं सुमरिसुमरि मिलि जावें ॥ स्वासशब्द बाहर नहीं आवें ॥४२॥ याविधि लेवें गुरुसों शिष्या ॥ गुरुशिष्यनकी यह परिष्या॥ब्रह्मपरायन ता जन करें॥ माया भूलिन आवें नेरें ॥४३॥ दोहा॥ए सुनि वचन विदेहके, हृदय बढयो आनंद॥प्रश्न करी तब ब्रह्मको, ज्यौं छूटें भवफंद ॥४४॥ विदेह उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ ब्रह्मवेतनमें तुम अधिकारी ॥ तुम हो यह में हृदय विचारी॥ तातें कहो ब्रह्मको रूपा॥जाने जाहि मिटे भ्रहकूपा॥४५॥परमातम रु ब्रह्म भगवाना ॥ ए सब एक किधो हें नाना ॥ सबजीवनकौं अति करूनायन ॥ तब बोले पंचमें पिप्पलायन ॥ ४६ ॥ पिप्पलायन उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ सूषम थूल सकल संसारा ॥ जाकी शक्ति सकल पसारा ॥ उत्पत्ति प्रलय करें वह याकौं॥ काहूंतें जनमनही ताकौं ॥ ४७ ॥ जाग्रत

सुपन सुषोपति तुरिया ॥ चहुमें सदा एक रस पुरिया॥ इंद्रिय देह हृदय अरु प्राना ॥ जातें चेत
न व्हे वरताना ॥ ४८ ॥ जैसें यह जड लोहावरतें ॥ चुंबकसंग बहुत विधिनिरतें ॥ सो भगवा
न ब्रह्म पुनि सोई ॥ सो परमातम जांने कोई ॥ ४९ ॥ मन अरु बुद्धि चित्त अरु प्राना ॥ इंद्रि
य देह शब्द अभिमाना ॥ कोइ तहां पहुंची नही सकै ॥ जात जातहि वैषरी थकै ॥ ५० ॥ जै
सैं पावक लोह तपायौ ॥ पावकसमान तेज तिन पायौ ॥ सबप्रकासैं सबकौं जालैं ॥ परि पाव
कपर जोर न चालैं ॥ ५१ ॥ यौं सब इंद्रिय हृदय अचेतन ॥ ताके संगहुतें सब चेतन ॥ ओर स
कल अर्थनिकौं जांने ॥ कौं न शक्ति जो ताही पछांनै ॥ ५२ ॥ लेले अर्थ बखांने वेदा ॥
परि प्रत्यक्ष न जानें भेदा ॥ यह नहि यह नहिं यह नहि होई ॥ यातें परें सत्य हैं सोई ॥ ५३ ॥
सूषम थूल न जावे बरनी ॥ गगन पवन पावक जल धरनी ॥ नहिं मन बुद्धि चित्त हंकारा ॥
चिदानंदमय सबके पारा ॥ ५४ ॥ नासो बाल वृद्ध नही जुवा ॥ नासौं बिनसैं ना सो हुवा ॥
त्रिया पुरुष अरु क्लीब न होई॥सुर नर नाग असुर नहिं सोई॥५५॥रक्त पीत अरु स्वेत न हरिता॥
जाति बरन आश्रमनहि धरिता ॥ सीत उष्ण चंदनही सूरा ॥ दिवस न रात निकट नही दूरा
॥ ५६ ॥ सुषदुषरहित बसैं सबमांही ॥ आपुहि आप लिपैं कहुं नाहीं ॥ बंध्यो भावसौं आतमअं
सा ॥ सुन्य सरोवर विलसे हंसा॥५७॥ गगन पवन पावक अरु नीरा ॥ धरनिबंध ए किए शरीरा
॥ पंचवस्तु ए पंचो बंधा ॥ शब्द स्परस रूप रस गंधा ॥ ५८ ॥ इंद्रिय दश अरु तिनके देवा ॥
सातिक राजस तामस भेवा ॥ मन बुधि चित महत्तत्व अहंकारा ॥ एकप्रकृतिकौ सकल पसा
रा ॥५९॥ एक ब्रह्म हैं ताकौ कारण ॥ विन इच्छा सबकौ विस्तारण ॥ ज्यौं भुवमें बहु घट उप

जावैं ॥ भुवमें रहि भुवमांहि समावैं ॥ ६० ॥ ते सब घट दीसे विधिनाना ॥ परिभुव छोड कछू नहि आना ॥ त्यौं सब जगत आदि मध अंता ॥ ओर न कछू एक भगवंता ॥ ६१ ॥ सो नहिं उपजें बिनसें नाहीं ॥ बालजुवादिक परें न छांही ॥ बढें न घटें चलें नहिं डोलें ॥ रोष न तोष मौन नहीं बोलें ॥ ६२ ॥ जहं तहं पूरण परम अनूपा ॥ चिदानंद विज्ञान सरूपा ॥ देहभेद बहुधा सो सोहें ॥ ज्ञानबिना सारो जग मोहें ॥ ६३ ॥ जेसें पवन एकहीं प्राना ॥ दस इंद्रिय संग दीसैं नाना ॥ उद्भिज स्वेद जरायुज अंडा ॥ चारि षान पूरन ब्रह्मंडा ॥ ६४ ॥ लिंगदेह जा देहहि जावैं ॥ प्राणवायु तहं आनि मिलावैं ॥ शब्द स्परस रूप रस गंधा ॥ मन अहंकार बुद्धि चित्त बंधा ॥ ६५ ॥ लिंगदेह इनही नवकौं हें ॥ इनके मिटें निरंतर सोहें ॥ निद्रावस सुषपति जब आवें ॥ तब यह लिंगदेह छटिकावें ॥ ६६ ॥ अहंकार ममता कहुं नाहीं ॥ मन अरु बुधि चित सबजांही ॥ तब अद्वैत एक हें सोई ॥ द्वैतभावकौं नाम न कोई ॥ ६७ ॥ मन बुधि चित अहंकार न रहें ॥ जागें प्रथम बात जो कहें ॥ जो करनो तो जेतो कीयौ ॥ आगें पीछे लीनो दीयौ ॥ ६८ ॥ जातें सो हरि जाननहारा ॥ याविधि कीजें ज्ञानविचारा ॥ परिवासना सहितहि रहें ॥ तातें देह फेर करी गहें ॥ ६९ ॥ लिंग संरीर सहीत वासना ॥ तांहितें मिटे न भवसासना ॥ तातें हरिचर्णनिं चित लावैं ॥ ओर सकल बंधन छटिकावें ॥ ७० ॥ याविधि सकल चित्तमल नासें ॥ रविसमान तब ब्रह्म प्रकासें ॥ जो नर प्रथम भक्ति नहिं जानें ॥ तो वह कर्म जोगकौं ठानें ॥ ७१ ॥ कर्मजोगतें उपजें भक्ति ॥ तब हरिचरण बढे आसक्ति ॥ तातें होइ ब्रह्मप्रकासा ॥ छूटैं कालजाल भवपासा ॥ ७२ ॥ ॥ दोहा ॥ ए पिप्पलायन बेन

सुनि, कीन प्रश्न मिथिलेस ॥ कर्मजोग अब करि कृपा; कहो परम,जोगेस ॥ ७३ ॥ ॥ जनकउवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ ॥ कर्मजोग अब कहो गुसांईं ॥ में आयो तुमरी सरनांईं ॥ जाके किए कटें सब कर्मा ॥ उपजें ज्ञान होइ निह भर्मा ॥ ७४ ॥ दूजी प्रश्न कहो तुम एहा ॥ याको मेरे अतिसंदेहा ॥ ब्रह्मपुत्र सनकादिक चारी ॥ ब्रह्मपरायन ब्रह्मविचारी ॥ ७५ ॥ एकवार कृपाकरि आए ॥ पितासमीप दरस में पाए ॥ यह प्रश्ण में तिन सों कीनी ॥ उत्तर न दियौ हृदे धरिलीनी ॥ ७६ ॥ नही बोले सो कौनें कारन ॥ यह भाषो भवसागरतारन ॥ ऐसें वचन नृपति जब भाषें ॥ आविरहोत्र छठे तब आषें ॥ ७७ ॥ ॥ आविर्होत्रउवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ राजा सुनहु कर्मगति गहना ॥ तातें जहं तहं बने न कहना ॥ यह ज्यौं हे त्यौं वेद बषांनें ॥ तातें याहि न कोई जांनें ॥ ७८ ॥ वेद प्रगट करता हरिदेवा ॥ ऋषि अरु पुरुष लहे को भेवा ॥ भेव लहें बिनु मिटे न मरनां ॥ लहे भेव पावे हरिचरनां॥ ७९ ॥ जातें तुमहु हुतें तब बाला ॥ तातें कह्यो न कर्म बिसाला ॥ अबहिं कहों सुनो चित लाई ॥ जांनें जाहि ज्ञान अधिकाई॥८०॥कर्मजोग हें तीन प्रकारा॥कर्म अकर्म विकर्म पसारा॥हरिनिमित्त सो कहिए कर्मा॥हरिबिहीन सो सकल विकर्मा॥८१॥सो अकर्म जो दोऊ त्यागें ॥ ज्ञान बिना सुष इहां न आगें॥कर्म करत छूटें सब कर्मा॥उपजें ज्ञान मिटें भवभरमा॥८२॥कर्म तजनकौं कर्म ग्रहावें ॥ तातें बेद न समज्यौं आवें ॥ पहिलें स्वर्गादिक फल भाषें ॥ आगें सकल दूरि करि नाषें ॥ ॥ ८३ ॥ज्यौं कोइ बालक रोगी होवें॥ओषद कटुक नाम सुनि नी रोवें॥ताकों लाडू पिता दिषावें ॥ ओषदकाज लोभ उपजावें ॥ ८४ ॥ ओषदकौ फल लाडू नाहीं ॥ ओषद पिये रोग सब

जाहीं ॥ त्यौं स्वर्गादिक लोभ दिखावैं ॥ कर्मनासकों कर्म करावैं ॥ ८५ ॥ स्वर्गादिक फल पहुपित बानी ॥ तोरे पहुप होत फलहानी ॥ तातें करें बेदके कर्मा॥ हरिके हेत बडो यह धर्मा॥८६॥ और कछू फल भूलन जानै॥हरिके हेत कर्म सब ठांनैं ॥ में करता यों कदे न भाषैं॥जो कछु सो हरिकों करी राषैं ॥८७॥ याविधि प्रेमभक्ति उपजावें॥तब सब कर्म आपुहीं जावें ॥तबहीं प्रगटें ज्ञानप्रकासा॥मिलें राम छूटें भवपासा ॥८८॥ बैदिक पंथ कह्यो में तोसौं ॥अब सुनि तंत्रिपंथ पुन मोसौं ॥ हृदे गांठ काटी जो चहें ॥ सो विधिसों यों पूजा गहें ॥ ८९ ॥ बेदमिलित भाषत हों पूजा ॥ जातें मिटें सकल भ्रम दूजा ॥ श्रीगुरुसों परसाद हिं पावें ॥ सो ज्यौं ज्यौं सब विधिहिं बतावें ॥ ९० ॥ जा मुरतीपरि इच्छा होई ॥ हरि जानी करि पूजें सोई ॥ अतिपवित्र हुइ करे अस्नाना ॥ मनकी तजें वासना नाना ॥ ९१ ॥ वायु अपान छीकजंभाई ॥ ओर पवन गुण उठे न काई ॥ सनमुष बेठि करें तनरिच्छा ॥ अंगन्यास मंत्र पढि इच्छा ॥ ९२ ॥ आसन सुद्ध साज सेवाकी ॥ सब ले बैठें तजे न बाकी ॥ विष्णुरूप प्रतिमामें आने ॥ अर्घ पाद अरु विष्टर ठांने ॥ ९३ ॥ मूलमंत्रकरि सेवा करें ॥ और न कछू वचन उच्चरें ॥ सकल अंग हरिजीके ध्यावें ॥ शंष चक्र गदा पदम निल्यावें ॥ ९४ ॥ भूषन वसन पारषद सहिता ॥ हस्त बदन देषत दुषदहिता ॥ विविध भांति असनान करावें ॥ करि तिलकादि वस्त्र पहिरावें ॥ ९५ ॥ बहु सुगंधमाला पहिरावें ॥ बहुभांति करि भोग लगावें ॥ गंध धूप आरती उतारें ॥ घंटाआदि शब्द विसतारें ॥ ९६ ॥ या विधि मंत्रनिसौं सब करें ॥ ता पीछें अस्तुति विस्तरें ॥ बहुरि करें दंडौत प्रनामा ॥ पढें मंत्र लेवें हरिनामा

॥ ९७ ॥ बाहिर वस्तु मिलें ते आंनें ॥ ओरनि मनसों पूजा ठांनें ॥ तन मन भए निरंतर सेवें ॥ वह प्रसाद माथे करि लेवें ॥ ९८ ॥ बहुरि देवकौं हिरदे धरी ॥ मूरतिसयन पोठारि करी ॥ याविधि हरिको आतम जांनें ॥ यथाशक्ति सब पूजा ठांनें ॥ ९९ ॥ ज्ञानकाज एसाधन भक्ति ॥ ज्ञान पाय तब होवें मुक्ती ॥ उभे प्रतीमा हरिकी सेवा ॥ साधू प्रगट सोइ हरि देवा ॥ १०० ॥एसे सेवें उपजें ज्ञाना ॥ बेगी आंन मिले भगवाना ॥ भवसागर हि तऱ्यो जो चहैं ॥ सेवासहित प्रीत मन गहैं ॥ १०१ ॥ ॥ दोहा ॥ ॥ ए सुनि बचन बिदेहके, बाढयौं मनमें प्यार ॥ तब गुणहि अरु कर्मसह, पूछें हरि अवतार ॥ २ ॥ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे विदेहप्रश्ने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

॥ दोहा ॥ नारायण अवतार सब, लीलाआदि अनाद ॥ श्रीधर चौथेध्यायमें, द्रुमिलजनकसंवाद ॥ १ ॥ जनकउवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ अब अवतारकथा विस्तारो ॥ गुण अरु कर्म सहित उच्चारो ॥ जे जे लिए लेहिजे आगें ॥ अबहीं सब भाषो अनुरागें ॥ १ ॥ ए सुनि नृपति जनकके बेनां ॥ कृपासिंधु करुणाके एनां ॥ तब सातमें द्रुमिलसें नामा ॥ बोले वचन परम अभिरामा ॥ २ ॥ ॥ द्रुमिलउवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ जे अनंतके गुण अवतारा ॥ तिनकौं नृपति लहेंको पारा ॥ भूमिरेंनुकनिका कोई गनें ॥ सोउ कहा सकल गुण भनें ॥ ३ ॥ हरिके गुण अवतार अनंता ॥ बालबुद्धि जो चाहे अंता ॥ तातें कछूएक में भाषों ॥ तेरे हृदे संसे नहिं राषों ॥ ४ ॥ पंचभूतनिर्मित ब्रह्मंडा ॥ राच्यो नीरमांहि ज्यौं अंडा ॥ तामें अंस

आपनो धारा ॥ सोहं आदि पुरुष अवतारा ॥ ५ ॥ तिनकी दहहुंते सबदेहा ॥ देहमाही बरते सब एहा ॥ तिनके अंगनितें सब अंगा ॥ इंद्रिय अहंबुद्धि बहुरंगा ॥ ६ ॥ सतरजतमतें सकल पसारा ॥ उतपति अरु पालन संहारा ॥ प्रथमहि रजतें ब्रह्मा कियौ॥ सात्विकी जन्म विष्णुकों दियौ ॥ ७ ॥ तामस करी शंकर उपजाए ॥ तिनसौं सकल लोकनिपजाए ॥ ब्रह्मार चें विष्णु प्रतिपालें ॥ हरे रुद्र यौं भवपथ चालें ॥ ८ ॥ बहुरि सुनो हरिके अवतारा ॥ भवसागरके तारनहारा ॥ धर्म पिता अरु मूरति माता ॥ तहां नरनारायण विख्याता ॥ ९ ॥ आत्मज्ञान भक्ति विस्तारें ॥ यासौं लागि जीव निस्तारें॥ अब कहों प्रगट करें आचरना ॥ नारदादि नित सेवें चरना ॥ १० ॥ एकवार सुरपति मन आन्यो ॥ ममलोक लेवें यों जान्यो ॥ तब तिन आया कामहि दीनि ॥ कामसंग सेना सब लीनी ॥ ११ ॥ रंभादिक अप्सरा अपारा ॥ त्रिविध पवन बसंत पसारा ॥ बदरीषंड सबें चलीआए ॥ नरनारायण बेठे पाए॥१२॥ भरि भरि बांननि हनें शरीरा ॥ निहफल भए अग्नि ज्यौं नीरा ॥ तबतें मनमथ बहुत हेरांनें ॥ श्राप अग्नि जीवनिगति मांनें ॥ १३ ॥ हरि अपराध इंद्रकृत जांन्यो ॥ हसि बोलें तिनको भय भांन्यो ॥ मति भयकरो पंच सर वीरा ॥ देवनार भव प्राण शमीरा ॥१४॥ बैठौ इहां अतिथ कर वावौ ॥ हम आश्रम सुफल करि जावौ ॥ ए सुनि अभय दानकें बेनां ॥ ते सब जोरी सकें नहीं नेना ॥ १५ ॥ लज्जाभार नवाए सीसा ॥ बोलें वचन जांनि जगदीसा ॥ हे प्रभु यह कछु नाहिं अचंभा ॥ तुम हो प्रकृतिपुरुषके थंभा ॥ १६ ॥ निरविकार निरगुन निरभेदा ॥ जिनकौं जानिसके नहिं वेदा ॥ निजानंदपूरण मुनि सारे ॥ ते सेवत हें चर्ण तुमारे॥१७॥तुमरे चर्णसरण

जो आवें ॥ तिनकौं सुर बहुविघन उपावें ॥ तिनकों लोक दाबि पग नीचें ॥ गए चहें तुमरें पद ऊंचें ॥ १८ ॥ तातें विघन करें सब देवा ॥ मिटती जानें अपनी सेवा ॥ और किसीको विघन न करही ॥ यातें तिनहिं दंड सब भरहीं ॥१९॥ परि तव जन नहिं विघ्न सतावें ॥ विघ्ननि सीस चर्ण देजावें ॥ जो त्रिभुवनपति तुम रषवारें ॥ कहाकरें तब विघ्न बिचारें ॥२०॥ तातें तुमरो कहा अचंभा ॥ जातें मोहि सकी नहि रंभा ॥ क्षुधा तृषा अरु आलस नीद्रा ॥ सीत उष्ण वर्षारितु तंद्रा ॥ २१ ॥ जिभ्याशिस्नादिक विस्तारा ॥ इनके गुणतें जलधि अपारा ॥ ताकों बहुत कष्टकरि तरे ॥ गौपदक्रोध बूडि ते मरे ॥ २२ ॥ तिनको तप सब मिथ्या होई ॥ दुहु लोकनिमें एक न कोई ॥ तातें सब साधन जो करें ॥ तुमरी भगति बिना नहिं तरें ॥ २३ ॥ या बिधि देववचन उच्चरें ॥ तब हरि एक अचंभा करें ॥ अति अद्भुत छबि नारि अनेका ॥ मनमोहनी एकतें एका ॥ २४ ॥ ते सब सेवा करत दिषाई ॥ मानो रंभासखिसौं आई ॥ तिनकें गंध रूप सब मोहें ॥ चंद्रउदय उडुगन ज्यों सोहें ॥ २५ ॥ तिनसौं हरिजी बोले बेंना ॥ इनमे एकले हो तुम मेना ॥ स्वर्गलोकको भूषणरूपा ॥ जाते ए सब परम अनूपा ॥ २६ ॥ तिन सब हरिकों कियो प्रनामा॥लीनी एक उरबसी नामा॥करि प्रनाम पुनि वारंवारा॥पहुँचे सकल इंद्रदरबारा॥२७॥तिनही इंद्र प्रसंग सुनायो॥विस्मय त्रास इंद्र मन आयौं॥बहुरि लियो हंसअवतारा॥ चारि भए सनकादि कुमारा ॥ २८ ॥ दत्तकपिल अरु पिता हमारा ॥ आठहु ब्रह्मरूप विस्तारा ॥ हयग्रीव मधुप्राणनिवारे ॥ ताकरि हरिन बेद उधारे ॥२९॥ सतवत राजाहीं हरिभक्ता ॥ तिनकौं हरिजी कियो बिरक्ता ॥ बिनहि प्रलय प्रलय दिषरायौ ॥ मच्छरूप ज्ञानहिं समुझायो ॥ ३० ॥

बहुरि वराहरूप हरि धार्‌यौ ॥ हिरण्याक्ष दुष्ट अति मार्‌यौ ॥ बहुरि मही हुती तलमांही ॥ सो उपर थापी पलमांही ॥ ३१ ॥ कूरम ह्वै मंदरगिर धार्‌यौं ॥ अमृत काढि सुरकारज सार्‌यौं ॥ ग्राहग्रस्यो गजराज पुकार्‌यौं ॥ तब हरि जीत तकाल उबार्‌यौ ॥ ३२ ॥ बालखिल्य आदिक रिषिराजा ॥ समअंगुष्ठ अकार बिराजा ॥ कस्यपके काजें इकवारा ॥ समधि निकेते बनहि सिधारा ॥ ३३ ॥ तहां गाइपगजलसों भरिया ॥ तिनमें आपु आपु सब परिया ॥ हांसी करें इंद्र तहां खरौ ॥ तब तिन हृदे हरीसंभरौ॥३४॥जब आतमको कोई नांहीं ॥ तब तुम नाथ उधा-रणमांहीं ॥ तातें अब हम भए अनाथा ॥ करुनासिंधु गहो करहाथा ॥ ३५ ॥ इतनी सुनी आर्तकी बांनी ॥ तहां उठि धाए सारंगपांनी॥तहां करगहि हरि सबनि उधारा॥बालखिल्य उध-रन अवतारा ॥ ३६ ॥ ब्रह्महत्या भए इंद्र संभार्‌यौ ॥ तबहीं हरिजी प्रगट उधार्‌यौ ॥ सुर बनिता जब असुरनिहरी ॥ तबतें हरिशरण अनुसरी ॥ ३७॥ तब हरि जीते सकल उधारी ॥ असुर मार सब विपति निवारी ॥ पुनि नरसिंह रूप तनधार्‌यौ ॥ असुर हिरन्यकसिपु जिन मार्‌यौं ॥ ३८ ॥ जनप्रहलादहि लीनौ राषी ॥ जाकी प्रगट कहे सब साषी ॥ जब जब असुर प्रवल अतिभए ॥ देवनिके अस्थल हरि लए॥ ३९ ॥ तब तब सब मन्वंतर मांहीं ॥ विष्णुकला अवतार धरांहीं ॥ मारि असुर सब दुषनि मिटावें ॥ सरनागत सुरनर सुष पावें ॥ ४० ॥ वामनरूप इंद्रके काजा ॥ भिक्षा छलहिछल्यो बलराजा ॥ तीनलोक ले इंद्रहि दए ॥ बलिकी भक्ति आप वस भए ॥ ४१ ॥ बहुरि अधरमी उपजे राजा ॥ परसराम प्रगटे तिहकाजा ॥ इक विसवार करी निहक्षत्री ॥ भुवमें कहुं न राष्यो क्षत्री ॥ ४२ ॥ बहुरि भए दशरथसुत रामा ॥

जेहैं प्रगट लोक अभिरामा ॥ सायर उपरि सैल जिन तारें ॥ रावन आदि दुष्ट जिन मारें॥४३॥ आगें रामकृष्ण अवतारा ॥ भूकौं प्रबल हरेंगें भारा ॥ यदुकुल जन्म कर्मतें करिहैं ॥ जिनसौं लागि जीव निस्तरिहैं ॥ ४४ ॥ असुरदेषि यज्ञनिकें करता ॥ जीवनि मारि उदरके भरता ॥ बुद्धरूप हरिजी तब धरिहैं॥यज्ञनिंद पाखंड बिस्तरि हैं॥ ४५ ॥ बहुरि धरेंगें कल्कीरूपा ॥ अति अपराध करेंगे भूपा॥ कलिके अंत सकल संहरि हैं॥ बहुरि प्रवृत्त सतजुग करि हैं॥४६॥ऐसे बिष्णु कर्म अवतारा ॥ कोई कहत न पावें पारा ॥ कछु एकमें तुमसौं कहे॥ औरहि कोटि अनंत नि रहे ॥४७॥ इनकौं कहें सुनें जो गावें ॥ प्रेमसहित निसवासर ध्यावें ॥ सो भवसागरमें नहिं रहें ॥ पावें ज्ञान परम पद लहें ॥ ४८ ॥ ॥ दोहा ॥ ए बेंनामुनि द्रुमिलके, कीनी प्रश्न नरेंद्र, प्रभुजी तिनकी कोंन गति, जे नभ जें गोविंद ॥ ४९ ॥ इतिश्री-भागवते महापुराणे एकादशस्कंधे विदेहप्रश्नेचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ दोहा ॥ कर्म शुभाशुभ भजन विधि, साधन ज्ञानदृढांहि ॥ करभाजन अरु चमस मुनि, कही पांचमेंमांहि ॥ १ ॥ ॥ जनक उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ जे नाहि करही हरिकी सेवा ॥ तिनकी कहो कोन गति देवा ॥ तिनके तृपति न सुपनें आवें ॥ निसदिन तृष्णा अग्नि जलावें ॥ १॥ परि जो बहुविधि धर्म उपावें ॥ ते मोहि कहो कछु सुख पावें॥एकही बचन जनक जब रहे ॥ अष्टमें चमस नाम तब कहे ॥ २ ॥ ॥ चमस उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ हरिजी बिप्र बदनतें करे ॥ बाहुनितें क्षत्री विस्तरे ॥ जंघनि हे वैश्य उपजाए ॥ शूद्र तिमि

चर्णनितें आए ॥ ३ ॥ याही भांति कीए आश्रमा ॥ तातें भजन सबनि कौ धर्मा ॥ तातें आपु करें प्रतिपाला ॥ आपुहि पोषें दीनदयाला ॥४॥ ऐसें प्रभुकौं जे बीसरें ॥ते अपराध अपार नि करें ॥ ते गुरुद्रोही अरु मित्रद्रोही ॥ स्वामीद्रोही कृतघनि ओही ॥ ५ ॥ तिन अपराध अधम गति जावें ॥ कबहुं भूलि नहिं सुष पावें ॥ सूद्रजोषिता अंतजआदि ॥ तिनकौं दूरि कथा श्रवनादि ॥ ६ ॥ ते मनमें अभिमान न धेरं ॥ तातें तुमसें क्रिपाहि करें ॥ यातें इनकौं होइ उधारा॥ परि उंचनको वारनपारा ॥ ७ ॥ विप्र रु क्षत्री वैश्य त्रिवरना ॥ याकौं यज्ञ विहितविधि करनां ॥ इन सबहिनके ते अधिकारी ॥ तातें बहुत सु भए विकारी ॥ ८ ॥ तातपर्यकौं जांने नाहीं ॥ पहु पित बांनीमें भरमाहीं ॥ विष्णुभजन उत्तम अधिकारा ॥ पायो ताहि न लषें गवारा ॥ ९ ॥ कर्म अकर्म विकर्म न जांनैं॥अतिकठोर आपहिं बहु मांनैं ॥ हम पंडित यज्ञनिके कारक॥और बहुत कर्मनिविस्तारक ॥ १० ॥ आपु भ्रमे ओरनी भ्रमावें ॥ प्रिय बांनी बहुभांति सुनावें ॥ काम रु अर्थ अर्थ करि मांनें ॥ पढि पढि वेद साखि बहु आंनें ॥ ११ ॥ बहु संकल्प करें मनमांही वहुत बहुरि आरंभ करांही ॥ त्यौंहि त्यौं राजस अधिकारा ॥ काम क्रोध लोभ अहंकारा ॥ ॥ १२ ॥ दंभ कपट चतुराइ आनैं ॥ हरि भक्तनिकी हांसी ठानैं ॥ आपु आपु मिली बेठे जबहीं ॥ ग्रहके सुषनि सराहें तबहीं ॥ १३ ॥ जिनमें आनंद क्षण है नाहीं ॥ दंभमानसों जज्ञक राहीं ॥ बहुत पसुंनि मारे अज्ञानी ॥ तिन अपराध सकें नहि जांनी ॥ १४ ॥ इतनो धन आयौ यह ये हैं ॥ एते मिलें ए तो तब ह्वै हैं ॥ कुलसंपति विद्या ठकुराई ॥ त्याग रूप बल कर्म बडाई ॥ १५ ॥ इनकौं बल बाढ्यो अधिकाई ॥ तातें हृदय समुझ नहीं आई ॥ हरि भक्तनसौं

ठांने हांसी ॥ मगहद मरै छांडि षल कांसी ॥ १६ ॥ थावर जंगम सब घटमांही ॥ हरिपूरण षाली कहुं नाहीं ॥ ज्यौं आकास लिप्त नहिं होई ॥ त्यौं हरि बेद कहतहैं सोई ॥ १७ ॥ परि वे मूढ न कबहुं जांनें ॥ जातें हरिभक्तानि नाहि मांनें ॥ बहुत मनोरथ निसदिन करें ॥ तृष्णाताप जरत नहिं टरें ॥ १८ ॥ मद्य पान अरु मांस अहारा ॥ नारी नेह सहित जगसारा ॥ ताहि सकलके त्याग निमित्ता ॥ विधिमें वेद लगायो चित्ता ॥ १९ ॥ संग करे तो नारि बिबाहीं ॥ तांहुंमें बहुतें थिति नाहीं ॥ बनिताकौं देवें रितुदानां ॥ प्रजानिमित्त चित्तनहिं आनां ॥२० ॥ या विधि कर्म सकल छोडावें ॥ बहुरि बेद सब त्याग करावें ॥ एसेंही आमिष मद पानां ॥ यज्ञमांहि नहीं कहुं आनां ॥ २१ ॥ बहुरि ऊहांहुंतें छोडावें ॥ एसो तातपर्यकौं पावें ॥ हरिकी सरने आवें कोई ॥ सारि विध इक समझे सोई ॥ २२ ॥ के जो तिनकी सरनें आवें ॥ अभिप्राय सारो सो पावें ॥ वे हरि जन अरु हरिहि न जानें ॥ आपुही कौं पंडित करि मांनें ॥ २३ ॥ तातें तातपर्य नहीं जांनें ॥ पढि पढि वेद अनर्थनि ठांनें ॥ धन ऐसो जो करे उधारा ॥ सो धन षोवे बृथा गंवारा ॥ २४ ॥ जो धन हरिके काजलगावें ॥ सो तब प्रेमभक्तिकौं पावें ॥ तातें होइ ज्ञानप्रकासा ॥ तब हरि मिलें मिटें भवपासा ॥ २५ ॥ एसो धनते मूढ अजांना ॥ देहकाज षोवें भरमांना ॥ काल निरंतर हरतन देषें॥बहु मदमत्त दूर करि लेषें ॥२६॥ मद्यमांस मषमे आनीजें ॥ और भूलि कहुं नाम न लीजे ॥ तहांउ आपु लेई घ्रानां ॥ षान पांनतें अधगति जांना॥ २७ ॥ त्यौं बनीता रितुदानहीं देवें ॥ और भूलिकहुं नाम न लेवें ॥ सो जब लगी एक सुतहोई ॥ सुतके भए त्यागिए सोई ॥ २८ ॥ एसो सकल वरणको धर्मा ॥ ताकौं भूलिन पावेमर्मा ॥ मरम हीन श्रुति

सुमृतिबषांने ॥ मूरष आपुही पंडितमांने ॥ २९ ॥ तातें बहुत कर्म आरंभै ॥ इंद्रिय मनाहि कदें नहीथंभै ॥ द्रोहकरैं बहु जीवनि मारैं ॥ ते बहु जन्मनि नहिसंघारैं ॥ ३० ॥ थावर जंगम सब घटमांहीं ॥ एकहि हरिदूजा को नाहीं ॥ तिनकौं द्रोहकरें तन पोषें ॥ दारासुतनि आनसंतोषें ॥ ३१ ॥ नहि मूरष नाहि तत्त्वग्यानी ॥ पढि पढिग्रंथ हुहिं अभिमानी ॥ ते असाध रोगी सबजांनी ॥ तिनसों ज्ञान न मांडेंज्ञानी ॥ ३२ ॥ ते सब करें आपनो घाता ॥ सुपनेहुं न लहें कुसलाता ॥ कर्म पंथमें सुषकों चाहें ॥ अमृतदे करि बिषहि बिसाहें ॥ ३३ ॥ नाना ताप तप्तजो रहें ॥ करें मनोरथ फलहि नल हें ॥ बहुत भांति श्रम करि उपजाए ॥ सुत वित दारा सब मनभाए ॥ ३४ ॥ तिन सबनि कौं छोड इहांहीं ॥ वंधें आप जमद्वारें जांहीं ॥ जमके दूत नरक भोगावें ॥ तहांके दुःख कहे न हि जावें ॥ ३५ ॥ तिनकों को नहि राषनहारा ॥ हरिरक्षक सो नहींसंभारा ॥ कहा कहों कछु कहेन जांही ॥ हरि बिन कहूं पलक सुखनाहीं ॥ ३६ ॥ ॥ दोहा ॥ चमसबचन सुनि भूपके, बाढयौ त्रासरु प्यार ॥ तब जुग जुगको पूछियो, हरिको भजनप्रकार ॥ ३७ ॥ ॥ विदेह उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ कौंन समेंके सो अवतारा ॥ किसो वर्ण नाम आ-कारा ॥ केहि बिधि भजें वर्ण आश्रमा ॥ कहो ज्ञानके साधन धर्मा ॥ ३८ ॥ जिनतें ज्ञान लहें सब त्यागें ॥ नित हरिचरणकमल अनुरागें ॥ सुनि नृप बैंन भक्तिके साजन ॥ तब बोलें नवमें कर भाजन ॥ ३९ ॥ करभाजनउवाच ॥ ॥ ॥ चौपाई ॥ सत त्रेता द्वापर कलिकाला ॥ बहुत भांति भजिए गोपाला ॥ बहुविधि बरन बहुत आकारा ॥ बहुत नाम बहुभजन प्रकारा ॥ ४० ॥ सतजुग

सुकल बरन भुजचारी ॥ सीस जटा तन बलकल धारी ॥ कंठजनेऊ कर जपमाला॥दंड कमंडल अरु मृगछाला ॥ ४१ ॥ तब मनुष्य होवें सबसुद्धा ॥ समनिर वैर सुहृद परिबुद्धा ॥ अस्थिर करि इंद्रिय मनप्रांना ॥ करें सबें नित हरिकों ध्याना ॥ ४२ ॥ हंससु परमधर्म जोगेश्वर ॥ निरमल परमातम अरु ईश्वर ॥ पुरुषोत्तम वैकुंठ अव्यक्ता ॥ ताके नाम होइ यह व्यक्ता ॥ ४३ ॥ रक्तवरण त्रेताजुगमांही ॥ त्रिगुण मेष लागले पहराही ॥ पीतकेस सर्वादिक हाथा ॥ ऋग यजु साम त्रयमै नाथा ॥ ४४ ॥ तव तिन हेत यज्ञादिक करें ॥ वेद विहित कर्मनि विस्तरें ॥ सर्वदेवमय हरिकौं जांनैं ॥ तब सबयौं हरिपूजा ठांनै ॥ ४५ ॥ प्रष्णीगर्भ उरु गायकहीजैं ॥ विष्णु वृषा कपिजज्ञ भनीजैं ॥ सर्ववेद उरु क्रम विजयंत ॥ ऐसें नाम कहें सब संत ॥ ४६ ॥ द्वापर पीतबसन घनस्यामा ॥ संषादिक आयुध अभिरामा ॥ चारिबाहु भृगुलत्ता धरना ॥ लक्ष्मी चिन्ह बहुत आभरना ॥ ४७ ॥ चामर छत्रआदि बहु सेना ॥ महाराज लच्छन सुषदेना ॥ वेद तंत्र बिधि सेवाकरें ॥ सब अरपन पूजा विस्तरें ॥ ४८ ॥ वासुदेव शंकर षणदेवा ॥ प्रद्युम्नरु अनिरुद्ध अभेवा ॥ नारायन भगवान अनंता ॥ जिनकौं कोई लहें नहि अंता ॥ ४९ ॥ विश्वरूप विश्वेश्वर स्वामी ॥ सर्वात्मा सर्वांतरजांमी ॥ बहुत भांति अस्तुति विस्तरैं ॥ विधिसों द्वापुर पूजाकरैं ॥ ५० ॥ कलिजुग पीत पितांबरधारी ॥ कृष्णदेव घनस्याम मुरारी ॥ सहत पारषत बहू आभरनां॥श्रवन कीरतन पूजाकरनां॥५१॥इंद्रिय मन बहु भरे विकारा॥तिनतें राषेंचर्ण तुमारा ॥ सबविधि सर्वतीर्थ कौ वासा ॥ सुमरतहीं पूरें सबआसा ॥ ५२ ॥ शिव विरंचि सुरनर मुनि ध्यावें ॥ जाकौं भेद वेद नहीं पावें ॥ राषी लेत शरन जे आवें ॥ जनम मरण सब दुषनि

मिटावें ॥ ५३ ॥ केवल होत दीन उद्धारें ॥ भवसागरके पार उतारें ॥ ऐसे चरण तुमारे गायो ॥ ताकी सरण दीन में आयो ॥ ५४ ॥ अतिसुष तजिसुर वंछे जाकौं ॥ ऐसो राज छोडि करि ताकौं ॥ दशरथ भगत बचन शत करना ॥ वनको गवन कियो जिन चरना ॥ ५५ ॥ हेमम्रग हि दयिता मनभायो ॥ जो ताके पीछे उठि धायो ॥ जो भगतनके यों आधीना ॥ ऐसें चरण शरण में लीनां ॥ ५६ ॥ ऐसी विधि कलि अस्तुति करें ॥ बहू विधि हरिनामनि उचेंर ॥ सुनें कहें सुमरें अरुघ्यावें ॥ ते ततकाल तत्त्वकों पावें ॥ ५७ ॥ याविधि जें जुग जुग हरि सेवें ॥ तिन तिनको हरि ज्ञान हि देवें ॥ ज्ञान पाइ निज तत्त्व समावें ॥ जहां जाइ बहुरो नहीं आवें ॥ ५८ ॥ जे कलजुगके गुणकौं जानत ॥ ते बहु बिधि अस्तुति कौं ठांनत ॥ जेसो परम सार कलिमांही ॥ तैसो और जुगनि मैं नाहीं ॥ ५९ ॥ सतजुग ध्यान यग्यत्रेतामहि ॥ द्धापर प्रतिमा पूजे रामही ॥ कलि केवल नामादिक गावैं ॥ सो सो फल ततकालहिं पावैं ॥ ६० ॥ या भवसागरमांहि निरंतर ॥ दुषित जीव परें नहि अंतर ॥ तामें हरिगुन नाम उचारन ॥ एक जहाज सकलकौ तारन ॥ ६१ ॥ पाप अघोर अपार कलिमांहि ॥ जामें पुन्यलेस कहूं नांहि ॥ यामैं जे हरिगुणानि उचारैं ॥ ते तरि आप और निकौं तारैं ॥ ६२ ॥ ते कृत कृत्य तेही बडभागी ॥ जे कलि हरि कीरत अनुरागी ॥ आपुसमरि और निसुमरावैं ॥ ते जग जनम बहुरि नहिं आवैं ॥ ६३ ॥ सतत्रेता द्धापुर अवतरहीं ॥ ते कलजुगकी वांछा करहीं ॥ कली कछू साधन श्रम नाहीं ॥ हरिगुण गावत हरिहि समाहीं ॥ ६४ ॥ अरु कहुं को इक देश विसुद्धा ॥ द्रविडादि मानव तहां बुद्धा ॥ जे उपजें ते भक्ती करें ॥ तातें तहां बहुत उद्धरें

॥ ६५ ॥ अरु जातां मृपर्णिकृतमाला ॥ कावेरी पयस्विनी विशाला ॥ अरु सरस्वती पछम वाहनी ॥ गंगा आदि दुरी तदा हनी ॥ ६६ ॥ जे मानव जल पीवें इनको ॥ दूरि होय हृदेंमल तिनको ॥ ते सर्वथा होइ हरिभक्ता ॥ साधन संग होवें आसक्ता ॥ ६७ ॥ भूत कुटुंब पितर ऋषि देवा॥इनके रीति करें सब सेवा ॥ सोई नर नहि सेवा करें॥ सो सबतजि हरिकौं अनुसरें ॥६८॥जेविधितजि हरि चरणें आवें॥तिनके मल हरि दूरि बहावें॥बहुर्‍यो मल उपजें नहिं कोई॥ उपजें कदें हरे हरि सोई ॥ ६९ ॥ तातें सब विधि को फल एका ॥ गहियें हरि पद छांडि अनेका ॥ सबकै प्रभू सबहिं सुषदाता ॥ सरनागत पालक विख्याता ॥ ७० ॥ जब जब जो जो सरनहिं आयौ ॥ तबहीं तब तिनही हरिपायौ ॥तातें और सकल परि हरियें ॥ श्री भगवान चरण चित धरियें ॥ ७१ ॥ नारदउवाच ॥ चौपाई ॥ ऐसें सुनि नवहूंके बैनां ॥ जनक हृदे उपज्यो अतिचैनां ॥ संसा मिट्यौं सकल भ्रम भाग्यों ॥ ब्रह्मजान सूतो जों जाग्यौ ॥ ॥ ७२ ॥ तब तिनकी बहु पूजा कीनी ॥ विप्रनि सहित प्रदक्षिणा दीनी ॥ या विधि दरसन पाये सबहीं ॥ अंतरध्यान भये ते तबहीं ॥ ७३ ॥ जनक विदेह और सब त्याग्यो ॥ हरिके चर्ण कमल अनुराग्यो ॥ या विधि ब्रह्मपरायन भयो ॥ तरि भवसिंधु ब्रह्ममें गयो ॥ ७४ ॥ याहि विधि तुमहीं बडभागी ॥ व्हें हो हरि चरणनि अनुरागी ॥ और सकलकौ तजिहो संगा ॥ तब पावोगे ब्रह्म प्रसंगा ॥ ७५ ॥ अरु तुमतो देवकि वसुदेवा ॥ भये कृतारथ करि हरि सेवा ॥ तुमरें जश फूल्यो जगसारा ॥ जिनके हरिलीनो अवतारा ॥ ७६ ॥ दरसन आलिंगन आलापा ॥ आसन भोजन सयन मिलापा ॥ हरिसौं पुत्र जांनि चित दी

नौ ॥ तातें सकल भजन तुम कीनौं ॥ ७७ ॥ कपट वासुदेवरु शिशुपाला ॥ दंतवक्र सल्यादि कराला ॥ वैरभाव कृष्णहि चित धार्‌यौ ॥ तिनहूं कौं हरि देव उधर्‌यौ ॥ ७८ ॥ तो जे प्रेमप्रीत सौं सेवैं ॥ तिनकौं क्यौं न परम पद देवैं ॥ अब तुम पुत्र बुद्धि मति आंनौ ॥ कृष्ण देवकौं ब्रह्महिं जांनौ ॥ ७९ ॥ माया करि धारी नरदेह ॥ परब्रह्म तुम जांनो एह ॥ बढ्यो देषि भूमे अतिभारा ॥ मेटन काज धर्‌यो अवतारा ॥ ८० ॥ परम पुनीत जसहि विस्तरहीं ॥ जासौं लागि जीव निस्तरहीं ॥ जे जे इनसौं हेत लगावैं ॥ ते ते सकल परमपद पावैं ॥ ८१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ चौपाई ॥ ऐसी सुनि नारदकी बांनी ॥ वसूदेव देवकि उर मांनी ॥ आपहु दुहू मुक्तरि जांन्यौ ॥ हरिमें भाव ब्रह्मको आंन्यौ ॥ ८२ ॥ यह इतिहास कथा जो भाषें ॥ सावधान सुनि हिरदे राषें ॥ सो सब भवबंधन छिटकावैं ॥ उपजें ज्ञान परम पद पावैं ॥ ८३ ॥ दोहा ॥

॥ भगवत धर्मरु भक्त चिन ॥ माया तरण उपाय ॥ ब्रह्मकर्म अवतार पुन ॥ भजन क्रम युगगाय ॥ ८४ ॥ ए भाष्यो संक्षेपसौं ॥ हरि मिलनैंको द्वार ॥ हरि उद्धव संवाद अब ॥ बरनौ करि विस्तार ॥ ८५ ॥ इतिश्रीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधे वसुदेवनारदसंवादेपंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

॥ दोहा ॥ छठें बरणी द्वारिका, श्रीधर सुख श्रीकृष्ण ॥ ब्रह्मादि स्तुति कर चले उद्धव कीयो प्रश्न ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ चोपाई ॥ बहुरि सुनो नृप आतम विद्या ॥ जाकें जाने मिटैं अविद्या ॥ मिटैं अविद्या ब्रह्महिं पावैं ॥ ब्रह्मपाई फेर

नहिं आवैं ॥ १ ॥ तब ब्रह्मा सनकादिक संगा ॥ नारदादि रंगे हरि रंगा ॥ सकल प्रजापति भृगु मरिच्यादिक ॥ महादेव लीनें भूतादिक ॥ २ ॥ सुर समूह संग ले सुरपति ॥ पवन अस्विनी सूत ग्रहपति ॥ वसु अंगीरा रुद्रगन देवा ॥ साध्यादिक अरु विश्वेदेवा ॥ ३ ॥ ऋषि गंधर्व पितर अरु नागा ॥ चारन सिद्ध भये अनुरागा॥अप्सर अरु गुह्यक विद्याधर ॥ किन्नर जक्षादिक मायाधर ॥ ४ ॥ कृष्ण देषिवे कारज सारे ॥ आनंदित द्वारिका पधारे ॥ केई नाचें केई गावें ॥ केई बाजें बहुत बजावें ॥ ५ ॥ केई जय जय शब्द उचारैं ॥ केई कृष्ण जसहिं विस्तारैं ॥ या विधि करे बहुत उच्छाहा ॥ मगन भये हरि प्रेम प्रवाहा ॥ ६ ॥ श्रीभगवान मनुष तनधारी ॥ दरसन सब मन हरन मुरारी ॥ लोकनि मांहि जसहीं विस्तारैं॥ श्रवनादिकनि सकल अघजारैं ॥ ७ ॥ निधि रिधि पूरण द्वारावती ॥ जाके सम नहिं अमरावती ॥ तामैं ब्रह्मादिक चलि आये ॥ कृष्ण देवके दरसन पाये ॥ ८ स्वर्ग व्रक्ष फूलनिकी माला ॥ छादित कीन्हैं दीनदयाला ॥ पावत दरस त्रिपति नहि होवैं ॥ चित्रलिषेंसें सन्मुख जोवैं ॥९॥ चित्रवत् बंदन स्तुति करैं ॥ उत्तम अर्थनि जैस बिसतैरैं॥सहित बीनती अरु पर नामा॥दरस भये सब पूरन कामा ॥१०॥

॥ ब्रह्मा उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ हे प्रभु चर्णसरोज तुमारा ॥ मन क्रम बचन चित्त हंकारा ॥ इंद्रिय बुद्धि प्रानरु देहा ॥ वंदत हे हम प्रगटे एहा ॥ ११ ॥ जाकों प्राण वचन मन साधें ॥ सावधान निसदिन आराधें ॥ भाव सहित अभि अंतरध्यावैं ॥ तेउ याविधि प्रगट न पावैं॥१२॥धन धन हम धन भाग हमारा ॥ प्रगटहिं देषे चर्ण तुमारा ॥ जिनकें ध्यान कीरतन श्रवना ॥ बहुरि न होवैंआवा गवना ॥ १३ ॥ तुम अद्वैत द्वैत यह कर्‍यौ ॥ अपनी माया सब विस्तर्‍यौ ॥ तुमही

तें उपजैं संसारा ॥ सदा रहैं तुमरे आधारा ॥ १४ ॥ तुमहीं माहि लीन सब होंई ॥ तमसौं परस सकै नहिं कोंइ ॥ राग रहित आनंद स्वरूपा ॥ अजित अमित चिद्रूप अनूपा ॥ १५ ॥ विद्याध्ययन श्रवन अरु दाना ॥ क्रिया उपासन तप असनाना ॥ त्याग जोग यज्ञादिक जेते ॥ आतम सुद्ध करैं नहि एते ॥ १६ ॥ तव गुन श्रवन परत अघ नासैं॥ ज्यौं तम मांही सूर्य प्रकासैं ॥ तातैं जन्म कर्म गुणधारौ ॥ दीनबंधु दीनन् उद्धारौ ॥ १७ ॥ जो तव चरण कमल मुनि ध्यावैं ॥ भव भय भीतन पल छिटकावैं ॥ अरु निज भक्त निरंतर सेवैं ॥ भय नहि समुझैं नहि छुक लेवैं ॥ १८ ॥ अरु एकै बैकुंठ निमित्ता ॥ हृदय धरंता चर्णहि चित्ता ॥ बहुरि एक सेवैं सहकामा ॥ एकभये चाहैं निहकामा ॥ १९ ॥ जीवन मुगत भए इक सेवैं ॥ प्रेम भावसों अति सुष लेवैं ॥ एकैं जज्ञादिक सौं भजैं ॥ सर्व वेदमय तुमकौं यजैं ॥ २० ॥एके वर्ण आदि आश्रमा ॥ तुमरे हेत करै सब धर्मा ॥ एके एक रूपकरि ध्यावैं ॥ द्वैत भाव कबहुं नहि ल्यावैं ॥ २१ ॥ एके तुम प्रतिमाकौं सेवे ॥ एकैं नाम निरंतर लेवैं ॥ एकै श्रवन कीरतन ध्यांना ॥ कहां लगि कहियैं जे विधि नांना ॥ २२ ॥ ज्यौं जे जे तव चर्णनि सेवैं ॥ ते ते सब वंछित फल लेवैं ॥ सो तव चर्ण प्रगट हम पायौ ॥ तातैं अब दीजैं मन भायौ ॥ २३ ॥ यह हम वंछा पूरन करो ॥ अपनैं चरण कमल चित धरो ॥ भस्म करो दूजीवासना ॥ जिन तें उपजैं भव सासना ॥ २४ ॥ परम दयाल परम हितकारी ॥ इच्छा पूरक देव मुरारी ॥ इच्छा पूरण करो हमारी ॥ निहचल उपजैं भक्ति तुमारी ॥ २५ ॥ जो तव जन वन माला करैं ॥ प्रेम सहित तव आगैं धरैं ॥ कमला देषि सपर्धा आने ॥ ताकौं आपस पतनी जाने ॥ २६ ॥ परि तुम एसैं दीनदयाला ॥ भ

क्ति अधीन करत प्रतिपाला ॥ तब इंदीरा निशादर करौं ॥ वन माला ता ऊपर धरौं ॥ २७ ॥ जो तव चरण भगत सुर कारन॥दुष्ट असुर सेना संहारन ॥ असुर निकौं अधगतिके दाता ॥ सुरनि स्वर्ग दीनैं विष्याता ॥ २८ ॥ अभयदान अघनासन ठानौं ॥ लोकबेद यह प्रगट बखानौ ॥ बांधी धजा गंग तिहु लोका ॥ जाकें दर्श मिटैं भव सोका ॥ २९ ॥ ब्रह्मादिक सुर नर अधिकारी ॥ तुमरें चरण कमल बस चारी ॥ जो अति बली बैल मद भीना ॥ नाथें नाक धनी आधीना ॥ ३० ॥ जब जब असुरन तें दुष पावें ॥ तब तब सरन चरनकी आवें ॥ तबहीं सुख उपजें दुष भाजें ॥ अपनें अपनें ठौर विराजें ॥ ३१ ॥ प्रकृति पुरुष महत्तत्त्व नियंता ॥ तुम इनके कारन भगवंता ॥ तुम तें पुरुष शक्ति जो पावैं ॥ प्रकृति मिली महत्तत्त्व उपावैं ॥ ३२ ॥ तातें उपजें इह ब्रह्मंडा ॥ जल आधार तरे ज्यौं अंडा ॥ थावर जंगम विविध प्रकारा ॥ तातें होइ सकल विस्तारा ॥ ३३ ॥ तातें तुम या सबके करता ॥ उपजा बन प्रतिपालन हरता ॥ तुम आधार सकलके स्वामी ॥ तुम फलदाता अंतर जामी ॥ ३४ ॥ जो कछु होइ सकल जग माहीं ॥ तुम करता दूजा को नाहीं ॥ परिकहुं लिप्त होहु नहि देवा ॥ कोउ लषी न सकें तव भेवा ॥ ३५ ॥ सोल सहस्र एक सत आठा॥ जिनके हृदे प्रेम अतिकाठा ॥ हाव भाव सों प्रीति बढावैं ॥ मदन बांन बहुभांति चलावैं ॥ ३६ ॥ तुमतो हू बसहो वो नाहीं ॥ निश्चल निजानंद पद माहीं ॥ और छोडि जे बैठौ कोई ॥ करत बासना बंधें सोई ॥ ३७ ॥ ए द्वे नदी प्रगट तुम कीनी ॥ जिनकी महिमा परें न चीन्ही ॥ एक भंग चरणनि कौ नीरा ॥ परसत निरमल करैं शरीरा ॥ ॥२८॥ दूजी तब कीरतिकी सरिता ॥ त्रिभुवन जहां तहां विस्तरिता ॥ श्रवन करत अंतर

मल नासैं॥निरमल हृदय ब्रह्म प्रकासैं॥३९॥ब्रह्म प्रकाश भये भव नाहीं॥षेले एकमेक मिलि मांहीं॥ इन द्वै नदिनिभ जे जे पंडित ॥ तिनकौं कल करत नहि षंडित ॥ ४० ॥ तातैं नाथ क्रिपा अब कीजैं ॥ साध संग हमकौं नित दीजैं ॥ जिनमें कथा नदी हम पावैं ॥ जातें तव चर्णनि चित लावैं ॥४१॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥यौंले शिवशक्रादिक संगा ॥ अस्तुति करी बहुतप्रसंगा ॥ बहुऱ्यौ विधि ए वचन सुनाये ॥ जांके काज सकल हम आये॥ ४२ ॥ ॥ ब्रह्मा उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ हे प्रभु हम तुम बिनती कीनी ॥ धरनी भार भई जब चीनी ॥ तातें तुम लीनौ अवतारा ॥ सकल उताऱ्यौ भुवकौ भारा ॥ ४३ ॥ मेटि अधर्म धर्म विसताऱ्यौ ॥ सब संतनि कौ कारज साऱ्यौ॥और कीरति बहुविधि विस्तरी॥भवसागर तरवे कौं करी ॥४४॥ ले अवतार भूप जदुवंसा ॥ सकल जनन को मेट्यौ संसा ॥ बहु विधि कीनें कर्म अपारा ॥ जिसौं लागि जैहें भवपारा ॥ ४५ ॥ अरु जदुकुल द्विज श्राप बिनास्यौ ॥ नहिं रहि हे दिन द्वै हें भास्यौ ॥ तातें देव काज सब कऱ्यौं ॥ करि वैकुं कछु नाहीं उवऱ्यौ ॥ ४६ ॥ गई बरष सत आव पचीसा ॥ तातें हम बिनवें जगदीसा ॥ अब करि कृपा चलो निजलोका ॥ करत पुनीत हमारे ओका ॥ ४७ ॥ हम हें दास तुमारे देवा ॥ निसदिन करें तुमारी सेवा ॥ ऐसी सुनि ब्रह्माकी बांनी ॥ तब हसि बोले सारंगपांनी ॥ ४८ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ में सब सुनी तुमारी बांनी ॥ तुमरौ काज भयो में जानी ॥ परि यदुकुल यों हीं परि हरौं॥ तो नास सकल भूको में करौं॥ ४९ ॥ ए सब जादव बहु मदमत्ता ॥ए नरहें सो मेरी सत्ता ॥ मोहि तजें सब प्रबलई ठांनें ॥ ज्यौं सायर मरजादा भांनें ॥ ५० ॥ तातें नास हेत

क्ति अधीन करत प्रतिपाला ॥ तब इंदीरा निशादर करौं ॥ वन माला ता ऊपर धरौं ॥ २७ ॥ जो तव चरण भगत सुर कारन॥दुष्ट असुर सेना संहारन ॥ असुर निकौं अधगतिके दाता ॥ सुरनि स्वर्ग दीनैं विष्याता ॥ २८ ॥ अभयदान अघनासन ठानौं ॥ लोकबेद यह प्रगट बखानौ ॥ बांधी धजा गंग तिहु लोका ॥ जाकैं दर्श मिटैं भव सोका ॥ २९ ॥ ब्रह्मादिक सुर नर अधिकारी ॥ तुमरें चरण कमल बस चारी ॥ जो अति बली बैल मद भीना ॥ नाथें नाक धनी आधीना ॥ ३० ॥ जब जब असुरन तें दुष पावें ॥ तब तब सरन चरनकी आवें ॥ तबहीं सुख उपजें दुष भाजें ॥ अपनें अपनें ठौर विराजें ॥ ३१ ॥ प्रकृति पुरुष महत्तत्त्व नियंता ॥ तुम इनके कारन भगवंता ॥ तुम तें पुरुष शक्ति जो पावैं॥ प्रकृति मिली महत्तत्त्व उपावैं ॥ ३२ ॥ तातें उपजें इह ब्रह्मंडा ॥ जल आधार तरे ज्यौं अंडा ॥ थावर जंगम विविध प्रकारा ॥ तातें होइ सकल विस्तारा ॥ ३३ ॥ तातें तुम या सबके करता ॥ उपजा बन प्रतिपालन हरता ॥ तुम आधार सकलके स्वामी ॥ तुम फलदाता अंतर जामी ॥ ३४ ॥ जो कछु होइ सकल जग माहीं ॥ तुम करता दूजा को नाहीं ॥ परिकहुं लिप्त होहु नहि देवा ॥ कोउ लषी न सकें तव भेवा ॥ ३५ ॥ सोल सहस्र एक सत आठा॥ जिनके हृदे प्रेम अतिकाठा ॥ हाव भाव सों प्रीति बढावैं ॥ मदन बांन बहुभांति चलावैं ॥ ३६ ॥ तुमतो हू बसहो वो नाहीं ॥ निश्चल निजानंद पद माहीं ॥ और छोडि जे बैठौ कोई ॥ करत बासना बंधें सोई ॥ ३७ ॥ ए द्वै नदी प्रगट तुम कीनी ॥ जिनकी महिमा परें न चीन्ही ॥ एक भंग चरणनि कौ नीरा ॥ परसत निरमल करैं शरीरा ॥ ॥३८॥ दूजी तब कीरतिकी सरिता ॥ त्रिभुवन जहां तहां विस्तरिता ॥ श्रवन करत अंतर

मल नासैं॥निरमल हृदय ब्रह्म प्रकासैं॥३९॥ब्रह्म प्रकाश भये भव नाहीं॥षेले एकमेक मिलि मांहीं॥ इन द्वै नदिनिभ जे जे पंडित ॥ तिनकौं कल करत नहि षंडित ॥ ४० ॥ तातैं नाथ क्रिपा अब कीजैं ॥ साध संग हमकौं नित दीजैं ॥ जिनमें कथा नदी हम पावैं ॥ जातें तव चर्णनि चित लावै ॥४१॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥यौंले शिवशक्रादिक संगा ॥ अस्तुति करी बहुतप्रसंगा ॥ बहुऱ्यो विधि ए वचन सुनाये ॥ जांके काज सकल हम आये॥ ४२ ॥ ॥ ब्रह्मा उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ हे प्रभु हम तुम बिनती कीनी ॥ धरनी भार भई जब चीनी ॥ तातैं तुम लीनौ अवतारा ॥ सकल उताऱ्यो भुवकौ भारा ॥ ४३ ॥ मेटि अधर्म धर्म विसताऱ्यो ॥ सब संतनि कौ कारज साऱ्यौ॥और कीरति बहुविधि विस्तरी॥भवसागर तरवे कौं करी ॥४४॥ ले अवतार भूप जदुवंसा ॥ सकल जनन को मेट्यौ संसा ॥ बहु विधि कीनें कर्म अपारा ॥ जिसौं लागि जैहें भवपारा ॥ ४५ ॥ अरु जदुकुल द्विज श्राप बिनास्यौ ॥ नहिं रहि हे दिन द्वै हें भास्यौ ॥ तातें देव काज सब कऱ्यौं ॥ करि वैकुं कछु नाहीं उवऱ्यौ ॥ ४६ ॥ गई बरष सत आव पचीसा ॥ तातें हम बिनवें जगदीसा ॥ अब करि कृपा चलो निजलोका ॥ करत पुनीत हमारे ओका ॥ ४७ ॥ हम हें दास तुमारे देवा ॥ निसदिन करें तुमारी सेवा ॥ ऐसी सुनि ब्रह्माकी बांनी ॥ तब हसि बोले सारंगपांनी ॥ ४८ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ में सब सुनी तुमारी बांनी ॥ तुमरो काज भयो में जानी ॥ परि यदुकुल यों हीं परि हरौं॥ तो नास सकल भूको में करौं॥ ४९ ॥ ए सब जादव बहु मदमत्ता ॥ए नरहें सो मेरी सत्ता ॥ मोहि तजें सब प्रबलई ठांनें ॥ ज्यौं सायर मरजादा मांनें ॥ ५० ॥ तातें नास हेत

उपजायो ॥ श्राप सबनि विप्रन तैं पायो ॥ अब इन सबहि न कौं बिनसाऊं ॥ पीछैं तुम लोकनि मैं आऊं ॥ ५१ ॥ ऐसें सुनि हरिजी कें बेना ॥ हृदय बढ्यौ सब नीकौं चैंना ॥ करि प्रनिपत बीनती सारैं ॥ अपनैं अपनैं लोक सधारैं ॥ ५२ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ तब नरपतिकी सभा मझारी ॥ बैठे यदुकुल सहित मुरारी ॥ द्वारावती उठें उत पाता ॥ तिनकौं देषि कही हरि वाता ॥ ५३ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ ए उतपात उठे चहुं औरा ॥ अतिभय दायक दीसें घोरा ॥ अरु द्विज श्राप भयो कुल मांहीं ॥ तातें भली देखि यत नाहीं ॥ ५४ ॥ तातैं अब ईहां नहिं रहियैं ॥ तजी ऐं बेगिजीयो जो चहियैं ॥ अति पुनीत जु क्षेत्र प्रभासा ॥ तहां बेगि चलि कीजें वासा ॥ ५ ॥ एकवार दक्ष श्रापहि दयो ॥ तब ससि कौं क्षयरोग हि भयो ॥ जब सो ससी प्रभास हीं न्हायो ॥ छूट्यौ श्राप परम सुख पायौ ॥ ५६ ॥ तातैं अब प्रभास चलीजे ॥ तहां जहि असनान हि कीजैं ॥ तृपति देव पितरन कौं करियैं ॥ विप्र भोजन बहु विधि विस्तरि यैं ॥ ५७ ॥ तिनकौं दान बहुत विधि दीजैं ॥ श्रद्धा सहित प्रनाम हि कीजैं ॥ तिन प्रसाद दुष नि परिहरियैं ॥ ज्यौं नावन सौं सागर तरियैं ॥ ५८ ॥ ऐसी सुनि हरिजीकी बांनी ॥ सब जाद वनी भली करि मांनी ॥ तब चलवेकौं सकल विचारैं ॥ अपनैं अपनैं रथनि संवारैं ॥ ५९ ॥ तब उद्धव हरिको निज दासा ॥ देषि सकल बिधि भयो उदासा ॥ चलि एकांत हरिजीपैं आयौ ॥ चरणनि परिकें वचन सुनायो ॥ ६० ॥ उद्धव उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ देव देव ईश्वर जोगेस ॥ श्र

वन कीरतन हरन कलेस ॥ यदुकुलकौं संघार हिं करिहो ॥ अब तुम मृत्युलोक परिहरिहो ॥६१॥

॥ विप्रश्राप मेटन सामर्था ॥ नहिं मेटो सो यह हैं अर्था ॥ मेरे जीवन चरण तुमारा ॥ जैसें मी न उदक आधारा ॥ ६२ ॥ प्राणनाथ अब एसी कीजें ॥ संग आपनें मोकौं लीजें ॥ तुमरें सब आचरण अनूपा ॥ सबकौं अति कल्याण स्वरूपा ॥ ६३ ॥ जिनकौं पाइ और सब त्यागैं॥ त्रिभुवनकें सुषदुषसे लागैं ॥ आसन गमन असन असनाना॥ जागत अरु सोवत विधि नाना ६४ ॥ सदा निरंतरको में दासा ॥ क्यौं पलत जौं तुमारौ पासा ॥ माया भय नहिं मेरे क हुं ॥ तुम बिन अर्ध निमिष न वरहूं ॥ ६५ ॥ गंध बसन माला आभरना ॥ तुम उत्तीरनकौं में धरना ॥ महाप्रसाद निरंतर पोष्यौ ॥ दरस परस बहु विधि संतोष्यौ ॥ ६६ ॥ एसौ में निज दास तुमारौ ॥ माया करि हैं कहा हमारौ ॥ माया भय अरु तुमरे हेता ॥ होइ दिगंबर ऊर धरेता ॥ ६७ ॥ इंद्रिय देह प्राण मन साधैं ॥ सावधान तुमकौं आराधैं ॥ ब्रह्म विचार सदा मन लावैं ॥ ते निज रूप तुमारौ पावैं ॥ ६८ ॥ हम कछु कर्म अकर्म न जांनै ॥ हृदय ज्ञान वैराग न आंनै ॥ तुमरे भक्तनिके मिलि संगा ॥ भव तरियें सुनि तव प्रसंगा ॥ ६९ ॥ तुमरे कर्म वचन परिहासा ॥ आवन गवन रूप प्रकासा ॥ कहत सुनत सुमरत सुष मांही ॥ भव सागर हम रहियें नांही॥७०॥ ॥ तातें माया भय नहि आंनौं ॥ आप हि सदा मुक्त करि मांनौं ॥ परि तुम बिना प्राण तजि जांही ॥ तातें मोहि छोडि यें नांही ॥ ७१ ॥ ॥ दोहा ॥ ॥ ए उद्धव निज भक्तके, सुने वचन गोपाल ॥ तब करुणामय करि कृपा, बोले वंचन रसाल ॥ ७२ ॥ इति श्रीभा०महापुराणे एकादशस्कंधेभगवतउद्धवसंवादेभाषायांषष्ठोऽध्यायः ६

॥ ॥ दोहा ॥ ॥ उद्धव प्रति श्रीकृष्णजी, कह्यौ सात में ज्ञान ॥ दत्त यदू संवाद में शिक्षा आठ बखान ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ महाभाग उद्धव यह यौं हीं ॥ ज्यौं तुम कही बात हैं त्यौं हीं ॥ शिव विरंचि सक्रादि दिवेसा ॥ बछे मम वैकुंठ प्रवेसा ॥ १ ॥ भूमें भार वढ्यौं जब भारी ॥ तब भू ब्रह्मापास पुकारी ॥ ब्रह्मादिक मिल बिनती करी ॥ ता ते मनुष देह में धरी ॥ २ ॥ अब भूको सब भार उतार्‍यौ ॥ सकल सुर निकौ कारज सार्‍यौ ॥ अरु जसको कीनौ विसतारा ॥ जातें जीव जांहि भवपारा ॥ ३ ॥ जदुकुल श्राप लह्यौ द्विज पासा॥आपु आपु में व्है हैं नासा॥आजहूं तें सप्त दिन मांहीं॥सिंधु द्वारिका राषे मांहीं ॥ ४ ॥ जबही में तजिहौं यह लोका ॥ तब पावेंगे दुष भय सोका ॥ कलियुग आनि अधिष्ठित होई ॥ तातें अघकरि हैं सब कोई ॥ ५ ॥ तातें उद्धव सुनि बडभागा ॥ अब तूं कर सबहि नको त्यागा ॥ मो में सदा चित्त थिर करौं ॥ सम दरसी व्है भूमे चरौ ॥ ॥ ६ ॥ जो कछु कहन सुननमें आवें ॥ मन अरु बुद्धि जहां लगि जावें ॥ सो यह सब मन कौ कृत जांनौ ॥ छिन भंगुर माया करि मानौ ॥ ७ ॥ जिन यह सकल सत्य करि जांना ॥ तिनके भेद भयो हे नांना ॥ ता भेंदहि भ्रम करि नहि जानैं ॥ विधि निषेध तांहितें मांनैं ॥ ॥ ८ ॥ विधि निषेध जो भाषे वेदा ॥ सो ताकौं जाकों हे भेदा ॥ भेद मिटे बिनकरे न त्यागा ॥ तातें ए द्वे किये विभागा ॥ ९ ॥ ज्यौं ज्यौं तजे सुषी त्यौं होई ॥ तातें वेद बतावे दोई ॥ आगें जाइ छुडावे सारें॥ जे आपुहि हूते विस्तारैं ॥१० ॥ तातें ए सब मिथ्या जांनौ ॥ ऊंच नीच गुण दोषन मांनौ ॥ इंद्रिय अरु मन निहचल करौ ॥ अहंकार ममता परिहरौ ॥ ११ ॥ सू

क्षम थूल सकल विस्तारा ॥ एकहि आतम के आधारा ॥ सो आधार ब्रह्मकौं मांनौ ॥ एसी विध भवके भय मांनौ ॥ १२ ॥ या विधि बेद अर्थकौं जांनौ ॥ बहुरि हृदैं निश्चल करि मांनौ॥ दुहूं लोककी आसा छांडौ ॥ या विधि अंतराय सब षांडौ ॥ १३ ॥ जितनी याके आसा होई॥ ते तौ विघन करैं सब कोई ॥ ज्यौं ज्यौं तजतें जावें आसा ॥ त्यौं त्यौं मिटे विघनके पासा ॥ १४ ॥ जब यह होइ आतमारामा ॥ तब तहां नहि आसकौ धामा ॥ तब विघन निके कर ता देवा ॥ तेही उलटि करें ता सेवा ॥ १५ ॥ तातें विधि निबेध सब नाषौ ॥ आसा छांडि हृदे हरि राषौ ॥ एक ब्रह्म करि सबकौं देषौ ॥ दूजो कबहूं भूलि न लेषौ ॥ १६ ॥ अरु जिन पायो ब्रह्म ग्यांनां ॥ तिनकौं विधि निषेध नहि नाना ॥ परि तिनकें नितहिं विधि होई ॥ कदे निषेध न परसै सोई॥१७॥वे सुष दुष गणदोष न जानैं॥बालक सम आचरणनि ठांनैं ॥ परि, विधि सारी सेवा करैं ॥ अरु निषेध आपुहि परिहरैं ॥ १८ ॥ सब परि सुहृद सदा अतिसांत ॥ ज्ञान विज्ञान सहित नित दांत ॥ सब जग ब्रह्म जांनि थिर होई ॥ बहुरौ जन मन पावै सोई ॥ १९ ॥ ऐसें सुनि हरिजीके बैंना ॥ अति दुष्कर अरु आति सुषदेना ॥ तत्त्व सुननकी बाढी प्यासा ॥ तब बोले उद्धव निज दासा ॥ २० ॥ उद्धव उवाच ॥ चौपाई ॥ जोग स्वरूप जोग उपजावन॥ जोग दान जोगस्वर भावन ॥ तुम जो त्याग कह्यो मरे हित ॥ सो दुष्कर आवें नाही चित ॥ २१ ॥ क्यौं होवें विषयनिकौं त्यागा ॥ पुत्र कलत्रादिक अनुरागा ॥ यह तन यह धन ए सुत मेरे ॥ यह बनिता यह ग्रह यह चेरैं ॥ २२ ॥ या विधि मन अहंकार समुद्रा ॥ बूडि रह्यौ मे मति को क्षुद्रा ॥ तुमरी माया अति भमायौ ॥ तातैं ज्ञान हृदे नहि आयौ ॥ २३॥

अब तुम मोहि शिष्य उपदेसो ॥ मेरे उर कछु ज्ञान प्रवेसो ॥ तातें अब बहु विधि समझावौ ॥ मम उर पूरन ज्ञान बढावौ॥ २४ ॥ जातें सब तजि तुमकौंपावौं ॥ बहुरौ जगत जन्म नहिं आवौं ॥ अरु दूजो ऐसो नहिं कोई ॥ जातें लाभ ज्ञानको होई ॥ २५ ॥ ब्रह्मादिक तन धारी जेते ॥ तव माया बस कीने ते ते ॥ तातें माया हीं कौं देषैं ॥ कर्मरु भोग भले करि लेषैं ॥ २६ ॥ तातें मे जन तुमरी सरना ॥ सो कीजें पावुं तुम चरना॥ तुमरो आदि अंत नहिं पारा ॥ ज्ञान रूप सबहिन तें न्यारा ॥ २७॥ सोई तरैं गहो कर जांकौ ॥ माया कछु न सके करि तांकौ ॥ तुमही तें उपजें यह जीवा ॥ जेसैं अग्निहु तैं बहु दीवा ॥ २८ ॥ सदा रहें तुमरै आधारा ॥ नित उठि पोषै सिरजनहारा ॥ ऐसें प्रभुको सेवें नाही ॥ तातें परे परम दुष मांहीं ॥ २९ ॥ या भवके दुष कहे न जांहीं ॥पर्‍यो निरंतर में तिन मांहीं ॥ अब मोकौं सरनागत जांनो ॥ देकरि ज्ञान सकल भय भांनो ॥ ३० ॥ मेरे तन मन धन तुम चरना ॥ मन वच कर्म आयौ मैं सरना ॥ ऐसैं सुनि उद्धव के बैंनां ॥ हरि हसि बोलें अंबुजनैंनां ॥ ३१ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ उद्धव में कह देवो ज्ञाना ॥ सत्य कहत हौ नाहीं आंना ॥ या जगसाध भये हैं जेते ॥ आपुहिं आप उद्धरें ते ते ॥ ३२ ॥ आपुहि भलो बुरो पहिचानैं ॥ छोडे बुरो भलाकौं ठानैं ॥ गुरु आपुनों आपुहि होई ॥ पशु पंषी भावे जो कोई ॥ ३३ ॥ परि नर तन एसौ हैं नीको ॥ ब्रह्म आदि सबनि कोटीको ॥ जातें ब्रह्म विचार हि पावैं ॥ बहुरौ जगत जन्म नहि आवैं ॥ ३४ ॥ इक पद त्रय पद एका ॥ चौपदादि बहुपादं अनेका ॥ में बहु भांति श्रृष्टि विस्तारी ॥ तिनमें प्रिय नर देह हमारी

॥३५॥ मुहि पावैं सो या करि पावैं ॥ ओर सबनि सुष दुष भोगावैं ॥ या में मेरो करें विचारा सावधान व्है बहुत प्रकारा ॥ ३६ ॥ भाई यह तौ जड है देहा ॥ इंद्रिय आदिक सकल सनेहा॥ अपनैं अपनैं अरथ निगहैं॥ सोए शकति कों नकी रहैं॥ ३७॥ अरु सोवत जब सुपना पावैं॥ तब तौं इंद्रिय तन छिटकावैं॥ सुपन मांहिं सुष दुष कौं लहैं॥ जागे वात सकलकी कहैं॥ ३८॥ वातें में तो यह तन नाहीं॥ में तो वास कियौ या मांहीं॥ त्यौं बनिता सुत बित परिवारा॥ मेरो तो नहि सकल पसारा॥ ३९॥ एतौ सकल देह संग जां हीं ॥ सो यह देह कदे में नाहीं ॥ जातें सुपनमांहि नहि कोई ॥ उहां सकल सो और हि होई ॥ ४०॥ अरु भाई में तो वह नाहीं ॥ जो तन दीसैं सुपनांमाहीं ॥ जातें उहहु थिर नर हावैं ॥ वाकौं तजि यामें फिरि आवै ॥ ४२ ॥ वातें यह यातें वह झूठी ॥ यह निज ज्ञान गह्यो मूठी ॥ जो इन दुहूं देहकों मेहै ॥ इंद्रियतैं सब अर्थ निगहै ॥ ४२ ॥ इंद्रिय बुद्ध्यादिक अरु बांनी ॥ याकौं कोइ सके नहि जांनी॥ सो में नित्य निरंतर एका॥उपजे बिनसे देह अनेका ॥ ॥ ४३ ॥ भाई सो मैं कहां तैं आयौ ॥ किन तन दीनों किन उपजायौ ॥ अबतो में द्वै देह अधारा ॥ पलको रहन सकौं निरधारा ॥ ४४ ॥ए दोउ तजि कहां में रहौं ॥ जोहैं सत्य ताहि दृढ गहौं ॥ ऐसें बहुविधि करैं विचारा ॥ त्यागें देहादिक परिवारा ॥ ४५ ॥ सो जहां तहां तें लेवे ज्ञानां ॥ कबहूं कछू न जांनें आंना ॥ या विधि आप आपकौं तारें ॥ लहें ब्रह्म भवदुःष निवारें॥४६॥यह विचार मानव तन होई॥दूजा भूलि न जांने कोई॥तातें तुम मानव तन पायौ॥ अरु कछु इकमें तोहि लखायौ॥४७॥तातैं तजो सकलको संगा॥मन वच कर्म होईनिहसंगा ॥

सबतैं परैं आपकौं जानौ ॥ सो आधार ब्रह्मके मानौ ॥ ४८ ॥ जहा तहां देषो उपदेसा ॥ या विधि करो ब्रह्म प्रवेसा ॥ ऐसें जहां तहां ले ज्ञाना ॥ बहुतक भये ब्रह्म परवाना ॥४९॥ तिनमें कहूं एक की बाता॥जो इतिहास कथा विख्याता॥दत्त दिगंबर अरु यदुभूपा ॥ तिनकौं हे संवाद अनूपा ॥ ५० ॥ दोहा ॥ ॥ सुनि उद्धव इतिहास अब, भाषौं परम अनूप॥ वक्ता दत्तात्रेय जहां, अरु पूछक जदुभूप ॥ ५१ ॥ ॥ चौपाई ॥ एक समें भूपति यदुनामा ॥ गए सिकार छोडि निज धामा ॥ तब ता नगर निकटहैं सूता ॥ देष्यौ एक परम अवधूता ॥५२॥निरभय निश्चल इच्छाचारी ॥ तेजनिधान तरुण तनधारी ॥ करी प्रणा म बहूत प्रकारा॥यदुभूपति तब वचन उचारा ॥५३॥ ॥ यदुरुवाच ॥ ॥ चौपाई॥हे प्रभु पूरण परम दयाला ॥ कहो क्रिपा करि होहु कृपाला॥एसी बुद्धि कहां तुम पाई ॥जातैं बिचरौं सहज सुभाई ॥५४॥भये अकर्त्ता इच्छाचारी ॥ बालक सम सब चिंता टारी॥सब जग निशदिन एह विचारैं॥ धर्मरु अर्थ काम विस्तारैं॥५५॥सो नहि उपजें बहु दुष पावैं ॥तिन सौं लगि सब आयु गमावैं॥ तुम समरथ सबहीं बिधि जानौ ॥ क्रिथा निपुन प्रिय बैन बषानौ ॥५६॥ सब बिधि सरस तरुण तन सुंदर ॥ तुष्ट पुष्ट कौं लिपैंन दुंदर ॥ ना कछु बंछौ ना कछु करौ॥ जड उन्मत्त गती जिमि विचरौ ॥ ५७ ॥ तृष्णा काम लोभ दौं लागी ॥ सकल लोक दाझै तिन आगी ॥ तुम आनंद मय दाझौ नाहीं ॥ ज्यौं गजेंद्र गंगोदक मांहीं ॥ ५८ ॥ देह अर्थ सबहि तुम त्यागे ॥ रहो अनंदित शोक न लागैं ॥ संग न कोई राषो देवा ॥ कोई लषि न सकैं तव भेवा ॥ ५९ ॥ तातैं कहो क्रिपा करि नाथा ॥ भव जल बूडत पकरौ हाथा ॥ यौं जदुभूप बीनती करी ॥ तब अवधूत गिरा

उच्चरी ॥ ६० ॥ ॥ अवधूत उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ सुन जदुभूप परम बडभागी ॥ जाकी मति हरिसौं अनुरागी ॥ बहुतहि हैं मेरे गुरु देवा ॥ जिन तैं मैं जान्यौ सब भेवा ॥ ६१ ॥ परि में मतौं आपतें लीनो ॥ तिनमें मोसौं किनहु न दीनौ ॥ ते गुरु सकल सुनौं तुम मोसौं ॥ हरिजन जांन कहत हौं तोसौं ॥ ६२ ॥ धरनी गगन पवन अरु पांनी ॥ अनल चंद्र रवि कपोत जांनी ॥ अजगर सिंधु पतंगरु भृंगा ॥ कुंजर मधु हरतार कुरंगा ॥ ६३ ॥ मीनि पिंगला कुररु-बाला ॥ कन्या सर करता अरु ब्याला ॥ मकरी भृंगी ए चोवीसा ॥ इन तें शीष्यौ सुनो महीसा ॥ ६४ ॥ प्रथमें धरनीमें गुण दोष्यौ ॥ सो में परम तत्त्व करि लेष्यौं ॥ सबैं रहैं धरनी आधारा ॥ ता परि मूढकरै अपकारा ॥ ६५ ॥ ठौर ठौर अति उत्तम अंगा ॥ ताकौं करैं बहुत विधि भंगा ॥ ताकैं परवत वृक्ष अनंता ॥ परउपगार सबैं वरतंता ॥ ६६ ॥ पर अपराध कछू नाहि जांनैं ॥ उलटि आप अपकारहि ठानैं ॥ ऐसी शिष धरनीकी लेवैं ॥ जो जन हरिचरण निकौं सेवैं ॥ ६७ ॥ प्रथम गुरु ॥ १ ॥ ॥ चौपाई ॥ प्राणवाई ज्यों लेही अहारा ॥ स्वाद कुस्वाद न कोई प्यारा ॥ त्यौं हरिजन आहार हि लेवैं ॥ स्वाद कुस्वाद नहीं चित देवैं ॥६८॥ बिना अहार बिचार न आवैं ॥ स्वाद कुस्वाद न मन ठहरावैं ॥ तातें एतो लेइ अहारा ॥ जे तो होंवें प्राण अधारा ॥ ६९ ॥ अरु ज्यौं पवन फिरे जग माहीं ॥ शुद्ध अशुद्ध लिपें कहुं नाहीं ॥ नाना भेदनिं में संचरें ॥ प्रिय अप्रिय गुण दोष न धरें ॥ ७० ॥ यों हि विषय निग्रह तें जोगी ॥ मन वच कर्म न होवें भोगी ॥ भेद अनेकनिमें अनुसरें ॥ परि कछुभेद हृदे नहिं धरैं ॥ ७१ ॥ अरु ज्यौं पवन गंध संजोगा ॥ लिप्त भयौ जानैं सब लोगा ॥ परिसो पवन

सदा इक रूपा ॥ लिपैं न कबहू सोइ अनूपा ॥ ७२ ॥ पंचभूत निर्मित त्यौं देहा ॥ सकल विकारनको ए गेहा ॥ तामें जोगी लिप्त न होई ॥ ओर लिप्त सब जांनें कोई ॥ ७३ ॥ द्वितीय गुरु ॥ २ ॥ चौपाई ॥ ज्यौं सब हिनमें एक अकाशा॥ अरु सब हिनको तामें वासा ॥ सब उपजें बिन सें वरतांहीं ॥ गगन न लिपें काल तिहु मांहीं ॥ ७४ ॥ त्यौं बहुविधि सब जगत पसारा ॥ मुनि देषें आतम आधारा ॥ जो कछु देषें जडहें सोई ॥ जाहि संग तें चेतन होई ॥ ७५ ॥ ज्यौं आतम देहनिमें देषें ॥ त्यौं परमातम जहां तहां लेषें ॥ एक अनंत न कहुं आवरनां ॥ लिपे न छिपे जन्म नहि मरनां ॥ ७६ ॥ सो परमातम आतम एका ॥ कदे न देषें भूलि अनेका ॥ ज्यौं जो गगन घटनिमें होई ॥ बाहरहु पुनि जहां तहां सोई ॥ ७७ ॥ कहिवेको द्वेनांतर एका ॥ यौं आतम अरु ब्रह्म विवेका ॥ ज्यौं बहु मेघ पवन दामनी ॥ वरषैं बहु वासर जामनी ॥ ७८ ॥ परि नभ लिप्त कदे नहि होई ॥ ओर लिप्त जांनें सब कोई ॥ त्यौं आतममें देह अनंता ॥ उपजें वरतें पावें अंता ॥ ७९ ॥ परि आतमा लिप्त कहुं नाहीं ॥ साध विचारें यौं मन माहीं ॥ यह अंबर गुण तोहि सुनायौ ॥ अब भाषौं जौं जल तें पायौ ॥ ८० ॥ ॥ तृतीय गुरु ॥ ३ ॥ ॥ चौपाई ॥ नित निरमल और निमल हरें ॥ ताप मेटि सीतलता करें ॥ सब सुष दाइक हित रसवंत ॥ ए गुण जलके सीपे संत ॥ ८१ ॥ ॥ चतुर्थ गुरु ॥ ४ ॥ ॥ चौपाई ॥ तेजवंत अरु दीपत जुक्ता ॥ क्षोभ रहित जहां तहां निरमुक्ता ॥ स्वादरहित सब भक्षन करैं ॥ अग्नि न लिपैं संचन हि धरैं ॥ ८२ ॥ त्यौं ही ज्ञानते जमय होई ॥ इंद्रियादि कृत दीपत सोई ॥ जद्यपि बहुविधि भोजन करैं ॥ स्वादरहित

गुण दोष न धरैं ॥ ८३ ॥ काहुहुं ते क्षोभ नाहि होई ॥ काहूके गुण मिले न सोई ॥ उदर प्रमान लेहि अहारा ॥ कछू न जानैं संचै सारा ॥ ८४ ॥ गुप्तरहैं नहि मूल जनावै ॥ कीन्हैं प्रकट है आवैं ॥ परइच्छा आहूतकों लेई ॥ तिनतें पाप रहे नहि देई ॥ ८५ ॥ त्यौं मुनि गुप्त आपतें रहैं॥ षोजि लेहि तांकों श्रम दहैं ॥ उत्तम भोजन आदिक होई ॥ परइच्छातें लेवे सोई ॥ ८६ ॥ बहुर्‍यौ अग्नि एक रस एका ॥ बहुविधि दीसैं काष्ठ अनेका ॥ त्यौं आतमा एक सब माहीं ॥ भेद देह कृत संचे नाहीं ॥ ८७ ॥ दीप मसाल प्रगट ज्यौं होई ॥ ज्वाला जात लषे सब कोई ॥ परिते दीसैं त्यौंके त्यौंहीं ॥ प्रतिदिन देह जात हैं यौंहीं ॥ ८७ ॥ ॥ पंचमोगुरुः ॥ ५ ॥ चौपाई जेसैं शशीके बाढै कला ॥ त्यौं त्यौं दिन दिन दीसे भला॥पूर्ण व्हे करि दिन दिन नासैं ॥सकल मिटै तब नहि प्रकासैं ॥ ८९ ॥ त्यौं बालादि अवस्था आवैं ॥ व्हें करि तरुन क्रमहि क्रम जावैं॥ तब आतम देषीयत नाहीं ॥ परिहैं सदा काल तिहु माहीं ॥ ९० ॥ गुरु छठो ॥ ६ ॥ ॥ चौपाई ज्यौं रवि किरणनि सौं जल लेवैं॥समय पाइ बहूर्‍यौं सब देवैं ॥ परि कबहूं अभिमान न आंनैं॥ लियो दियो आपु नहीं जानैं ॥ ९१ ॥ त्यौं मुनि सुनें कहें अरु देषें ॥ सकल अर्थ इंद्रियकृत लेषें ॥ नित आतमा अकरता जानैं ॥ सब तजि ब्रह्म विचारहि ठानैं ॥ ९२ ॥ ज्यौं घट जल प्रति बिंबित सूरा ॥ लिप्त देखियें परिहै दूरा ॥ त्यौं आतमा देह संबंधा ॥ थूल दृष्टि जानत हैं अंधा ॥ ९३ ॥ ॥ सप्तमगुरु ॥ ७ ॥ ॥ चौपाई ॥ अब कपोतकी कथा सुनाऊं ॥ तेरे मनको भ्रमहि मिटाऊं ॥ एक कपोत कपोती संगा ॥ बनमें कीनो ग्रह प्रसंगा ॥ ९४ ॥ आपु आपु में अति आशक्ता ॥ आठ पहरमें पलन विरक्ता ॥ मनसों मन अंगनि सों अंगा ॥ नैंन

नि नैंन बव्यो बहुरंगा ॥ ९५ ॥ आवन गवन असन अस्थाना ॥ सैन बैन सारी विधि नाना ॥ मिलि सकल कर्मनिकों करें ॥ निरभय व्हे न काहुतें डरें ॥ ९६ ॥ सो कपोत बनिता बस कीऔ ॥ हाव भाव तन मन हरि लीऔं ॥ वनिता जों वंछे सो लावें ॥ कष्ट सहित जाही विधि पावें ॥ ९७ ॥ सोइ स्त्रीजित ज्यौं तुम राजा ॥ अपनो लषे न काज अकाजा ॥ तनमय भयौ निरंतर चहैं ॥ प्राणहु तैं ताही प्रिय कहैं ॥ ९८ ॥ ताकी त्रिया अंड उपजाये ॥ तिनमैं मन दोनों मिलि लाये ॥ तव हरि माया शिशु निरमये ॥ कोमल अंग रोम तब भये ॥ ९९ ॥ तबहुं मिलि करि तिन कौं पोंषें ॥ बहुत भांति ताकौं संतोषें ॥ कोमल वचन सुनें मुष दरसें ॥ अपनें अंग अंग सौं परसें ॥ १०० ॥ हरिकी माया बहुत भुलाये ॥ आपु आपुमें सकल बंधाये पुत्र सनेह रहें अनुरागें ॥ सिरपर काल न लषे अभागें ॥ १०१ ॥ एकवार बालकके कारन ॥ चारौ लेंन गए ते आरन ॥ ताही समें व्याध इक आयौ ॥ बालक देषि जाल विछरायौ॥१०२॥ देख्यौ कनिक न देष्यौ जाल ॥ वंधे आंनि सकल षगबाला ॥ तब दोउ चारौंकौं ल्याये ॥ निज ग्रह मांहि न बालक पाये ॥ १०३ ॥ तब देषे माता ते बाला ॥ बंधे जाल मांहि बिहाला॥ तब सो तहां पुकारत धाई ॥ जाल मांहि सत हेत बंधाई ॥ १०४ ॥ तब कपोत देषे सब बंधे ॥ हरि माया कीनें अति अंधे ॥ तब बहुभांती करै विलापा ॥ लेषें बहुत आपनें पापा ॥ १०५ ॥ हाहा पाप कोंन में कीने ॥ ऐसें दुष दैव मोहि दीने ॥ जाकी यह पतिव्रता नारी ॥ पुत्रनि ले सुरलोक सिधारी ॥ १०६ ॥ मोहि छोडि सूंने ग्रहमांही ॥ सब मिलि आपु इंद्रपुर जांही ॥ ना में सुषभोगे यह लोका ॥ नहिं साधन पायो परलोका ॥१०७॥ धर्म अर्थ काम सब जांमैं॥

कछुवै नहीं रह्यौ ग्रह तांमैं ॥ अब प्राननि राषौं कछु नाहीं॥ घरी घरीमें दुष अधिकाहीं ॥१०८॥ या विधि भयो बहुत बिहाला ॥ बंधे देषि बनिता अरु बाला ॥ व्याकुल बुद्धि विचार न कर्यो॥ आपहूं आइ जालमें पर्यो ॥ १०९ ॥ सहित कुटुंब कपोत हि पायौ ॥ तब हीं भयौ व्याधि मन भायौ ॥ ऐसी मैं कपोतकी देषी ॥ तब हि हृदे अपुनें यह लेषी ॥ ११० ॥ यौंहीं कुटुंब होवैं जांके ॥ तृष्णा राग बढैं अति तांके ॥ जीवत अति आरंभनिं करें ॥ सहित कुटुंब काल मुष परें ॥ १११ ॥ या विधि जो मानव तपावें ॥ सो तो द्वार ब्रह्मकैं आवें ॥ ताहूं परि जो ग्रह हित करैं ॥ सो नर ब्रह्मद्वार चढि परैं ॥ ११२ ॥ तातैं भोग कुटुंबरु गेहा ॥ तिन करि जीव लहैं प्रतिदेहा ॥ एसौ मानव तन न गवैयें ॥ जा करि देव निरंजन पैयें ॥ ११३ ॥ दोहा ॥ ॥ यह भाषी गुरु आठकी, शिष्या में तव पास ॥ अब ओरनकी कहतहौं, ज्यौं छूटे भव पास ॥ ११४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भगवदुद्धवसंवादे अवधूतोपाख्यानेसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ॥

॥ दोहा ॥ ॥ शिक्षा नवमी आदि ले, कही आठमैं मांहि ॥ ज्यौं ज्यौं भाषत दत्तजी, त्यौं यदु मन हर्षांहि॥ १ ॥ ॥ अवधूत उवाच ॥ ॥ चौपाई॥ जे इंद्रिय सुष कछू कहावे ॥ ते तो स्वर्ग नर्कहूं आवे ॥ ज्यौं सूकर कूकर सुष मांहीं ॥ त्यौं ही देव और कछु नाहीं ॥ १ ॥ अरु जो सुष आपुहि तें आवैं ॥ कर्म लिष्यो सो कोन मिटावैं ॥ अरु ज्यौं कोइ दुषकौं नहि चहैं ॥ परि दुष आपु आपुहीं रहैं ॥ २ ॥ त्यौं ही सुष आपुहि तें आवैं ॥ बिन जाने नर बहु दुख पावैं ॥ तातें बुध सुख नाम न लेवैं ॥ होइ अकरता हरि पद सेवै ॥ ३ ॥ स्वाद कु

स्वाद बहुत के थोरा ॥ जो हरिजी पठवे तिस बोरा ॥ ताकों भक्षैं रहैं उदासा ॥ अजगर व्रति गहे यह दासा ॥ ४ ॥ जो कबहूं अहार न आवे ॥ तो थिर रहै न कछु मन लावें ॥ कर्म अधीन देहकों जांनैं ॥ मन कृम वचन न उद्यम ठांनैं ॥ ५ ॥ अति समर्थ इंद्रिय मन देहा ॥ परि कछु उद्यम करै न एहा निश्चल ब्रह्म निरंतर सेवैं ॥ यह शिष्या अजगर तें लेवै ॥ ६ ॥ गुरु नवमो ॥ ९ ॥ ॥ चौपाई ॥ दरसन परसन परम गंभीरा ॥ अधिक अगाध ज्ञान सों नीरा ॥ वार पार कोइ थाहन लहैं ॥ ए गुन मुनि सायरके गहैं ॥ ७ ॥ ज्यौं बरषा बहु नीर प्रवेशा ॥ सायर कछू बढे नहिं लेसा ॥ ग्रीषममें कछु हीन न होई ॥ सदा समृद्ध आपतें सोई ॥ ८ ॥ त्यौं कोई बहुविधि अरचावे ॥ भोजन वस्त्रादिक पहिरावै ॥ अस्तुति मानव डाई देवे ॥ बहुत भांति बहु तें मिलि सेवे ॥ ९ ॥ अरु एकै लै जांहीं उतारी ॥ निंदादिक इक ठांनैं भारी ॥ परि नाशयनमय मुनि मांही ॥ राग द्वेष कछु उपजें नाहीं ॥ १० ॥ ॥ गुरु दशमा ॥ १० ॥ ॥ चौपाई ॥ बनिता वस्त्र कनक आभरना ॥ बहु विधि मायाके उपकरना ॥ इनमें आइ परैं जो कोई ॥ अग्नि पतंग समान सु होई ॥ ११ ॥ गुरु ईग्यारमो ॥ ११ ॥ ॥ चौपाई ॥ ज्यौं लगि मुनि समझैं निज देहा ॥ जाचि अहार लेइ बहु गेहा ॥ यातैं बहु अनुराग न बढैं ॥ यह शिष्या मधुकर तें पढैं ॥ १२ ॥ छोटें बडें बहुत विधिं ग्रंथा ॥ तिन तें सार गहै हरिपंथा ॥ ज्यौं मधुकर बहु फूलनि माहीं ॥ वास गहे फूलनि कौं नाहीं ॥ १३ ॥ सो मधुकर द्वे विधको कहियैं ॥ दुहू पास तें शिष्या लहियैं ॥ बहुत ग्रहनितें लेई अहारा ॥ उदर प्रमान एक हींवारा ॥ १४ ॥ ॥ गुरु बारमों ॥ १२ ॥ ॥ चौपाई ॥ दूजे को कछु संचन धरे ॥ निरभय ब्रह्म विचार हीं करे ॥

संग्रह भूलि करे जो कब हीं ॥ मधुमाषी ज्यौं विनसैं तब हीं ॥ १५ ॥ जो कोई धन संग्रह करे ॥ सो कोई और हि परिहरे ॥ ज्यौं मधुमाषी मधु संग्रहैं ॥ मधु आसो उद्यम बिन लहैं ॥ १६ ॥ ॥ गुरु तेरमो ॥ १३ ॥ चौपाई ॥ पुतलि काष्ठहुं की जो होई ॥ पगहु बुद्धि परसौं मतिकोई ॥ परस करत होवे दृढ बंधा॥ज्यौं करिंद करिनी संबंधा ॥१७॥ मृत्यु जानि बनिता कौं तजै ॥ पंडित कबहूं भूलि न भजै ॥ भजते होवैं करी समाना ॥ एकहि मिलि मारे गज नाना ॥ १८ ॥ गुरु चउदमो ॥ १४ ॥ चौपाई ॥ हरि बिन सुने नहीं कछु औरा ॥ गयो चहै जे हरिकी ठौरा ॥ और सुनत गति होवे ऐसी ॥ व्याधगीत हरि नामकि जैसी ॥ ॥ १९ ॥ सुनो हरि न गति सुनि बहुरंगा ॥ शृंगी रिषि ज्यौं गनिका संगा ॥ अबलाधीन मुक्त नहि होई ॥ तिनके शब्द सुनै नहि कोई ॥ २० ॥ गुरु पनरमो ॥ १५ ॥ चौपाई ॥ मुनि जिव्हा आसक्त न करे ॥ स्वाद कुस्वाद सकल पर हरे ॥ जिव्हा रसतें होवे काला ॥ जैसें मीन मरे ततकाला ॥ २१ ॥ जे मुनि सब अर्थनि परिहरे ॥ जाइ एकांत बासकौं करे ॥ सहज इंद्रि सब होवैं क्षीना ॥ परिरसना न होइ आधीना ॥ २२ ॥ रसना सबकौं फेर जीवावैं ॥ जबही रस संजोगहि पावैं ॥ यौं सब इंद्रिय जीतैं कोई ॥ परिरसना करमें नहि होई ॥ २३ ॥ त्यौं लगि सकल व्रथा करि जानो ॥ रसना जीति जीत करि मानो ॥ तातैं मुनि रसना वस करे ॥ और सकल साधन परिहरे॥२४॥यों जे एक एक वस भयें ॥ तें सब जमके द्वारैं गयें ॥ परि जो एक पंच बस होई ॥ ताके दुष जानेंगा सोई ॥ २५ ॥ गुरु सोलमो ॥ १६ ॥ चौपाई ॥ बहुरि एक गनिका पिंगला ॥ तातैं में शीष्यो गुन भला ॥ सो तुम सों भाषत हों राजा ॥ जातें सरे तु

मारे काजा ॥ २६ ॥ जनक विदेह पुरीमें वासा ॥ नाम पिंगला रूप निवासा ॥ एकवार शृंगार बनायौ ॥ धनिक पुरुष मनमें ठहरायौ ॥ २७ ॥ बैठी निकसि भवनके द्वारा ॥ आगें चल्यौ जाइ बाजारा ॥ कोई भलो आवतो देषे ॥ यह आवेगो यौं करि लेषे ॥ २८ ॥ जब वे आगेंको चलिजावैं ॥ तव पिंगला ओर कों ध्यावैं ॥ औरो आइ आइ चलि जाहीं ॥ त्यौं यह दुष पावे मन माहीं ॥ २९ ॥ कबहूं ऊठि भीतरकों जावे ॥ कबहूं व्याकुल बाहिर आवे ॥ अर्द्धराति एसी विधि भयौ ॥ लोक बजार चलत रह गयौ ॥ ३० ॥ तब वह भग्न मनोरथ भई ॥ चिंता दुःष अतुल अनुभई ॥ अपनो तिरस्कार करि मान्यौ ॥ सब तें हीन आपकों जान्यौ ॥ ३१ ॥ तब ताको कोई बडभागा ॥ जातें उपज्यो दृढ वैरागा ॥ ज्यौं लगि नहि उपजै निरवेदा ॥ त्यौं लगि नहीं मिटै भव षेदा ॥ ३२ ॥ या भवन षशिष दुःष अनेका ॥ तामें परम रत्न सुष एका ॥ बंधन बंध्यो जीव अपारा ॥ तिनको हरिजी रच्यौ कुठरा ॥ ३३ ॥ ताकी महिमा कही न जावै ॥ जाके भाग बडे सो पावै ॥ जाकौ नाम कहे वैरागा ॥ सो तो हरिको दियौ सुहागा ॥ ३४ ॥ जाहि देई सोइ ए पावै ॥ भव भय छोडि ब्रह्ममें जावै ॥ तातें मानव सब छिटकावे ॥ ज्यौं त्यौं करि वैराग उपावे ॥ ३५ ॥ तब पिंगलावचन उच्चारे ॥ बहुत भांति आपुहि धिकारे ॥ गए दिननकौं अति पछितावै॥सब तैं दृढवैराग बढावे ॥ ३६ ॥ ॥ पिंगला उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ अहो एक मेरो अज्ञाना ॥ जाके हृदे बढयौ भ्रम नाना ॥ जल बुदबुद सम जो नर देहा ॥ तासों शुष हित कियो सनेहा॥३७॥पूरन सरवर तजि जल पासा॥ मृगजल धाइकरी जल आसा ॥ चार पदारथ दाइक देवा ॥ सदा निकटको लह्यौ न भेवा॥३८॥

सत्य सदा सुष दाइक स्वामी ॥ सो छांड्यौ निजपति घननामी ॥ जूठे सदा काल सुष मांही॥ जातें दुःष सोक अधिकाही ॥ ३९ ॥ एसो पुरुष ताहिमें भज्यो ॥ आपहि दुःष आपकौं सज्यो ॥ देह बेचमें देहहि पोष्यौ ॥ याहि भांति मनहीं संतोष्यौ ॥ ४० ॥ स्त्रीलंपट तृष्णातें दाह्यौं ॥ दुषित नरनसौं मे सुष चाह्यौं ॥ हाड मेद मज्जा अरु अंता ॥ मांस रुधिर त्वक रोम अनंता ॥ ४१ ॥ विष्ठा मूत्र स्वेद कृमि एहा ॥ झरैं द्वार नव ऐसी देहा ॥ तामें कहो रमित को होई ॥ मो सों मूढ और नहिं कोई ॥ ४२ ॥ या पुर मांहि जनक नृप ऐसे ॥ सुर अधिकार सुरेस्वर जैसे ॥ तोहूं परिसब सुष कौं तजै ॥ है विदेह हरि चर्णनि भजै ॥ ४३ ॥ अरु सब प्रजा भजे हरि चरना ॥ जातें मिटै जन्म अरु मरना ॥ जाकौं भजें ब्रह्म शिव सेषा ॥ परिसो तिनहूं कदेन देषा ॥ ४४ ॥ एसैं प्रभुकौं जे नर सेवें ॥ तिनकौं रीझि आपकौं देवें ॥ ऐसो प्रभुमें नहि आराध्यौ ॥ कियो अनर्थ अर्थ नाहि साध्यौं ॥ ४५ ॥ अबमें आप निवेदन करौं ॥ और सकल उरतें परिहरौं ॥ अपनें पति हरजीके संगा ॥ सदा रमौं ज्यौं श्रीअरधंगा ॥ ॥ ४६ ॥ कहा और सुर नर प्रिय करिहै ॥ जे बापुरे आपुही मरि है ॥ अरु ते सुष कोई थिर नाहीं ॥ देषत सकल पलकमें जाहीं ॥ मेरी दृष्टि दुषी सब आवै ॥ कालाधीन कहा सुष पावै ॥ तातें में यहनिश्चें जानी ॥ कृपाकरी हेसारंगपानी ॥ ४८ ॥ जिन मेरे वैराग उपायौ ॥ अपनें चर्ण कमल चित लायौ ॥ यह हरि कृपा विना नहि होई ॥ जो वैंराग लहे नर कोई ॥ ४९ ॥ जाते भव बंधन सब नासें ॥ हृदय रमापति आप प्रकासें ॥ में तो मंद भागिनी ऐसी ॥ त्रिभुवन मांहि नहीं को जेसी ॥ ५० ॥ ताको किसो हरिंको भजनौ ॥ केसो

काल जालकौं तजनौ ॥ परिते दीनबंधु गोपाला ॥ पतित उधारन परम दयाला ॥ ५१ ॥ तिनहीं आप कृपा यह करी॥जिन मेरे उर ऐसी धरी ॥ अबलीया परसादहि सीसा ॥ निसदिन भजौं चरन जगदीसा ॥ ५२ ॥ जितनैंया देहहि निरवाहौं ॥ सो इनहीं आरंभ सबाहौं ॥ सहज मांहि जो हरिजी ल्यावे ॥ ता करि या देहहि वरतावे ॥ ५३ ॥ या भवकूप पऱ्यौ नित प्रानी ॥ विषय आवरन दृष्टि छिपानी ॥ ता परि अजगर काल गिरास्यो ॥ यौं नर बहुत पास सौं पास्यो ॥ ५४ ॥ ताकौं हरि बिन कौंन छुडावे॥ आपहिकों नहि छूट न पावे ॥ अरु आपहीं आपकौं शषै ॥ जब सब वस्तु हदैतें नाषै॥५५॥जबहि हरिकरि सरनहि आवे ॥ तबहि आपहीं आपु छोडावे ॥ वे प्रभु निजानंदमय देवा ॥ कहा करे कोतिनकी सेवा ॥ ५६ ॥ परि सब जगत काल छिटिकावै ॥ हरिकी सरन आपु सुष पावै ॥ तातैं और सकल कौं तजौं ॥ प्रेम भाव हरि चर्णनि भजौ ॥ ५७ ॥ या विधि आपुहि आप उधारौं ॥ आप नहीं भवसागर डारौं ॥ ॥ ॥ अवधूत उवाच ॥ योंपिंगला परम गति पाई ॥ दुहूं लोककी आस मिटाई ॥ ५८ ॥ सीतल है सज्यामें गई ॥ परमानंद हि प्रापत भई ॥ यह शिष्यामें तातें लीनी ॥ भली जानि उरमें स्थिर कीनी ॥ ५९ ॥ ज्यौं लगि आसकरे नर कोई ॥ त्यौं लगि सुषी कदे नहिं होई ॥ जबहि सकल आसा छिटकावै ॥ तब ततकाल परम पद पावैं ॥ ६० ॥ ॥ गुरु सतरमो ॥ १७ ॥

दोहा ॥ यह गुरु सत्रहकी कही, शिक्षा में समुझाई ॥ अब औरनकी कहत हौं, सुनियो हित चित लाई ॥ ६१ ॥ ॥ इतिश्रीभागवतेमहापुराणे एकादश स्कंधेश्रीभगवदुद्धवसंवादेअवधूतोपाख्यानेअष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

दोहा ॥ श्रीधर नवमे ध्यायमें, शिक्षा कही अनूप ॥ गुण चौवीसौं सुनतही, भयो कृतारथ भूप ॥ १ ॥ अवधूत उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ जो जो हित करि संग्रह करैं ॥ सोई सो अतिदुःख विस्तरैं ॥ जब हीं हित संग्रह छिटकावै ॥ तब अपार सुखसागर पावै ॥ १ ॥ कुर पंषि कहुं आमिष पायौ ॥ सोले उड्यौ बहुत हित लायौ ॥ तब बहुतें कुररनि दुष दयौ ॥ आमिष तज्यौ सुषी तब भयौ ॥ २ ॥ यहमें शिष्य कुररतें पाई ॥ तातें संग्रह करो न काई गुरु अठारमो ॥ १८ ॥ बहुरि शिष्य बालकतें पाई ॥ मेरे उर जातें मति आई ॥ ३ ॥ न मे मान अपमान न जांनों ॥ चिंता कछू चित्त नहिं आनों ॥ निशदिन रहो आतमा रामा ॥ कबहूं कछू न उपजे कामा ॥ ४ ॥ या भवमांहि द्वेकों सुखहै ॥ और सकल जीवनिकौं दुखहै ॥ उद्यम रहित बाल मति हीना ॥ अरु जो गुणातीत पद लीना ॥ ५ ॥ गुरु उगणीसमो ॥ १९ ॥ चौपाई ॥ एक विप्रके हुती कुमारी ॥ ता विवाहकी विप्र विचारी॥ताके मात पिता इक वारा ॥ और गाम कहु काम सिधारा ॥६॥समाचार इक विप्रनि पायै ॥व्याह काज तिनके घर आयै॥कन्या वचन किसीसौं भाषे॥तिनतें द्विज आदर करि राषे॥७॥तब तिनके भोजनकी धारी॥चावर षोटन लगी कुमारी ॥ तब ताकै कर ज्यौं ज्यौं दोलें ॥ त्यौं हीं त्यौं कर कंकन बोलें ॥ ८ ॥ तिन लज्जित व्हे सकल उतारें ॥ द्वे द्वे दुहु हाथनिमें धारे ॥ बहुरि लगी जब चावर छरनें ॥ तोहूं लगे शब्दते करनें ॥ ९ ॥ तब तिन एक एक हिं राष्यौ ॥ चुपकरि रहें बहुरि नहि भाष्यौ ॥ में विचरत हों इच्छाचारी ॥ तातें देषि हृदय में धारो ॥ १० ॥ बहुत निसंग बढें वकवादा ॥ दूजेंहु ते होइ अनुवादा ॥ तातें रहें अकेला जोगी ॥ सदा विचार ब्रह्म रस भोगी ॥ ११ ॥ ॥

गुरु वीसमो ॥ २० ॥ ॥ चौपाई ॥ आसन प्रान देह मन बाधे ॥ दृढ वैराग हृदेमें साधे ॥ निहचल व्है नित ब्रह्म विचारे ॥ यो क्रम रज तमकौं जारे ॥ १२ ॥ त्यौं त्यौं निहचल बढे समाधी ॥ तजते जावे सकल उपाधी ॥ तब ज्यौं पावक ईंधन हीना ॥ त्यौं होवें निज पदमें लीना ॥ १३ ॥ तब कबहूं कछू द्वैत न जानै ॥ सिलास मान देह गुण भानै ॥ ज्यौं आगें व्है नृपती गयौ ॥ सेना शब्द बहुत विधि भयौ ॥ १४ ॥ परि सरकारक भेद न पायो ॥ या विधि सरमैं चित्त लगायौ ॥ एसी शीष लई में यातें ॥ निहचल बुद्धि भई मम तातें ॥ १५ ॥ ॥ गुरु एकवीसमो ॥ २१ ॥ ॥ चौपाई ॥ ज्यौं लोकनितैं डरै भुजंगा ॥ बसें ग्रहामें रहे असंगा ॥ सावधान अति थोरौ बोले ॥ गत्यादिक अंतर नहि खोले ॥ १६ ॥ ग्रहारंभ सो दुषको मूला ॥ ते आरंभे जे नर भूला ॥ सरप पराए ग्रहमें रहै ॥ या विधि मुनि अहि शिक्षा गहै ॥ ॥ १७ ॥ गुरु बावीसमो ॥ २२ ॥ चौपाई ॥ एकै आप निरंजन देवा ॥ जाको कोइ लहें नहि भेवा ॥ आपहि तें माया विस्तारे ॥ सत रज तम बहु भेद पसारे ॥ १८ ॥ बहुरि आपहीं सब संग्रहें ॥ निजानंदमय एकैं रहें ॥ तातें ए सब मिथ्या जानौ ॥ याको करता सो सत मानौ ॥ १९ ॥ यह शिक्षा मकरीतें लेवे ॥ सबतें परें ब्रह्मकौं सेवे ॥ ॥ गुरु त्रेवीसमो ॥ २३ ॥ जहां जहां यह मनकौं धारे॥निसिवासर कबहूं नहि टारे॥२०॥राग द्वेष भय क्यौ हीहोई॥होत रूप ताहीको सोई॥भ्रृंगी कीटहु ते यह लीनों॥ त्यों मन हरि चर्णनि थिर कीनों॥२१॥गुरु चोवीसमो ॥ २४ ॥ चौपाई ॥ यह चोवीस गुरुनकी शिक्षा ॥ तोसों में भाषी दृढ दिक्षा ॥ अब तनतें सीष्यौ सो कहौं तेरे सब अज्ञानहि दहौं ॥ २२ ॥ मेरी देह मोहि समुझावै ॥ हृदय ज्ञान

वैराग उपावे ॥ ज्यौं बालापन गयो बिलाई ॥ त्यौं अब यह जोबनवी जाई ॥ २३ ॥ आवै जरा मरणता आगैं ॥ बहु विधि दुःख देहकौं लागैं॥स्वान शृगालानि कौ यह भक्षा ॥ तिन सौं प्रीत न जोर दक्षा ॥ २४ ॥ पुत्र कलत्र अर्थ पशु गेहा कुल कुटंब अरु सेवक जेहा ॥ तिन सौं मिलि जा देहहि सेवें ॥ सोई अंत महादुःख देवें ॥ २५ ॥ आगेंकुं बह कर्म कमावे ॥ अब जमके दरबार पठावे ॥ रस निमित्त खेंचें नित रसना ॥ प्राण सदा चाए जल असना ॥ २६ ॥ नैन रूप अरु शब्दहि श्रवना ॥ इंद्रिय चहैं नारिको रवना ॥ त्वचा परस नासिका गंधा ॥ चरन गवन कर करिहै धंधा ॥ २७ ॥ या विधि सब मिलि लूटें ताकौं ॥ बंध्यौ देहसु देषे जाकौं ॥ तातैं नेह देहको तजियैं ॥ सदा निरंतर हरि कौं भजियैं ॥ २८ ॥ हरि जब मा या गुण विस्तारैं ॥ तब नाना विधि देह संवारैं ॥ तिन तिन मन संतुष्ट न भयौ ॥ बहुर्‍यौं मानव तन निरमयौ ॥ २९ ॥ ताकौं देषि परम सुष पायौ ॥ तामें अपनो धाम बनायो ॥ तब हरिजी बोलें यह बानी ॥ जोइ प्रगट यह बेद बखानी ॥ ३० ॥ मोहि लहें सो या करिलहै ॥ या करि सब भव बंधन दहै ॥ जब मेरे हित करें उपाया ॥ तब मैं याकौं करौं सहाय॥३१॥ तातें यह अतिदुर्लभ देहा ॥ श्रीभगवान रच्यौ निज गेहा ॥ अति दुर्लभ कहु जतन न पावे ॥ जो पावे तो थिर न रहावे ॥ ३२ ॥ प्रतिदिन मृत्यु निरंतर ग्रासे ॥ एकदिना ततकाल बिनासे ॥ जरा रोग भय सोक निधाना ॥ जामें पलक सुषी नहिं प्राना ॥ ३३ ॥ तातें ताहि पाई करि राजा ॥ करि लीजियैं आपनौ काजा ॥ जाते यह छूटें संसारा ॥ जाके दुषको वारन पारा ॥ ३४ ॥ निशदिन देव निरंजन भजियैं ॥ व्है भय भीत विषय सब तजियैं ॥ विषय

षान पान सुत दारा ॥ ए सब देहनि वारंवारा ॥ ३५ ॥ तातें त्याग सकलको कीजै ॥ हरिके चरण कमल चितदीजैं ॥ या विधि इनतें शिक्षा पाई ॥ तब मैं और सकल छिटकाई ॥ ३६ ॥ भुवमें विचरों व्है निहसंगा ॥ या तनहूं कौ छांड्यौ संगा ॥ सदा रहों हरिचरण निवासा ॥ बहु विधि देषों सकल तमासा ॥ ३७ ॥ बहुत गुरुनितें पूरण ज्ञाना ॥ जहं तहं लेवै साधु सुजाना ॥ छूटैं अहंकार अरु ममता ॥ हिरदै आनि विराजै समता ॥ ३८ ॥ निरगुनसगुन भेद पहिचानै ॥ सार असार अथिर थिर जानै ॥ जहां तहां ले ले दृष्टांत ॥ संसे द्वैत मिटावे सांत ॥ ३९ ॥ परिए परमारथ गुरु नाहीं ॥ ए सब गुरुहैं सतगुरु मांहीं ॥ सतगुरुतें सब ज्ञानहि पावैं ॥ तब सब जग अग्यांन मिटावैं ॥ ४० ॥ तातें मेरे सदा आनंदा ॥ हृदय बिराजैं परमानंदा ॥ या विधि जे जे हरिकौं सेवें ॥ तिनकौं हरीचरण निज देवैं ॥ ४१ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ एसें यदुकौं वचन सुनाये ॥ मनके भ्रम संदेह गमाये ॥ राजा बहु विधि पूजा कीनी ॥ करि प्रणाम प्रदक्षिणा दीनी ॥ ४२ ॥ तब राजा कौं करि सनमाना ॥ दत्तात्रे मुनि कियो प्रयाना ॥ राजा वचन धारि उरमांहीं ॥ सबकौ संगत ज्यौं क्षन मांहीं ॥ ४३ ॥ ब्रह्म दृष्टि सबहीं में आनी ॥ एसो भयो परम विज्ञानी ॥ सो राजा जदु बडो हमारो ॥ जिन अपनौ भव संकट टारो ॥ ४४ ॥ तातें उद्धव और न कोई ॥ गुरु आपुनो आपुहि होई ॥ आपुहि बुडैं आपुहि तारे ॥ आपुहि जन्मे आपुहि मारे ॥ ४५ ॥ ॥दोहा॥ यह भाष्यौ विज्ञानमय, सब अद्वैत उपाय ॥ अब तोसौं साधन कहौं, बहुत भांति समुझाय ॥ ४६ ॥ इति श्रीभाग

वतेमहापुराणेएकादशस्कंधेभगवदुद्धवसंवादेअवधूतइतिहाससमाप्तिर्नामनव मोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ॥

दोहा ॥ ॥ होत देह संबंधतैं, याकौं संसृति काल ॥ श्रीधर दशमें ध्यायमें, वरणत कृष्ण कृपाल ॥ १ ॥ सामग्रु साधन बोधको, आतम तत्त्व विचार ॥ सो पुनि वरनन होयगो, उद्धव प्रश्नजुसार ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥

चौपाई ॥ शुन उद्धव अब साधन कहौं ॥ तेरो सब संदेहहि दहौं ॥ जातें उपजे ब्रह्मज्ञाना ॥ छूटैं और सकल भ्रम नाना ॥ १ ॥ मम भक्तनि जे मारग भाषे ॥ ते सब हृदय बेठिमें आषे॥ ते कहिये आतमके धर्मा ॥ और सबैं बंधनके कर्मा ॥ २ ॥ तिनको सावधान ह्वै जाने ॥ वर्णा श्रम कुल मिथ्यामाने ॥ जै जै बहु आरंभनि करैं ॥ सुख चाहैं निसादिन दुखभरैं ॥ ३ ॥ आगे कौं बंधन उपजावे ॥ तिनहि संग जम द्वारे आवे ॥ यौं विचारि आरंभनि तजै ॥ ह्वै निहकाम चरण मम भजै ॥ ४ ॥ जहां लगीहै नाना बुद्धी ॥ सो उद्धव सब जांन कुबुद्धी ॥ द्वैतभावसो भ्रम करि जानौ ॥ सुपन मनोरथ भ्रम करि मानौ ॥ ५ ॥ तातैं और कर्म सब तजो ॥ नित नैमित्तिक कछु इक भजो ॥ तेऊ कछू सत्य नहिं जानै ॥ करे तु करे नहीं तौ भानै ॥ ६ ॥ भक्ति मांहि जो अंतर परैं ॥ तेतो भुलिन कबहूं करैं ॥ जो जा समय न अंतर जाने ॥ तो ता समय सहजमें ठाने ॥ ७ ॥ यमनि मांहि निहचल चित धरे ॥ नियमनि कौं भावैं तो करे ॥ ब्रह्म विज्ञ गुरु सरनहिं जावै ॥ जातें भेद सकलको पावै ॥ ८ ॥ यम अरु नियम

कछू नहिं सेवे ॥ सदगुरु कहे शीष सों लेवे ॥ मान रहित मत्सर नहिं जानें ॥ तन मन अरपि प्रीति कौं ठानें ॥ ९ ॥ जहँ तहँ तें ममता परिहरे ॥ सावधान आलस नहिं करे ॥ तजे असूया वृथा न बोले ॥ तन मन निहचल कदै न डौले ॥ १० ॥ श्रद्धा सहित आशक्ति होई ॥ गुरुचरणनि शिषसेवे सोई ॥ दारा सुत बित गेह कुटंबा ॥ सकल भूत आतम पितु अंबा ॥ ११ ॥ तिन सबहिन कौं सम करि देषैं ॥ मैं मेरो करि कदैं न लेखैं ॥ रहे उदास आस परिहरे ॥ निशदिन ब्रह्म विचारहि करे ॥ १२ ॥ सूक्ष्म स्थूल देह द्वै जेहें ॥ भर्म रूप मायाके तेहें ॥ इन दोनौं तैं आतम दूर ॥ स्वप्रकाश चेतन भरपूर ॥ १३ ॥ स्थूल शरीर प्रगट जड एहा ॥ चेतन करै ताहि वह देहा ॥ सो वहहीं तन जड है अंगा ॥चेतन होइ आतमा संगा ॥ १४ ॥ सो आत्मा दुहूंतें न्यारा ॥ दुहुं प्रकासक दुहु आधारा ॥ ज्यौं इक काष्ठ अनल परिजेरे ॥ सो दूजे परकासहि करे ॥ १५ ॥ परिसो अनल दुहूं तें न्यारा ॥ स्वप्रकाश आतम आधारा॥ बहुधा सो बहु काठनि संगा ॥ पावे उतपति थिति अरु भंगा ॥ १६ ॥ त्यौं द्वै तन हरि माया किये ॥ ते आतमा आपु करि लियैं ॥ तिन संग जन्म मर्ण दुष पावे ॥ लहैं अनंद जबहि छिटकावे ॥ १७ ॥ तातैं बहु विधि करै विचारा ॥ आतम जानें सबतें न्यारा ॥ एक अजन्मा अरु अविनासी ॥ चैतन घन पूरण सुष रासी ॥ १८ ॥ तन उपजैं विनसैं बर ताहीं ॥ परम अशुद्ध शुद्ध नहिं काहीं ॥ सकल विकारनिकौ संघाता ॥ प्रगटहि दीसे आवत जाता ॥ १९ ॥ मेरो यासो केसो संगा ॥ मैं चेतन यह जड बहुरंगा ॥ यौं विचारि त्यागे तन ममता ॥ आतम दृष्टि सकलमें समता ॥२०॥ या विधि हृदय होइ थिर ज्ञाना॥

मिलै ब्रह्म छूटैं सब नाना ॥ प्रथम अरणि आस्थिर गुरु देवा ॥ दूजी शिष्यकरे तिन सेवा ॥ २१ ॥ गुरुके बचन श्रवन मंथाना॥या विधि उपजैं पावक ज्ञाना॥उपजैं ज्ञान तनकैं गुन दहैं॥कर्मबीज कोई नहिं रहैं ॥ २२ ॥ तब ज्यौं पावक तेज समावैं ॥ इंधन विना न पलक रहावैं ॥ त्यौं आतमा ब्रह्ममय होई ॥ इंधन कर्म भस्म करि सोई ॥ २३ ॥ अरु जे मूढन यह विधि जानैं ॥ ते बहुविधि कर्मनि कौं ठानैं ॥ ते कर्मनिकैं फलनि भुगावैं ॥ जन्म मर्णको अंत न आवैं ॥ २४ ॥ जहां जाइ तहां तहां काला ॥ निशदिन रहे सदा बिहाला ॥ यह जगदीस त्यौं को त्यौंहीं ॥ परि एकोपल रहे न यौंहीं ॥ २५ ॥ औरे और होइ आकारा ॥ तिन संगति मन बहुत प्रकारा ॥ कबहूं ज्ञान हृदैं नहिं आवे ॥ जन्म जन्म मरि मरि दुष पावे ॥ २६ ॥ कर्म निजो कर्मनि आचरैं ॥ सुष अरु जो दुष भोगनि करैं ॥ ए चारौ दीसे परितंत्रा ॥ तातें सब तजियें यह मित्रा ॥ २७ ॥ जे पंडित श्रुति स्मृति जानैं ॥ तत्त्व लहै विनु कर्मनि ठानैं ॥ ते मूरषहि देह अभिमानी ॥ आपुहि आप कहावत ज्ञानी ॥ २८ ॥ हरि जन संग न कबहूं करैं ॥ तत्त्व न सुनैं कर्म विस्तरैं ॥ तिनतैं भले जे कछु नहिं जानैं ॥ तत्त्व वचन सुनि हृदये आनैं ॥ २९ ॥ जद्यपि अंत सुषनि कौं जानैं ॥ अरु क्षणभंगुर देहनि मानैं ॥ परिसो तत्त्व न समझे तेऊ ॥ जातें लहैं भक्तिको भेऊ ॥ ३० ॥ काल मृत्यु जाकौं नित ग्रासैं ॥ ताकौं कहो कहां सुख वासैं ॥ ज्यौं कोई मारन कौं लीजैं ॥ सूली निकट षडो ले कीजैं ॥ ३१ ॥ अरु ताकौं जो भोग भुगावैं ॥ सो वह कहो किसो सुष पावैं ॥ अरु त्यौंही न स्वर परलोका ॥ मद मत्सर निंदा भय सोका ॥ ३२ ॥ तिनके हेत जतन बहु करैं ॥ सिद्धन होइ विघन अति परैं॥ज्यौं षेतीमें विघन अनेका॥त्यौं स्वर्गादि

लहैको एका॥३३॥अरु जो लह्यौ तोहु थिर नाहीं॥ देषत बिनसि जाइ पल माँहीं॥ ईहां यज्ञ करैं बहु कोई॥ अरु जो अंतराय नहिं होई॥ ३४॥ तब सो स्वर्ग लोक कौं जावैं॥ ह्वै करि देव दिव्य सुष पावैं॥ अपनैं पुन्यनिकौं उपजायौ॥ उत्तम जाहि बिमानहि पायौ॥ ३५॥ बहु गंधर्व गानकौ करैं॥ बहु सुंदर नारी मन हरैं॥ इच्छा होइ तहां चलि जावैं॥ सहित बिमान बिलंब न लावैं॥ ३६॥ अमृत पान तहां नित करैं॥ वस्त्राभर्ण देह बहु धरैं॥ यौं नित मगन बहुत सुष पावैं॥ परवेकी कछु चित्त न आवैं॥ ३७॥ जेतो पुन्य इहांको होई॥ तें तो रहे स्वर्गमें सोई॥ पुन्य क्षीण पुनि होवे जबहीं॥ काल तहां ते ढाहे तबहीं॥ ३८॥ सो सुष कहो तज्यौं क्यौं जावै॥ ते सुषकी कछु कहन आवैं॥ रह्यौ चहैं परिक्यौं करि रहैं॥ काल अधीन महादुष लहैं॥३९॥ कोई सुष पावैं कछु जेतौ॥ छीन लिये होवे दुष तेतौ॥ सो तजि स्वर्ग भूमिमें आवै पीछैं जोनि अनंतनि पावै॥ ४०॥ यह भाषी बिधिकी गति तोसौं॥ अब निषेधकी सुनि यो मोसौं॥ जो कुसंगमें प्रानी परे॥ तो बहुभांति अधर्म निकरे॥ ४१॥ वंछे काम इंद्रि आधीना॥ इस्त्रीलंपट लोभी दीना॥ बहु जीवनकी हिंसा करैं॥ भूत प्रेतगनकौं अनुसरैं॥४२॥ मेंहीं एक बसौं सब माहीं॥तिनके द्रोह नरकमें जाहीं॥बहुरि आनिथा बरतन लहे॥ जन्म जन्म बहु संकट सहे॥४३॥ तातें बिधि निषेध जे करैं॥ते सब जन्म मरनने परैं॥कर्म करे तिन तैं तन धरे॥तन धरि धरि बहु दुष सौं मरे॥ ४४॥ तातें प्रवृत्तिमें सुख नाहीं॥ भावें ब्रह्मलोककि न जाहीं॥ लोकपाल सब लोकसमेता॥ इतनो रहै ब्रह्म दिन जेता॥ ४५॥ सोई ब्रह्मा अंतन रहे॥ तीतर बाज काल त्यौं गहे॥ अमि रहे मेरे भय माहीं॥ पवन वहे निश्चलपल नाहीं॥ ४६॥ सूरज

चंद एक रस चलैं ॥ मरजादा तैं सिंधु न टलैं ॥ मृत्यु निरंतर सबकौं ग्रासे ॥ मेरे कालरूपतें त्रासे ॥ ४७ ॥ तातैं कहूं न सुष प्रवृत्ती ॥ सुष चाहे सो गहें निवृत्ती ॥ अरु ए इंद्रिय कर्म उपावैं ॥ तिनकौं रज सत तम वरतावैं ॥ ४८ ॥ सो आतम इंद्रिय सब होई ॥ तातैं सुष दुष पावे सोई ॥ परि आतमा अकरता जानो ॥ भोग रहीत ताहि तें मानो ॥ ४९ ॥ कर्मरु भोगा दिक है जेते ॥ इंद्रिय अरु गुण कृत सब ते ते ॥ ज्यौं लगि यह इंद्रिय गुण बंधा॥ त्यौं लगि मिटैं न गुण संबंधा ॥ ५० ॥ तन मन बंध मिटैं नाहि तौलौं ॥ नानाभांति बहुत विधिं जौलौं ॥ नाना भाव रहै जब लगैं ॥ पराधीन आतम तब लगैं॥५१॥पराधीन जब लगि यह रहैं ॥ तब लगि काल निरंतर गहैं ॥ तातें जो प्रवृत्ति रत होवैं ॥ जुग जुग जन्म जन्म ते रोवैं॥५२॥प्रथमहु तो में एक निरंजन ॥ ताही तें उपज्यौ यह अंजन॥काल आत्मा लोकरु वेद॥धर्म सुभाव बहुत विधि भेद ॥५३॥ ए सब माया सत्य न कोई ॥ तातें बुध अनुरक्त न होई॥एक निरंजन आतम जानै तब सब संकट भवके भानै ॥५४॥ लोकरु वेद वासना तजैं ॥ इंद्रिय देह विषे नहिं भजे ॥ मन पहुचे सो मिथ्या लेषैं ॥ मनातीत सो जहां तहां देषैं ॥ ५५ ॥ ब्रह्मरु आतम एक विचारैं ॥ या विधि सकल उपाधी जारैं ॥ तबहीं एक ब्रह्मकौं पावैं ॥ छूटै द्वैत बहुरौं नहिं आवैं ॥ ५६ ॥ यह आतम अरु देह विवेका ॥ याकौं जानि एककौ एका ॥ एसैं बचन कहे जब कृष्ण ॥ उद्धव दास करी तब प्रष्ण ॥ ५७ ॥ उद्धव उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ हे प्रभु जो यह सारौ भर्मा ॥ इंद्रिय देह विषय गुण कर्मा ॥ अरु आतमा अनीह अबंधा ॥ ताकौं कियो कौंन विधि बंधा ॥ ५८ ॥ अरु जो बहुरि ज्ञान कौं लहैं ॥ छोडि उपाधि देहमें रहैं ॥ सो बहुर्‍यौं क्यौं लिप्त न

होई ॥ अरु क्यौं करि जानी जैं सोई ॥ ५९ ॥ कैसे बिचरे कैसे रहे ॥ कैसें जीवे कैसें कहे ॥ कैसें पहिरे कैसे सोवें ॥ कैसें सुनें कोन विधि जोवें ॥ ६० ॥ अरु आतम एकै द्वै नाहीं ॥ एक मुक्त क्यौं एक बंधाहीं ॥ एकै बंधे एक क्यौं मुक्ता ॥ एतो बहुत एक कौं उक्ता ॥ ६१ ॥ गुण अनादि आतमा अनादी ॥ तातें यह तो बंधन आदी ॥ नित्य मुक्त क्यौं कहियें देवा ॥ या कौं मोहि बतावो भेवा ॥ ६२ ॥ ॥ दोहा ॥ ॥ ए उद्धव निज भक्तके, सुनि करि निर्मल बैन ॥ ताको प्रति उत्तर कह्यौ, हरिजी करुणा ऐन ॥ ६३ ॥

॥ इति श्रीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधेश्रीभगवदुद्धवसंवादेभाषायांदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥

॥ दोहा ॥ ॥ बंध मोक्ष हरि भक्ति, भक्त इनके लक्षण सार ॥ कहे ग्यारमैं ध्यायमैं, श्रीधर नंदकुमार ॥ १ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ चौपाई ॥ सुनि उद्धव अब परम ज्ञाना ॥ जातें भेद मिटे तुम नाना ॥ बंधरु मुक्त तोहि समझाऊं ॥ तेरो सब अज्ञान मिटाउं ॥ १ ॥ बंध मुक्त जो कहियै कोई ॥ सो तो सकल गुणनितें होई ॥ ते सब गुण मायाके जानौ ॥ इनतें दूरि आतमा मानौ ॥ २ ॥ सोकरु मोह जन्म अरु सुख ॥ भय मरनादिक अरु बहुदुःख ॥ ए सारै माया कृत केवल ॥ सदा एक आतमनिह केवल ॥ ३ ॥ ज्यौं सुपनैं सुखदुःख अनेका ॥ तिनमैं आतमकौं नहिं एका ॥ ते सब बुद्धिरु मनकों होवे ॥ इंद्रिय देह प्रगटतैं सोवे ॥ ४ ॥ पुनि बुध्यादिक कछु नहिं रहै ॥ ताकौं प्रगट शुषोपति कहै ॥ तब आतमा

निरंतर होई॥परिताकौं सुखदुख नहिं कोई॥५॥ज्यौं सुषपति में आतमर कहैं॥त्यौं व्यवहार पीछ लें गहैं ॥ परिताकौं कोई न विकारा ॥ ए सब मायाके व्यवहारा ॥ ६ ॥ परि आतमा आप महि मानैं॥ तातै सुखदुख बहु विधि जानैं॥परि आतमा एकरस नित्य॥बंध मोक्ष ए सकल अनित्य ७ उद्धव जानौ एक अविद्या॥ अरु दूजी जौ कहिए विद्या ॥एहैं दोऊ मेरी शक्ती॥इनमें सबहिन की आशक्ती ॥ ८ ॥ बंधन कऱ्यौ चहौ में जाकौं ॥ प्रेरि अविद्या पठवौं ताकौं ॥ अरु जाके बंधनहि मिटाऊं ॥ ताकौं विद्या शक्ति पठाऊं ॥ ९ ॥ ए दोऊ मुक्ती अरु बंधा ॥ ते मम शक्तिनके संबंधा ॥ आतम हैं सो मेरो रूपा ॥ सबतै न्यारौ परम अनूपा ॥ १० ॥ ज्यौं शशिकै प्रतिबिंब अनेका ॥ परिते बहुत नहिं सब एका ॥ अरु जा जाको घट बिन साई ॥ सोई सो सशि माहि समाई ॥ ११ ॥ त्यौं सब आतम मेरो अंसा ॥ परि घट संग लहैं दुष संसा ॥ घटकौ नासकैर सो तबहीं ॥ विद्या शक्ति जाहि द्यौं जबहीं ॥ १२ ॥ सोई सो तब मो कौं लहैं ॥ और सकल भवहि मे रहैं ॥ अरु प्रतिबिंब घटनि हूं माहीं ॥ सदा अलिप्त लिप्त कहूं नाहीं ॥ १३ ॥ परिघट संग लिप्तसैं होवैं ॥ अरु त्यौं लिप्त और हूं जोवैं ॥ त्यौं आतमा सकल तैं न्यारा ॥ सदा अलिप्त न लिपैं विकारा ॥ १४ ॥ परि यातनमैं आप बंधाना॥ताकै संग लहैं दुख नाना ॥ अबमैं बद्ध मुक्तकी कहौं ॥ तेरे सब संदेहहि दहौं ॥ १५ ॥ एक देहमें द्वैको वासा ॥ परमातम आतमकै पासा ॥ ज्यौं द्वे पंषि रहैं तरु माहीं ॥ तरुतें भिन्न लिप्त कछु नाहीं ॥ १६ ॥ दोऊ चेतन एक समाना ॥ सषा रूप एक अस्थाना ॥ आपहु तै तिन बासा कियौ ॥ तिनमैं एक तरुहि चित दियौ ॥ १७ ॥ देह वक्षकैं सुष फल खावैं ॥ तातें दुख आपुहितें आवैं ॥ तब ता कांज कर्म

बहु करैं॥ तिनतें जुग जुग जनमे मैर ॥ १८ ॥ देह मरे मरनौं करि जाने ॥ देह जन्मतें जन्महि माने ॥ एसें सदा बहुत दुष पावैं॥ द्वै मैं सो आतमा कहावैं ॥ १९॥ परमातमा देह तरु मांहीं॥ सुष फल कबहूं खावै नाहीं ॥ तातें कछू कर्म नहिं गहे ॥ निजानंदमय निहचल रहैं ॥ २० ॥ यौ परमातम आतमं जानैं ॥ देह अतीत दुहूंकौं मानैं ॥ सुष फल अरु आरंभनि तजैं ॥ मुक्ति होइ परमातम भजैं ॥ २१ ॥ ज्यौं तन माहि मुक्त परमातम ॥ विद्या पाइ बसैं त्यौं आतम ॥ तनमें है परितनमें नाहीं ॥ आपुहि जान भयौ थिर मांहीं ॥२२॥ सुपन देषि ज्यौं जागे कोई॥ सो पुन सुपन चितारे सोई ॥ परि सो सुपन देहसो सुपना ॥ मिथ्या जानि भरमतें उपना ॥२३॥ अरु जो सहित अविद्या होइ ॥ सो तिनमें नहि परि हैं सोई ॥ ज्यौं सोवत सुपना तन पावैं ॥ ताकौं आप जानि मन लावैं ॥ २४ ॥ तनमैं बद्ध मुक्त जे जीवा ॥ बद्ध जीव मुक्तसो शीवा ॥ बहुरि कहौं मुक्तके लक्षण॥जिनकौं जानी होइ विचक्षण॥२५॥ देखे सुने कहें कछु करैं॥सो कछु कदे हदे नहिं धरैं॥ सकल अर्थ इंद्रिय कृत जानैं ॥ आपुहि एक अकरता मानैं ॥ २६ ॥ पूर्व कर्म आधीन शरीरा॥ कर्म करें इंद्रिय मन सीरा ॥ तनमें वास कियो नहिं जानैं ॥ मूरख आपुहि करता मानैं ॥ २७ ॥ बहुरि मुक्त एसी विधि रहैं ॥ अहंकार यातन कौ दहै ॥ आसन अट न असन अरु सयना ॥ दरस परस अघ्रानरु बयना ॥ २८ ॥ इनमैं इंद्रियकौं वरतावै ॥ आपन कछुहू प्रीति लगावै ॥ रहै माहि परिलिप्त न होई ॥ ज्यौं आकाश पवन रवि तोई ॥ २९ ॥ विद्यानाम असी इक पाई ॥ हढ वैराग सरान चढाई ॥ तासौं काटैं संसय सारै ॥ जागि सकल भ्रम भेद निवारै ॥ ३० ॥ इंद्रिय प्रान बुद्धि मन माहीं ॥ कबहूं कछु वासना नाहीं ॥ सो जब

पितनहूं में दरसैं ॥ परिसो मुक्त तनहिं नहिं परसैं ॥ ३१ ॥ एक दुष्ट तन पीडा करैं ॥ एक बहुत पूजा विस्तरैं ॥ परि बुध रोष तोष नहिं आनैं ॥ सकल देह कृत मिथ्या मानैं ॥ ३२ ॥ विधि निषेध जो कोई करै ॥ किंवा कहैं ग्रंथ विस्तरै ॥ मुनि कछु भलौं बुरौ नहिं देषे ॥ गुन अरु दोष रहित सम लेषे ॥ ३३ ॥ विधि निषेध नाहीं कछु करैं ॥ ना कछु कहैं नहिरदे धरैं ॥ निसदिन रहें ब्रह्म रस मत्त ॥ इच्छामैं ज्यौं जड उन मत्त ॥ ३४ ॥ एसे चिन्ह मुक्तमैं मानो ॥ अरु मुमुक्षुकौ साधन जानौ ॥ मुक्त भयौ जे चाहे कोई ॥ ए सब साधन साधे सोई ॥ ३५ ॥ जिन सब शब्द ब्रह्महै जान्यौ ॥ परि निज तत्त्व नहीं पहिचान्यौ ॥ इन साधननि माहि रत नाहिं ॥ तिनके श्रम सब मिथ्या जाहीं ॥ ३६ ॥ शब्द ब्रह्म ब्रह्मके काजा ॥ हरिजी हरिभक्त नके साजा ॥ तातैं ब्रह्म विना श्रम ऐसै ॥ बंध्या गाइ सेइजें जेसै ॥ ३७ ॥ वंध्या गाइ दुग्ध बिन होई ॥ पराधीन तन राषे कोई ॥ अक्षति नारी पुत्र अन्याई ॥ धर्म बिहीनौ धन अधिकाई ॥ ३८ ॥ ज्यौ इनतें दिन दिन दुख होई ॥ कबहू सुख पावै नहिं कोई ॥ मोहि बिना त्यौं बहुविधि बानी ॥ केवल बंध नहीं कों जानी ॥ ३९ ॥ मोतें जग उतपति संहारा ॥ सब प्रतिपालन विविध प्रकारा ॥ किंवा जन्म कर्म बहुतेरे ॥ जा वानीमें नाहीं मेरे ॥ ४० ॥ मेरे नाना विधि संबंधा ॥ जा बानीमैं नाहीं बंधा ॥ बंध्या बानी ताहि विचारैं ॥ निहफल जानि न पंडित धारैं ॥ ४१ ॥ या विधि जानी बहुत प्रकारा ॥ बहुत भांति करि बहुत विचारा ॥ जहां तहां तें मनहि निवारैं ॥ पूरण एक ब्रह्ममैं धारैं ॥ ४२ ॥ जो तजि दूजे नाना अर्थ ॥ मन धारणकौं नहीं समर्थ ॥ सो मम हेत कर्म सब करे ॥ प्रेम मगन फल जस परिहरे ॥ ४३ ॥

औरे कर्म अकर्म विकर्मा ॥ बंधन जानि तजे सब भर्मा ॥ जाहीतैं उपजै मम भक्ती ॥ ताही में राषे अनुरक्ती ॥ ४४ ॥ श्रद्धा सहित सुने गुन मेरे ॥ जिनतें कर्म न आवे नेरे ॥ गावे समरैं अस्तुति करैं ॥ प्रेम सहित निशादिन विस्तरै ॥ ४५ ॥ जे कछु कर्म काम अरु अर्थ ॥ करै सकलतैं मेरै अर्थ ॥ मम आधीन निरंतर रहे ॥ मन क्रम वचन आननहि गहे ॥ ४६ ॥ या विधि होवे निश्चल भक्ती ॥ और सकलतें सहज विरक्ती ॥ तब मेरो निजरूपहि जानै ॥ तातैं नाना भेदहि भानै ॥ ४७ ॥ तब ताही पद मांहि समावैं ॥ जातें जन्म फिरी नहिं आवैं ॥ परि यह सत संगत तें होई ॥ सत संगति विनु लहे न कोई ॥ ४८ ॥ भक्तनि बिना भक्ति नहि पावैं ॥ भक्ति विना नहि मोमैं आवैं ॥ ता तैं सत संगतकूं करै ॥ दूजो जत सकल परिहरै ॥ ४९ ॥ दोहा ॥ ए सुनि हरजीके वचन, मन में वाढी प्यास ॥ तव भक्तन अरु भक्तिकैं, लछन पूछैं दास ॥ ५० ॥ उद्धव उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ हे प्रभु पूरण परम अनंता ॥ या जग बहुत भांतिके संता ॥ जाको संत कहौ तुम देवा ॥ ताकौ मोहि बतावो भेवा ॥ ५१ ॥ अरु जो भक्ति कौंन जो ठानैं जातैं तव निज रूपहि जानैं ॥ तब उद्धवको देबहु माना ॥ कृपासिंधु बोले भगवाना ॥ ५२ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ परम कृपाल द्रोह नहि जानै ॥ क्षमावंत अरु सत्य बषानैं ॥ निंदा रहित द्वंद्व सब समता ह्रदै पर उपकार नहि ममता ॥ ५३ ॥ आप काम बुद्धि थिर रहै ॥ इंद्रिय जित कोमलता गहै ॥ सदाचार संग्रह नहि जानै ॥ लघु आहार नई हा ठानैं ॥ ५४ ॥ सीतल ह्रदै विचारहि करै ॥ धर्म

आपनें दृढता धरै ॥ सावधान अरु रहित विकारा॥धीरजवंत दया अधिकारा॥५५॥सोक मोह अरु क्षुधा पिपासा ॥ जरा मृत्यु जीतैं षट पासा॥ आपु मान अपमान न जानैं॥औरनकों बहु मानहि ठानैं ॥ ५६ ॥ जो कोई सरणागत आवे ॥ ताकौं ज्यौं त्यौं ज्ञान उपावै ॥ सबकौं मित्र शुभाशुभ जानै ॥ दृढ विस्वास सकल भ्रम भानै ॥ ५७ ॥ मम आधीन निरंतर रहै ॥ साधनको बलकदैन गहै ॥ मोही कौं करता करि जानैं ॥ कबहूं भूलि न आपो आनैं ॥५८॥ जद्यापि वेद रूपमें गाए ॥वर्णाश्रम कुलधर्म बताए ॥ तोहूं विधि निषेध सब तजैं ॥ दृढ निश्चल मम चर्णनि भजैं ॥ ५९ ॥ इसो भक्त निज भक्त कहाबैं ॥ ताकैं संग भक्तिकौं पावैं ॥ देसरु काल रहित सर्वातम ॥ चिदानंदमय प्रभु परमातम ॥ ६० ॥ ऐसो जानि जानि मुहि भजे ॥ और सकल संकलपहि तजे ॥ सो मेरो कहियैं निज भक्ता ॥ तासौं नितहूं जै अनुरक्ता ॥ ६१ ॥ अरु जे एसो मोहि न जानैं ॥ परि अत्यंत प्रीतिकौं ठानै ॥ ले करि मोहि सकल परिहरै ॥ ते जन मोहि आप वस करै ॥ ६२ ॥ ए भक्तनकैं लच्छन कहिए ॥ मेरि कृपाहूं तें ते लहिए ॥ तिनकौं पाइ भक्तिकौं पावैं ॥ भक्ति पाइ मम चर्णनि आवैं ॥ ६३ ॥ तातैं मोहि चहै जो कोई ॥ मम संतनकौं सेवे सोई ॥ अबमें कहौं भक्तिके अंगा ॥ जातें होवें मेरो संगा ॥ ६४ ॥ मम प्रति मामें मोकौं भजे ॥ मन क्रम वचन फलादिक तजे ॥ हितसौं दर्श पर्श परिचर्या ॥ अस्तुति अरु दंडोत सपर्या ॥ ६५ ॥ मेरी कथाविषे अति श्रद्धा ॥ मो बिनु कछु न करै पल अर्धा ॥ मेरे जन्म कर्म गुन गावे ॥ सदा निरंतर मोकों ध्यावे ॥ ६६ ॥ तन अरु तनके पीछे जे ते ॥ मोकों सकल समरपै ते ते ॥ जनमाष्टमी आदिजे पर्वा॥बहुत उछाह करै ते सर्वा ॥ ६७ ॥ नृत्य

गीत अरु बहुविधि वाजा ॥ मंदिर बहुत रूप विधि साजा ॥ कथा कीरतन बहु विधि चर्चा ॥ जागर्णादिक बहुविधि अर्चा ॥ ६८ ॥ ऐसैं जानि बहुत उच्छाहा ॥ सब परवणि सब विधि निरवाहा ॥ मथुरादिक हरिधाम निजावैं ॥ बहुत भांतिकरि प्रेम बढावैं ॥ ६९ ॥ औरनिकौं आचरण सिषावैं ॥ ठौर ठौर प्रतिमा पधरावैं ॥ बहुविधि करें बाग फुलवाई ॥ क्रीडा थान सहित चतुराई ॥ ७० ॥ पुर मंदिर बहुभांति करावैं॥ज्यौं हरि अरु हरिभक्त निभावैं ॥ आप माहि जो शक्ति न होई ॥ तोहूं उद्यम ठाने सोई ॥ ७१ ॥ बहुविधि महिमा कहे कहावैं ॥ और नसौं मिलि करै करावैं ॥ मांदिरादि बहुभांति बुहारैं ॥ बहुविधि सींचे धूल निवारैं ॥ ७२ ॥ चित्र विचित्र चोक बिस्तारै ॥ ह्वै करि दास आप निस्तारै ॥ मान रहित कछु दंभन जानैं॥जो कछु करैं सो नहीं बखानैं॥७३॥मोकौं करै आरती जासौं ॥ और कछू नहिं देखे तासौं ॥ मम प्रसाद प्रीति सौं लेवे ॥ प्रीती हींन जीव नहिं देवे ॥ ७४ ॥ यौंही ज्यौं ज्यौं उपजे प्रेमा ॥ त्यौं त्यौं अधिक बढावे नेमा ॥ मम भक्तनिके रहै अधीन ॥ तन धन सोंपे नितले लीन ॥ ७५ ॥ अरु एकादश ठोरनि भद्रा ॥ मम पूजा करि हरे अभद्रा ॥ सूर्य अग्नि विप्र अरु गाई ॥ भक्तवेष आकाशरु वाई ॥ ७६ ॥ जल अरु धरनि आपमें त्यौंहीं ॥ सबनि माहिं मम पूजा योंही ॥ विद्या त्रय सूरजकी पूजा ॥ मोंकों छांडि न जाने दूजा ॥ ७७ ॥ वरषा राजस करि उपजावैं॥ सात्विक सीत सबनि वरतावैं ॥ तामस ग्रीषम सकल विनासे ॥ सकल जगतकौं आपु प्रकासे॥ ॥ ७८ ॥ तातैं मेरी परम विभूती ॥ ऐसैं जानि करै अस्तूती ॥ पावक मांहि होम करि यजे ॥ विप्रनि अतिथि भावसों भजे ॥७९॥ त्रिण जलादि गाइकी पूजा ॥ भक्त भेंषमैं और न दूजा॥

भक्त भेष निज बंधव जानैं ॥ अति प्रसन्न है पूजा ठांनै॥८०॥ज्यौं अपने बंधु संबंधी ॥ तिनसौं प्रीति सब निहे बंधी ॥ तिनकौं बहुत भांति करि सेवे ॥ तन मन धन निहचल करि देवे ॥ ॥ ८१ ॥ त्यौंही भक्त आपनें भाई ॥ ऐसैं जानि करे अधिकाई ॥ तन मन धनसों प्रीति बढावैं ॥ जिनतें मेरे पदहीं पावैं ॥ ८२ ॥ हृदयाकाश ध्यानसों सेवैं ॥ सब आधार पवन चित देवैं ॥ जलको जल अरु फूल फलादी ॥ अरु धरणी पूजे मंत्रादी ॥ ८३ ॥ भोगनि सों निज देहहि भजे ॥ मो बिच अंतराय सब तजे ॥ सब भूतनमें मोकों जाने ॥ सम दरसन यह पूजा ठानें ॥ ८४ ॥ इन सब ठौरनि पूजा करे ॥ मेरो रूप हृदेमें धरे ॥ रूप चतुरभुज आयुध चारी ॥ स्याम सरीर पितांबर धारी ॥ ८५ ॥ सीस मुकुट सुभ कुंडल्ल करना ॥ कौस्तुभादि बहुविधि आभरना ॥ ऐसो रूप सबनिमें ध्यावे ॥ सावधान व्है प्रीति बढावे ॥ ८६ ॥ या विधि वाइ कूप सर बागा ॥ जप तप दान दया वृत जागा ॥ मेरे हेत कर्म जो करै ॥ मो विन और हृदे नहिं धरै ॥ ८७ ॥ इन साधननि करे नर जोई ॥ प्रेम भक्ति मम पावे सोई ॥ ए साधन करहीं इन भांती ॥ साधु मिलाप होइ दिनराती ॥ ८८ ॥ तिनतें एसी जुक्ती पावैं ॥ जातें ज्ञान भक्ति उर आवैं ॥ तातैं ज्ञान भक्ति कौ कारन ॥ एक भक्त भवसागर तारन ॥ ८९ ॥ तातैं भक्तन सौं हितलावैं ॥ जितनैं मेरी भक्तिहि पावैं ॥ तिनकौ बनिज भक्तिको नित्त ॥ कबहूं और न आवे चित्त ॥ ९० ॥ मैं उनको मेरो हे सोंई ॥ ऐसो भेद न जानैं कोई ॥ जो कछु कहैं करों मैं सोई ॥ जद्यपि मेरे मन नहिं होई॥ ९१ ॥ मोहि मिलनको एक उपाया ॥ बहुविधि षोजत और न पाया ॥ साधु संग मिलि भक्तिहि करहीं ॥ सोई एक जगत जल तरहीं ॥९२॥ भक्त

न विना भक्ति नहिं पावै ॥ भक्ति विना नहिं मोमें आवै॥मो बिन और जहां जहँ जाई ॥ तहँ तहँ काल निरंतर खाई॥ ९३ ॥ यह अति गोप्य मतोहै मेरो ॥ मम आधीन चित्तहै तेरो ॥ तातैं यौं यह तोसौं कह्यौ ॥ आगैं कछु कहिवे नहिं रह्यौ ॥ ९४ ॥ दोहा॥ बहुरि गोप्य अपनो मतो, तोहि कह्यौ समुझाए ॥ जातैं छुटै जगत भय, मोमें रहे समाय ॥९५॥ इतिश्रीभागवतेमहापुराणे एकादशस्कंधेश्रीभगवदुद्धवसंवादेभाषायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

॥ दोहा ॥ ॥ महिमा संगतिसारतैं, कर्म फलनको त्याग ॥ कहीं बारमैं ध्यायमैं, यथा व्यवस्था लाग ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ चौपाई ॥ उद्धव गोप्य मतो सुन मेरौ ॥ पावैं मोहि मिटे भव फेरौ ॥ आप मिलनको पंथ दिखाऊं ॥ औरै सकल कुपंथ मिटाऊं ॥ १ ॥ जोग कहीजैं अष्ट प्रकारा ॥ सांख्य प्रकृतिरुपुरुष बिचारा ॥ बहु विधि वर्णा-श्रमके धर्मा ॥ सकल त्यागिं होवे निहकर्मा ॥ २ ॥ वेदादिक बहु विद्या पाठा ॥ जहां लगी हैं तप अतिकाठा ॥ होम जज्ञ सर वापी कूपा ॥ इच्छा दान समय अनुरूपा ॥ ३ ॥ एकादशी आदि व्रत जे ते॥गुप्त मंत्रमें रेंहें ते ते ॥ मम प्रतिमा पूजा आचरना ॥ तीरथ अटन नियम यम करना ॥ ४०॥ औरौं सम दम आदिक जे ते ॥ साधन सकल मुक्तिके ते ते ॥ इन सबहिनतें मोहिन पावै ॥ साधू जन पल मांहि मिलावैं ॥ ५ ॥ उनतैं मनकौ संग न छूटै ॥ मम चरण निमैं चित न चहूटै ॥ तातैं मोहि न पावै उनतैं ॥ पावै वचन साधुके सुनतैं ॥ ६ ॥ साधू ऐसैं

वचन सुनावैं ॥ शत्रु मित्र सुख दुःख जनावैं ॥ सार असार कालनिःकालां ॥ साधू दिषावैं सब ततकाला ॥ ७ ॥ सबतैं मनकौ संग मिटावैं ॥ मेरे चरणकमल लपटावैं ॥ ऐसी विधि भव सागर तारैं ॥ मेरे जन ततकाल उधारैं ॥ ८ ॥ जे ते तरे तेंरंगे जेते ॥ अरु अबहूं तरतेहें केते ॥ ते सब साधुसंगतैं जानो ॥ दूजौ और उपाय न मानों ॥ ९ ॥ षग मृग जातुधान असुरादिक ॥ चारण सिद्ध नाग गुह्यादिक ॥ अपसर विद्याधर गंधर्वा ॥ जिन जिन पायौ ते ते सर्वा ॥ १० ॥ बैस्य शूद्र अंतज अरु नारी ॥ बहु राजस तामस अधिकारी ॥ जुग जुग जे सत संगति आए ॥ तिन तिननहीं मेरे पद पाए ॥ ११ ॥ वृत्रासुर वृषपर्वा बाना ॥ बलि प्रहलाद बिभीषण जाना ॥ मय सुग्रीव ऋक्ष हनुमंता ॥ गज अरु गीध व्याध अघवंता ॥ १२ ॥ तुलाधार कुब्जा वृजगोपी ॥ धर्मनकी सीमा जिन लोपी ॥ जज्ञवंत विप्रनकी बनिता ॥ पुरुषनकी कीनी अवमनिता ॥ १३ ॥ और अनेक कहांलों कहियै ॥ कहत कहत कछु अंतन लहियै ॥ तिन कछु विद्या वेद न जानै ॥ सांख्यरु जोग नहीं पहिचानै ॥ १४ ॥ जप तप यज्ञ वृता दिन कीनै ॥ और धर्म नहिं कोई चीनै ॥ परिसो साधु संगति न पाये ॥ ते सब मेरे चरणनि आये ॥ १५ ॥ अरु तुम उद्धव यौं मति जानौ ॥ तिनकी संगति मेरी मानौ ॥ उद्धव संतरुमें द्वे नाहीं ॥ मैंहीहों संतन उममांहीं ॥ १६ ॥ किनहूं मिलौं धारिकै तनकौं ॥ मिलकर सोधौं तिनके मनकौं ॥ ऐसी विधि एकनिकों तारौं ॥ एकनि साधुरूप उधारौं ॥ १७ ॥ साधुनि ह्वै मनके मल हरौं ॥ सो मन अपनैं चर्णनि धरौं ॥ ऐसी विधि एकनि उद्धारौं ॥ जहँ तारौं तहँ मेहीं तारौं ॥ १८ ॥ साधु संगसो मेरो संगा ॥ साधु सकल है मेरो अंगा ॥ तातैं दोउ

साधु संग जानौ ॥ केतो दो मेरे तन मानौ ॥ १९ ॥ गोपी गाइ वक्ष नग नागा ॥ औरौं मूढ बुद्धि बडभागा ॥ मम सत संग प्रेम तिन बांध्यौ ॥ भाव भक्ति मोकों आराध्यौ ॥ २० ॥ और कछु साधन नहिं जान्यौ ॥ अरु नहिं ब्रह्मरूप करि मान्यौ ॥ परि तिनको हित मोसों भयो ॥ तातें सब मनको मल गयो ॥ २१ ॥ श्रम हीं बिनति न मोकों पायौ ॥ अति अपार भवदुःष मिटायौ ॥ जाकों जोग सांख्यव्रत दाना ॥ जज्ञ वेद विद्या विधि नाना ॥ २२ ॥ करि संन्यास बहुत दुष सहैं ॥ तेउ मोकों कदैं न लहैं ॥ ताकों तिन सुषहीमै पायौ ॥ जे केवल मन मोसों लायौ ॥ २३ ॥ राम सहित मुहि पायौ जबहीं ॥ चले अक्रूर मधूपुरि तबहीं ॥ तब ते गोपी मेरै हेत ॥ पाइ मूरछा भई अचेत ॥ २४ ॥ बहुरि समझ महादुष पावै ॥ निसवासर मम चर्णनि ध्यावै ॥ मोहि छोडि सब दुषमय लेषै ॥ लोक वेद कुल कछू न पेषै ॥ २५ ॥ जे निसि मों संग पलसी बीते ॥ तेई तिनकों कल्प व्यतीते ॥ मेरे गुणनि सुनै अरु गावै ॥ लीलारूप हृदेमें ध्यावै ॥ २६ ॥ कबहूं विरह महादुष रोवैं ॥ कबहूं तपत दशो दिश जोवै ॥ कबहूं प्रान तजनकी भांषै ॥ मम दरसन आसातैं राषै ॥ २७ ॥ नीद भूष त्रस सकल गवाई ॥ औंर देह गुण रह्यौ न काई ॥ तिनके दुष तेई ते जानै ॥ ते मैं तीजो कहा वषानै ॥ २८ ॥ विरह प्रचंड अनल अधिकारा ॥ सकल विकार भए जरि छारा ॥ प्रेम प्रवाह सकल मल छारै ॥ यौं मो बिचको अंतर टारै ॥ २९ ॥ तब यह उपजी परम अनूपा ॥ भूलि आप भई मम रूपा ॥ ज्यौं जोगेस्वर ब्रह्महि ध्यावै ॥ ह्वै करि ब्रह्म आपु विसरावै ॥ ३० ॥ अरु ज्यौं सरिता सिंधु समावै ॥ नाम रूप गुण भेद गमावै ॥ त्यौं वे भई रूप सब मेरा ॥ द्वैत भाव कछु रह्यौ न नेरा ॥ ३१ ॥ पाप जोनि अबला ते सा

री ॥ अरु श्रुतिकी मरजादा टारी ॥ निजपति छोड कियो व्यभिचारा ॥ अरु तिन मोको जान्यो जारा ॥ ३२ ॥ ब्रह्मभाव कछु ए नहिं जान्यौ ॥ तिन पर पुरुष मोहि नित मान्यौ ॥ परितोहूं भवसिंधु मिटायौ ॥ सतनि सहस्रनि मम पद पायौ ॥ ३३ ॥ तातैं उद्धव सुन बडभागा ॥ लोकवेद सबकौं कर त्यागा ॥ जोहें सुन्यो सुननको जोई ॥ प्रवृत्ति निवृत्ति जो कछु होई ॥ ३४ ॥ सब तजि एक सरण मम आवौ ॥ द्वैत भाव मनतें विसरावौ ॥ जहां तहां मम रूपहि देषौ ॥ आपापर कछु और न लेषौ ॥ ३५ ॥ एसें ह्वे करि मोकौं पैहौ ॥ जातें जगत जनम नहि ऐहौ ॥ यौं हरि जब बानी विस्तरी ॥ तब उद्धव आ संका करी ॥ ३६ ॥ ॥ उद्धव उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ प्रभु तुम त्याग वेदकौं कह्यौ ॥ सो मेरे उर संसा रह्यो ॥ तुमरी आग्या बेद कहावै ॥ ताहि छोडि कैसें सुष पावै ॥ ३७ ॥ तुमहीं श्रुतिमें करणें भाषे ॥ तुमहीं ईहां दूरि करि नाषे ॥ तातें मन भरमतहे मेरौ ॥ थिर कीजैं अपनें जन केरौ ॥ ३८ ॥ किधोंइ सत्य किधों ते देवा ॥ याको मोहि वतावो भेंवा ॥ तव गोपाल वचन उच्चारैं ॥ ज्यौं रवि उदय मध्य अंधियारैं ॥३९॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ उद्धव अब सुन परम ज्ञाना ॥ तातैं तव छूटैं भ्रम नाना ॥ प्रथमहि आप निरंजन एका ॥ और कछू नहिं हुतो अनेका ॥ ४० ॥ बहुरि कियो माया विस्तारा ॥ रच्यो देह बहु अंग प्रकारा ॥ तामें आपु प्रवेसा कियौ ॥ प्राणरु शब्द संगकरि लियौ ॥ ४१ ॥ सो ता शब्द चक्र आधारा ॥ परानाम कीनो आगारा ॥ मणिं पूरक पस्यंती नामा ॥ चक्र विशुद्ध मध्यमा धामा ॥ ४२ ॥ बाहिर प्रगट वैषरी बानी ॥ जे इहलोकरु बेद बषानी ॥ स्वर लघु मातर अक्षर जे ते ॥ नाना भांति विस्तरें ते ते ॥ ४३ ॥ लो

क मांहि थोरे विस्तारै ॥ वेद मांहि तिष्ठतहै सारै ॥ परि तिनको बहुविधि विस्तारा ॥ जाकों कोइ लहै नहिं पारा ॥ ४४ ॥ जैसैं अनल काष्ठ मथि काढ्यौ ॥ इंधन संग पवन अति बाढ्यौ ॥ यौं मम बानीको विस्तारा ॥ जातें प्रगट्यौ सकल पसारा ॥ ४५ ॥ यह विस्तार शब्दको सारौ ॥ जामें चेतन रूप हमारौं ॥ इंद्रिय उपजी दशहु प्रकारा ॥ सूत्ररु मंन बुधि चितहंकारा ॥ ४६ ॥ सतरजतम माया गुण जानौ ॥ सब विस्तार तिंहूंकौ मानौ ॥ जो अद्वैत एक निरधारा ॥ तिन कीनो माया विस्तारा ॥ ४७ ॥ तिनमें बहुत भांति आभास्यौ ॥ उत्तम मध्यम नीच प्रकास्यौ ॥ विधि निषेध तातें करि लये ॥ सुष दुष द्वै तिनके फल भये ॥ ४८ ॥ इह संसार एकतें ऐसैं ॥ एक बीजतें बहु बन जैसे ॥ तातें यह सब एक अधारा ॥ परि एकहिको सकल पसारा ॥ ४९ ॥ जैसें वस्त्र तंतुमय होई ॥ ओत पोत दूजा नहिं कोई ॥ एसें यह भव तरुहे एका ॥ द्वै फल फूलरु साष अनेका ॥ ५० ॥ यह सब मम चेतन आधारा ॥ परि तोहू चेतनतें न्यारा ॥ सो चेतनहें मेरो अंसा ॥ यामें भूल न आनौं संसा ॥ ॥ ५१ ॥ यह संसार वृच्छहे जेसौ ॥ मैं भाषतहौं सुनियो ते सौ ॥ पापरु पुन्य बीज द्वै याकें ॥ मूल अपार वासना ताके ॥ ५२ ॥ आदिहिके त्रय गुण त्रयसाषा ॥ तिनतें पंचभूत पर साषा ॥ उप साषा मन अरु इंद्रिय दश ॥ शब्दादिक सर्वे पंचोरस ॥ ५३ ॥ कफ अरु वात पित्त त्रय बलकल ॥ सुष अरु दुःष प्रगटहैं द्वै फल ॥ तामै द्वै पंषीको वासा ॥ परमातम अरु आतम पासा ॥ ५४ ॥ जे मूरष यह भेद न जांनैं ॥ ते बहु भांति वेद विधि ठांनैं ॥ तिनतें होवै बहु विधि बंधा ॥ जुग जुग दुष पावै ते अंधा ॥ ५५ ॥ जो यह देह वृक्षकरि जानैं ॥ आपुहि पंषी न्यारो

मानैं ॥ बेद स्मृति सब माया देषैं ॥ सकल अतीत आपुकौं लेषैं ॥ ५६ ॥ तब यह विधि निषेध छाडि कावैं ॥ सुष अरु दुषके निकट न आवैं॥सकल मांहि आपुहिकौं जांनैं ॥ भेद देह कृतमाया मानैं ॥ ५७ ॥ चेतन शक्ति ब्रह्मकरि देखे ॥ और सकल मायाकरि लेखे ॥ परि यह भेद सकल तब पावैं ॥ जब सतगुरुकी सरनै आवैं ॥ ५८ ॥ सतगुरु विना न पावै कोई ॥ ब्रह्मादिक भावै सो होई ॥ तातें गुरुकी सरणैं आवैं ॥ दृढ उपासना भक्ति बडावैं ॥ ५९ ॥ गुरु सेवाको इसो प्रभाव ॥ जातें उपजें मेरो भाव ॥ गुरुसेवातें पावें भक्ति ॥ गुरुसेवातें सकल विरक्ति ॥ ६० ॥ गुरुसेवातें ज्ञानहि लहैं ॥ गुरुसेवातें कर्म निदहैं ॥ गुरुसेवातें परम प्रकासा ॥ गुरुसेवा मम चरण निवासा ॥ ६१ ॥ मोंहि मिलनको यही उपाई ॥ गुरु सेवा बिन और न काई ॥ तातैं गुरुकी सरनहिं आवैं ॥ तन मन धन सौं हेत लगावैं ॥ ६२ ॥ जातें उपजे ज्ञान कुठारा ॥ सब पासनकों काटन हारा ॥ त्रय गुण लिंग शरीर उपाधी ॥ जो आतमकों लागी व्याधी॥६३॥ ज्ञान कुठार सकलकों हरै ॥या विधि आतम निर्मल करै ॥ पीछे ग्यान ध्यान सब त्यागै ॥ निशिदिन एकब्रह्म अनुरागै ॥ ६४ ॥ तबसो ब्रह्महि मांहि समावैं ॥ बहुऱ्यो जगत जन्म नहिं आवैं ॥ तातैं तुम साधन सब त्यागो ॥ निसदिन एकब्रह्म अनुरागो ॥ ६५ ॥

॥ दोहा ॥ ॥ यह उद्धव तोसो कह्यौ, भव मोचन मम ज्ञान ॥ अब बहुऱ्यो साधन सहित, भाषौं परम निधान ॥ ६६ ॥॥ इतिश्रीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधेश्रीभगवदुद्धवसंवादेद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ दोहा ॥ ॥ होत सत्व गुण वृद्धिकर, ज्ञान उदय क्रम जान ॥ कह्यो तेरमैं ध्यायमैं, हंस रूप आख्यान ॥ १ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ ॥ सुन उद्धव अब परम ज्ञाना ॥ जातें पावें परम निधाना ॥ जातें ज्ञान होइ सो कहों ॥ या विधि तव अज्ञान हि दहों ॥ १ ॥ सात्विक राजस तामस जहैं ॥ उद्धव ते गुण माया केहैं॥ सुख दुख सब तिनहींके जानों ॥ तिनतें परे आतमा मानों ॥ २ ॥ तातैं नर सात्विककों गहै ॥ सात्विक करि रज तमकों दहै ॥ पीछे ब्रह्म मांहि थिर होई ॥ सात्विककों तब त्यागे सोई ॥ ३ ॥ ऐसी विधि तीनों गुण दहै ॥ तब है ब्रह्म ब्रह्ममैं रहै ॥ ज्यौं ज्यौं होइ सत्व अधिकारा ॥ त्यौं त्यौं प्रेम भक्ति विस्तारा ॥ ४ ॥ सकल वस्तु सात्विक जबभजे ॥ तबहीं सात्विक गुण ऊपजे ॥ सात्विक ज्यौं ज्यौं त्यौं त्यौं भक्ति ॥ त्यौंहीं त्यौं अन्यत्र विरक्ति ॥ ५ ॥ तव रज तम दोऊ मिट जावें ॥ तातें तनके गुण नहिं आवें ॥ हर्षरु शोक मान अपमाना ॥ निद्रा आलस गर्व गुमाना ॥ ६ ॥ राग द्वेष आदि कहे जे ते ॥ द्वंद्व सकल रज तमके ते ते ॥ तातें रज तम जबहीं जाहीं ॥ तब तिनके गुण उपजें नाहीं ॥ ७ ॥ तातें सात्विक संगति करै ॥ रज तमकी संगत परिहरै ॥ मूल सकल कौ संगति कारन ॥ संगति बोरे संगाति तारन ॥ ८ ॥ पवित्र देश काल जल पान ॥ ग्रंथरु कर्म जन्म अरु ध्यान ॥ गर्भाधान आदि संस्कार ॥ मंत्र जाप ए दसाहि प्रकार ॥ ९ ॥ ए दस जाकों होवें जैसे ॥ गण विस्तारें ताकों तैसें ॥ सातिक तो सातिक उपजावै ॥ राजस तो राजस अधिकावै ॥ १० ॥ तामस तो तामस विस्तारै ॥ जैसें ए दस तैसें करै ॥ जाही जामें जो गुण होई ॥

सो सो उत्तम जांने सोई ॥ ११ ॥ परि जो उत्तम साध वषानैं ॥ सो वह सातिक उत्तम जानै ॥
जो अतिनिंद्य तमो गुण सोहैं ॥ सो राजस कछु मध्यम जोहैं ॥ १२ ॥ तातैं ए दशसातिक
सेवैं राजस तामस नाम न लेवैं ॥ राजस तामस जो हित होई ॥ तोहूं सब छिटकावै सोई ॥१३॥
सात्विक संगति उपजैं सत्व ॥ त्यौं लहैं भक्तिको तत्व ॥ ज्यौं लगि दृढ उपजैं विज्ञाना ॥ देखें
एक सकल भगवाना ॥ १४ ॥ अरु दोनो देहनि भ्रम जानैं ॥ सब विस्तार सुपन सममानैं ॥
तब यह ब्रह्ममांहि थिर होई ॥ सातिकहूं की बौर न जोई ॥ १५ ॥ ज्यौं बांसनि तैं उपजे
अनल ॥ अरु होवै मारुत तैं प्रबल ॥ सब बांसनिकौ दाहे सोई ॥ आपु बहूरि उपसम होई
॥ १६ ॥ त्यौं साधन यातन तैं होवैं॥ह्वै प्रचंड यातनकौं षोवौं ॥ बहुऱ्यौ आपुहि उपसम होई ॥
साधन लेस रहे नहिं कोई ॥ १७ ॥ गुणातीत सो कहिये जोगी ॥ तीनों काल ब्रह्मरस भोगी ॥
सो बहुरौ भवमें नहिं आवे ॥ मोहि मिल्यौ मो मांहि समावे ॥ १८ ॥ तातैं सब साधन छटिकावौ ॥
एक निरंजन मोकौं ध्यावौ ॥ तब हरिकी सुनि अद्भुत बानी ॥ जन उद्धव यह प्रष्ण बषानी ॥ १९
॥ ॥ उद्धव उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ हे प्रभुहां ऐसो कहियैं ॥ ज्ञानादिक हित जे सुष लहियैं ॥
परिजे विषय सुषनि कौं चाहैं ॥ तातैं बहु आरंभ सबाहैं ॥ २० ॥ ते बापुरे सदा दुख सहैं ॥ क
बहूं भूलिन सुखकौं लहैं ॥ परिते तो विषयनि दुष जानैं ॥ जानबूज क्यौं उद्यम ठानैं ॥ २१ ॥
ज्यौं बकरा मारनकौं लीजैं ॥ ले छेलिनि मे ठाढौ कीजैं ॥ वह निर्लज कछु लाज न जानैं ॥ ति
निसौं मिलि विषयादिक ठानैं ॥ २२ ॥ अरु जैसैं गर्दभ अरु कुत्ता ॥ तिरस्कार ते सहे बहुत्ता ॥
सुषके हेत सबनि आधीना ॥ दुर्बल सदा हृदय अतिदीना ॥ २३ ॥ वेतो मूढ कछू नहिं जांनैं ॥

तातैं विषयनि उद्यम ठानैं ॥ यह तो नर जानै सब वाता ॥ देखे जगत चल्यौ सब जाता ॥ २४ ॥ प्रथमेतो सुख आवे नाहीं ॥ जो आवेतो थिर न रहाहीं ॥ अरु जो दिन चारी रहिजावे ॥ काल हु तेतो षान न पावे ॥ २५ ॥ काल निरंतर ग्रस ते जावे ॥ एकदिना जमद्धार पठावे ॥ तहां नरक हैं बहुत प्रकारा ॥ जिनके दुखको वार न पारा ॥ २६ ॥ एसी सब विधि मानव जानैं ॥ तोहूं क्यौं आरंभनि ठानैं ॥ आपु आपु जमद्धार पठावैं ॥ आपु आपुकौं दुख उपजावैं ॥ २७ ॥ आगैं चौरासी भय भौरे ॥ विषयनिकौ बहुदुख विस्तौर ॥ या भव जलकें दुःख अपारा ॥ कहौं कहांलौं वार न पारा ॥ २८ ॥ सो यह सकल क्रिपा करि कहौ ॥ मेरे उरकौ संसा दहौं ॥ यौं कहिकैं उद्धव जब रैहैं ॥ तब हरिजी प्रति उत्तर कहैं ॥ २९ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई उद्धव यह आतम अविनासी॥ ज्ञान स्वरूप परम सुषरासी ॥ सो जबहीं यातनमैं आवैं ॥ तब स्वाधीन विषय सुष पावैं ॥ ३० ॥ बहुर्‍यौ तिन हित उद्यम गहै ॥ नहिं पावे तो दुखकौं लहै ॥ या विधि सुख दुख जबहीं जानै ॥ तबहीं देह आपु करि मानै ॥ ३१ ॥ ऐसें बढैं देहहंकारा ॥ तबहीं राजसकौं अधिकारा ॥ राजस सहित जबहि मन होई ॥ तब यह सुख दुख जानै सोई ॥ ३२ ॥ तब संकल्प विकल्पनि करे॥ निशदिन हृदय विषै सुखधरे ॥ जब जा सुषहि सुनें अरु देषैं ॥ तब वश ह्वै निज सुख करि लेषैं॥ ३३ ॥ तबहि र्‍हदेमें बाढै काम ॥ ज्ञान विचार न राषे नाम ॥ तातें बहु राजस अधिकारा॥राजस तें मन गहे बिकारा॥३४॥तब राजसको वेग प्रचंडा॥ज्ञानहि मारि करै सत षंडा ॥ तातैं ज्ञान सुनै अरु जानै ॥ अरु औरनि सौं आप बषानै ॥३५॥ परि सो काम नहीं ठहरावै ॥ लेकरि पकरी करम करावै ॥ परि जद्यपि या नरकी बुद्धी ॥ रज तमतें नहिं पावेसु

द्धी ॥ ३६ ॥ तोहूं निशदिन दोष विचारे ॥ उरतें सकल कामना टारे ॥ सावधान आलस नहिं करै ॥ क्रम क्रम मम चर्मनि चित धरै ॥ ३७ ॥ आसन जीति करे बस प्राना ॥ निशदिन उर राषे मम ध्याना ॥ अरु मम शिष्य चार सनकादी ॥ सकल तत्त्व ज्ञानिनकी आदी ॥ ३८ ॥ तिन विचार करि जोगहि भाष्यौ ॥ सोतो इहै ओर सब नाष्यौ ॥ ज्यौंही ज्यौं मन दूजो तजे ॥ अरु ज्यौं ज्यौं मम चर्णनि भजे ॥ ३९ ॥ याही तैं सब मिटैं विकारा ॥ याही तैं छूटे संसारा ॥ याहीतैं मम चर्णनि पावे ॥ बहुरी जगत जन मनहिं आवे ॥ ४० ॥ तातैं परम जोग यह राष्यौ ॥ जातें मेरें शिष्यनि भाष्यौ ॥ जब यह वानी बोलै कृष्ण ॥ तब उद्धव जन कीनी प्रष्ण ॥ ४१ ॥ ॥ उद्धवउवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ हे प्रभु कौंन समे या रूपा ॥ तुम भाष्यौ या ज्ञान अनूपा ॥ सनकादिकनि कौंन विधि लह्यौ ॥ क्यौं पूछ्यौ केसैं तुम कह्यौ ॥ ४२ ॥ ज्ञान सहित सब मोकौं कहो ॥ मेरें उरको संसय दहो ॥ जब यह उद्धव कीनी प्रष्ण ॥ तब बोले करुणामय कृष्ण ॥ ४३ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ ब्रह्मपुत्र सनकादिक चारी ॥ मनतें उपजे ब्रह्म विचारी ॥ जन्महि ते तिन गही निवृत्ती ॥ मनवच क्रमसों तजी प्रवृत्ती ॥ ॥ ४४ ॥ प्रष्ण करी तिन ब्रह्मा आगैं ॥ इसो भेद सोवत ज्यौं जागैं ॥ अति सूषम जानी नहिं परै ॥ उत्तर कहो कोन विधि करै ॥ ४५ ॥ ॥ सनकादय ऊचुः ॥ ॥ चौपाई ॥ हे प्रभु ब्रह्म ब्रह्ममय देवा ॥ याको हमहि बतावौ भेवा ॥ विषय वासना चित्तहि गह्यौ ॥ चित्त प्रीति करिकैं मिल रह्यौ ॥ ४६ ॥ दोउ मिलै आपुमैं एसैं ॥ नीररु षीर परस्पर जैसैं ॥ भिन्न भिन्न विनु मुक्त न होई ॥ क्यौं करि भिन्न होय ए दोई ॥ ४७ ॥ यह वानी ब्रह्मा उरधारी ॥ उतर देनकी

बहुत विचारी ॥ परितोहूं उत्तर नहिं आयौ ॥ जातें कर्मनिसौं मनलायौ ॥ ४८ ॥ तब ब्रह्मा यह बुद्धि विचारी ॥ जाहि न कोई ताहि मुरारी ॥ तातें कऱ्यौ चिंतवन मेरौ ॥ हंसरूपमें प्रगटयौ नेरौ ॥ ४९ ॥ हंसरूप तातैं दिषरायौ ॥ जातें यह आशय समझायौ ॥ के जो हंसवृत्तिकौं गहै ॥ सोई याकै भेवहि लहै ॥ ५० ॥ तव तिन देषि मोहि सुष पायौ ॥ ब्रह्मा मिलि उठि माथौ नायौ ॥ करि विनती तब वचन बषाने ॥ हे प्रभु तुमकौं हम नहिं जाने॥५१॥तव तिनसौं जो मैं कछु कह्यौ ॥ तिनके उरका संसा दह्यौ ॥ तेई वचन कहों अब तोसों ॥ सावधान ह्वै सुनियो मोसों ॥५२॥तुमको होयूं पूछ्यौ जवहीं॥कह्यौ ज्ञान उत्तरमें तबहीं॥ मनकौ संसे सबहि मिठायौ॥ विद्यमान परब्रह्म बतायौ ॥ ५३ ॥ हंस हरी जब हंसकर बोले ॥ कृपानिधी तब अंतर खोले ॥ हंस उवाच ॥ चौपाई ॥ विप्रहु प्रष्ण करी तुम ऐसी ॥ करने नहीं संभवे तैसी ॥ वस्तु विचारे द्वैत न कोई ॥तो याको उत्तर क्यौं होई ॥ ५४ ॥ अरु जो देह रूपहूं कहियैं ॥ तोहूं कछू द्वैत नहिं लहियैं ॥ पंचभूत निर्मित तन सारे ॥ जो कछु जहां लगैं विस्तारे॥ ५५ ॥ तातें सकल एक द्वै नाहीं ॥ दूजो कोंन विचारो मांहीं ॥ पुरुष दृष्टि देषे तें एका ॥ प्रकृती दृष्टिहु नहीं अनेका ॥ ॥५६ ॥ तातें करी प्रष्ण तुम एसी॥बहु तन मांहि करी जैं जेसी ॥ अरु जो दीसे तत्त्व विचारा॥ तो नहिं प्रकृति पुरुष विस्तारा ॥ ५७ ॥ जो कछु दीसे सुनिए कहियें ॥ मन अरु बुद्धि जहां लों लहियैं॥सो सब मैंहीं दूजो नाहीं ॥ ऐसो ज्ञान धरौ मनमांहीं ॥ ५८ ॥ नाम रूपते सकल विकारा ॥ आदि अंत मध माटी सारा ॥ त्यौंहीं आदि अंत मधमाहीं ॥ मेंहों एक द्वैत कछु नाहीं ॥ ५९ ॥ द्वैत दृष्टिसो दुषको कारण ॥ ब्रह्मदृष्टि निज सुषविस्तारण ॥ लगैं तरंगनि सौं

दुष लहै ॥ तब सुष जबहीं तजि जल गहै ॥ ६० ॥ त्योंहीं द्वैत दृष्टिसो दुःषा ॥ एकदृष्टि साहे निज सुःषा ॥ अरु तुम प्रष्ण विरंचिसौं करी ॥ सोमैं हृदय आपुने धरी ॥ ६१ ॥ विषयनि मांहि चित मिलि रह्यौ ॥ अरु विषयंनि चितहीं दृढ गह्यौ ॥ हेपुत्रहु यह यौंही सत्य ॥ परिते आतम मांहि असत्य ॥ ६२ ॥ विषय चित्त ए दोउ माया ॥ आतम ब्रह्म निरंजन राया ॥ विषयनिसौं जब चित्त लगायौ ॥ तबहि चित्त तिनमें सुष पायौ ॥ ६३ ॥ तब विषयनिको ध्यानहि करै ॥ तिनकैं हेत कर्म विस्तरै ॥ तातैं एकमेक मिलि रहै ॥ ऐसें जन्म जन्म दुष सहै ॥ ६४ ॥ तातैं आतम मेरौ अंसा ॥ मेरी सरण ग्रहे तजि संसा ॥ बाहिरहुतें विषय परिहरै ॥ अरु चिततैं चितवन नहिं करै ॥ ६५ ॥ विषयरु चित्त वृथा करि जानै ॥ तिनतैं परे आपुकों मानै ॥ ब्रह्म-रूप एक अविनासी ॥ ज्ञान रूप चेतन सुष रासी ॥ ६६ ॥ मन अरु बुद्धि चित्त हंकारा ॥ इंद्रिय विषय देह विस्तारा ॥ ए भ्रम रूप सकल है माया ॥ भूली आतम आपु बंधाया ॥ ६७ ॥ ऐसैं जानि सकल छटिकावै ॥ आपुहि मोहि एक करि ध्यावै ॥ जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति बखानो ॥ ते आचर्ण बुद्धिकै जानो ॥ ६८ ॥ तिनतैं परे आतमारूप ॥ सदा एक रस परम अनूप ॥ साति-कहूं तें जाग्रत होई ॥ राजस सुपन लहैं सब कोई ॥ ६९ ॥ सुखपति तामस गुणतें आवे ॥ मन अरु बुद्धि तिहूंकौं पावे ॥ एकरूप आतम तिहुमाहीं ॥ साक्षीभूत लिपै कहु नाहीं ॥ ७० ॥ तातें तिहूं गुणनितें न्यारौ ॥ निजानंदमय रूप हमारौ ॥ तामैं स्थित ह्वै करै विचारा ॥ सहजहि छूटै त्रिगुण पसारा ॥ ७१ ॥ देहविषे बंध्यो अभिमाना ॥ तातैं भेद उठ्यौ यह नाना ॥ तातैं निजानंद विसरायौ ॥ काल असख्य महादुख पायौ ॥ ७२ ॥ ऐसैं जानि तजे अभिमाना ॥

कदे न करै सुखनिको ध्याना ॥ तिहूं गुणनितैं करै विरक्ती ॥ चौथेपद बाधे आशक्ती ॥ ७३ ॥ तब सहजै मो मांहि समावै ॥ बहुऱ्यो कदे देह नहिं पावै ॥ अरु जो सकल ग्रंथ विस्तरै ॥ वेदधर्म नाना विधि करै ॥ ७४॥ प्रवृत्तिमांहि बहुत विधि जागै॥परिजो जानि द्वैत नहिं त्यागै ॥ सो नित सोवत जागत जानौं ॥ ताकौ मैं दृष्टांत बखानौं ॥ ७५ ॥ जैसैं सयन करै नर कोई ॥ सोवत सुपन लहै पुनि सोई ॥ बहुतहि भांति करै व्यवहारा॥ लेन देन जल पान अहारा ॥ ७६॥ बहुरो रैन भएतें सोवै ॥ दिवस भए त्यौंहीं उठि जोवै ॥ ऐसी विध केई दिनवीतैं ॥ सोवत जागत सकल व्यतीतैं ॥ ७७ ॥ बहुरो वह ऐसी मन आनै ॥ रातिहु दिनकी निद्रा भानै ॥ कदे न सोवत जागत रहै ॥ सावधान आलश नहिं गहै ॥ ७८ ॥ ऐसैं काज आपनों करै ॥ चोरादिक धनकौं नहिं हरै ॥ परि जब इहां जागि करि देषै ॥ तब वह सकल वृथा करि लेषै ॥ ७९ ॥ सोवत जागत सब व्यवहारा ॥ जाकै हित जागै सो सारा ॥ आपुहि सब मिथ्या करि जानै ॥ कबहूं भूलि सत्य नहिं मानै ॥ ८० ॥ त्यौंहीं वेदधर्म आचरना ॥ अरु ते सुष जिनके हित करना॥ते सब स्वप्नरूप व्यवहारा॥पंडित छोडे सकल पसारा॥८१॥भ्रमतें देह धऱ्यो अभिमाना॥तातैं वर्णाश्रम विधि नाना॥तातैं करै बहुत विधि कर्मा॥सुख निमित्त विस्तारै धर्मा॥८२॥परिते सकल वृथाकरि जानौ सुपन जागरण सम करि मानौ ॥ जो देहादिक सकल पसारा ॥ चेतन करि वरतावन हारा॥८३॥सुष दुष भोग करै अरु जानै॥आपुहि सुखी दुखी करि मानै॥बहुऱ्यौं जबहि सुपनकौं पावै ॥ बहु व्यवहारनिसौं मन लावै ॥ ८४ ॥ तबहूं जानै सकल पसारा ॥ आपापर सुषदुष व्यवहारा ॥ बहुरि सुषोपति मैं सब जाई ॥ मन बुद्धि चित हंकार न काइ ॥ ८५ ॥ तब

आतमा निरंतर रहै॥जागे सकल बात जो कहै॥लियौ दियौ अरु आयौ गयौ॥जहा लगी पीछे अनुभयौ ॥ ८६ ॥ सो आतमा एकरस रहै ॥ तिहूं कालकी बातनि कहै ॥ यौं अविनासी आतम एक ॥ दूजे माया भेद अनेक ॥८७॥ तीन अवस्थाहैं ये मनकै ॥ मनमें आभासेहैं तिन कै ॥ तिन तिनको तीनौं गुण जेहैं ॥ तीनो गुण मायाके तेहैं ८८ ॥ ऐसी विध निश्चैसौं जानैं ॥ निशदिन हृदय विचारहि ठानैं ॥ सकल उपाधिनको आगारा ॥ज्ञान षड्ग काटै हंकारा ॥८९॥हृदय माहिमैं ताकौं भजौं॥सावधान ह्वै कंदेन तजौं॥यह सारौ जग भ्रमकरि जानौ॥मनको कृत मिथ्याकरि मानौ॥९०॥ज्यौं एकनिकौं उपजत देखै॥अरु एकनिकौं बिन सत पेषै ॥ सोई रीत सकलकी जानै॥स्वप्न समान हृदयमें मानै॥९१॥अग्नि सहित ज्यौं लकरी होई॥बालक लकरि फिरावे कोई ॥ और भांतिहै दीसै और॥थिर परि चंचल लहै न ठौर ॥ ९२ ॥ त्यौं यह जगत रहे थिर नित्य ॥ परि अति चंचल सकल अनित्य ॥ एक ब्रह्ममें सब आभास्यौ॥त्रिगुण पाई बहु भेद प्रकास्यौ ॥ ९३ ॥ स्वप्न रूप गुणमें ज्यौं भोगी ॥ यौं बहु भांति विचारे जोगी ॥ तातैं जगतें दृष्टि उतारै ॥ साचो जानि हृदय नहिं धारै ॥९४॥ तृष्णा छोडी निश्चल रहै ॥ मन वच क्रम कछु कर्म न गहै ॥ ईहा रहित ब्रह्मरस भोगी ॥ निजानंदमय होवे जोगी ॥ ९५ ॥ ऐसें वृथा जानि सब त्यागै ॥ निहचल हृदे ब्रह्मनुरागै ॥ सो जब रहे देहहूं मांहीं ॥ तोहूं फिरि भ्रम उपजै नाहीं ॥ ९६ ॥ जो यह देह जाइ कहु आवैं ॥ बैठे उठे पिए अरु षावे ॥ और हु कछुक करे व्यवहारा ॥ परिसो सिद्ध न जानै सारा ॥ ९७ ॥ निश्चल रहै निरंजन मांहीं ॥ देहादिक कछु जानै नाहीं ॥ ज्यौं कोई तन वस्त्रनि धरै ॥ बहुर्‍यौं सुरा पान कहु करै ॥ ९८ ॥

सो तिन वस्त्रनि जाने नाहीं ॥ प्रथमहि बंधे ते नहिं जाहीं ॥ कर्म रहें या तनके जोलौं ॥ सहीत इंद्रिय बरते तोलौं ॥ ९९ ॥ कर्मनि ताके तनकौं पोषे ॥ पान पानसौं नित संतोषे ॥ जोगी ब्रह्म माहि थिर रहै ॥ देहादिककी शुद्ध न लहै ॥ १०० ॥ जेसें स्वप्न देखि करि जागे ॥ ता सुपना सुनही अनुरागे ॥ तेसैं मोह निसातें जाग्यौं ॥ बहुरि लिपे ब्रह्म अनुराग्यौ ॥१०१॥ देह थकां ब्रह्महि मिल रह्यौ ॥ भवकौ सकल बीज तिन दह्यौ ॥ सो बहुरे भवमैं नहिं आवे ॥ ब्रह्म मिल्यौ सो ब्रह्म समावै ॥ २ ॥ तातें देह आदि विस्तारा ॥ भ्रम करि तजो त्रिगुणमय सारा ॥ त्रिगुणातीत ब्रह्मकौं सेवौ ॥ विषयनिको कछु नाम न लेवौ॥ ३ ॥विषय चित्त दोऊ भ्रम जानौ॥ब्रह्म मांहि रहि दोनूं भानौ॥सकल अतीत आपुकौं देखौ॥सब घट एकहि द्वेत न लेषौ॥४॥ ब्रह्मरू आपु एक करि मानौ॥द्वेत भाव कबहूं जिन आनौ ॥ निशिदिन ब्रह्म विचारहि करौं ॥ परि बल मेरौ हृदये धरौ ॥ ५ ॥मम आधीन निरंतर रहौ ॥ या विधि जगत बीज सब दहौ ॥ यातें बहुरि न भवमैं आवौ ॥ब्रह्मरूप ह्वै ब्रह्म समावौ ॥६॥ यह मैं तो सों कह्यो विचारा ॥ सांख्यरु जोग सकल कौ सारा ॥ मेरो गुह्यमतो अति जानौ ॥ बहुतहि भांति हृदयमें आनौ॥७॥ तुमरो हित मन मांहि विचार्यौ ॥ मैंहों विष्णु हंस तन धार्यौ ॥ मैं हो ब्रह्म सकलको ईस ॥ मो बिन औरं सकल अनीस ॥ ८ ॥ सांख्यरु सत्य तेज तप जोग ॥ प्रिय सम दम श्री की रति भोग ॥ औरौं बस्तु जहालौं सार ॥ ते समस्त मेरे आधार ॥ ९ ॥ तातें जो मम शरणहि आवै ॥ उत्तम वस्तु सकल सो पावै ॥ मोबिन बहु साधनहीं गहै ॥ तोहूं कदे नहिं सुखकौं लहै ॥ ११० ॥ मैं निरगुण परि सब गुण सेवौं ॥ मैं निरपेक्ष सकल चित देवौं ॥ कछू न

चहौं करौं उपकार ॥ सबको हित सबको आधार ॥ ११ ॥ सब उपजावौं सब प्रतिपारौं ॥ सब पोषौं सब संकट टारौं ॥ तातैं मोहि तजै दुख पावै ॥ तबहीं सुखी सरण जब आवै ॥ १२ ॥ सरणागतकों वेगि उधारौं ॥ आपु मिलाऊं भव भय टारौं ॥ तातैं सब तजी मोकौं भजो ॥ पावो मोहि जगत भय तजो ॥ १३ ॥ उद्धव यहमें ज्ञान सुनायौ ॥ सनकादिकनि परम सुख पायौ ॥ हृदय रह्यौ संदेह न काई ॥ मोहि मिलनकी सब विधि पाई ॥ १४ ॥ बहुत भांति मम पूजा करी ॥ बहुत भांति अस्तुति विस्तरी ॥ मेरो भजन हृदेमें धार्‌यौ ॥ और सकल ततकाल निवार्‌यौ ॥ १५ ॥ आपु कृतारथ तिन करि मान्यौ ॥ द्वैतभाव तजि ब्रह्म पिछान्यौ ॥ तब तिनकै अस्तुति करतेहीं ॥ अरु ब्रह्मा देखत आगेहीं ॥ १६ ॥ सबहिनकौं आनंद बढायौ ॥ तबमें अपनें धाम सिधायौ ॥ तातैं उद्धव यह तुम जानौ ॥ अपनें परम भाग करि मानौ ॥ ॥ १७ ॥ सनकादिक समान तुम किये ॥ तेई वचनमें तुमकौं दिये ॥ तातैं इहै ज्ञान उरधारौ ॥ ब्रह्म जानि सब द्वैत निवारौ ॥ १८ ॥ मम आधीन सदाही रहौ ॥ दूजी सकल वासना दहौ ॥ ऐसें ह्वै निज पदकौं पैहौ ॥ जातैं जग बहुरौ नहिं ऐहौ ॥ १९ ॥ ॥ दोहा ॥ ॥ यह उद्धवतोसों कह्यौ, परम ज्ञान निज सार ॥ जाकौं गहि निज पद लहै, छूटै सब संसार ॥ १२० ॥ हंस गीत जो जन पढै, अरु सुनहीं चित लाय ॥ सो पावै निज तत्त्वकों, सदा कृष्ण तिहि साय ॥ १२१ ॥ ॥ इतिश्री भागवते महापुराणेएकादशस्कंधेश्रीभगवदुद्धवसंवादेभाषायांहंसगीतायांत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

दोहा ॥ ॥ श्रीधर चवदै ध्यायमैं, भक्ति श्रेय कल्याण ॥ ध्यान योग हरि कहतहैं, साधन सहित प्रमाण ॥ १ ॥ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ ऐसो सुनि हरिजीसौं ज्ञाना ॥ भक्ति उधारक भ्रम सब हाना ॥ यह उद्धव दृढ करि उर धरी ॥ परि कछु प्रश्न कृष्णसौं करी ॥ १ ॥ उद्धवउवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ परम दयाल दयानिधि देवा मोकौं बडौ बतायो भेवा ॥ भक्तिहुतें पहियें तुम चरना ॥ छूटैं जगत जन्म अरु मरना ॥ २ ॥ परि अब एक प्रष्णसो कहौ ॥ मेरे या संदेहहि दहौ ॥ जे बहु विधि श्रुति समरति जानैं ॥ ते तौ बहु साधननिन खानैं ॥ ३ ॥ मुक्ति हेत बहु पंथनि कहैं ॥ अरु तेऊ बहुतें मिलि गहैं ॥ ताते तेऊ पंथ असेष ॥ भक्ति समानकि कछू विसेष ॥ ४ ॥ जा जा पंथ तुमें प्रभु पइयैं ॥ बहुरो भवसागर नहिं ऐयैं ॥ सो सो पंथ कृपा करि कहौ ॥ मेरी सकल मूढता दहौ ॥ ५ ॥ तुम विन दूजो नहिं कहै ॥ ज्ञान लहे सो तुमसौं लहै ॥ उद्धव एसी पूछी बानी ॥ तब उद्धवकी प्रष्ण बखानी ॥ ६ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ ॥ चौपाई ॥ उद्धव कल्प समय जब भयौ ॥ तब यह तत्त्व लीनह्वै गयौ ॥ पुनि में सृष्टि समय यह ज्ञाना ॥ ब्रह्मासौं श्रुति तत्त्व बखाना ॥ ७ ॥ सोई श्रुती पुनि ब्रह्म पढायौ ॥ भृग्वादिकहि स्वंयभू पायौ ॥ सप्त महारिषि भृगु जिन आदि ॥ अरु स्वायंभु मनु मन्वादि ॥ ८ ॥ तिन अष्टनितें यह विस्तारा ॥ नाना भांती भेद अपारा ॥ सुरनर असुरसिद्ध गंधर्व ॥ विद्याधर यक्षादिकसर्व ॥ ९ ॥ सप्तद्वीपनर बहुतप्रकारा ॥ किन्नर किंपुरुषादि अपारा ॥ सत रज तम तिनकी उतपत्ती ॥ तातैं बहु विधि भई प्रवृत्ती ॥ १० ॥ तिनतें भये बहुत विधि भेद ॥ तिन तेसैंही जाने वेद ॥ वेद तत्त्वसो कितहूं रह्यौ ॥ आपु सुभाव समातिन कह्यौ ॥ ११ ॥ ज्यौं ज्यौं तिनके भये सुभाव ॥ त्यौं त्यौं जान्यौ श्रुतिकौ भाव ॥ त्यौंहिं त्यौं

आचरणनि करै ॥ त्यौं त्यौं आपु स्मृति विस्तरै ॥ १२ ॥ परंपराजे तिनतैं होवैं ॥ ते तिन कृतहि स्मृतिनकूं जोवैं ॥ तिनतैं आपु करै बहु ग्रंथा ॥ नाना भांति चलावैं पंथा ॥ १३ ॥ एसी विधि उपजैं पाखंडा ॥ ज्ञानरु धर्म होंइ सत खंडा ॥ मम माया करि मोहित होवैं ॥ तातैं तत्त्व पंथ नहिं जोवैं ॥ १४ ॥ अपनी अपनी रुचि अनुमाना ॥ करें कर्म अरु भाषैं ज्ञाना ॥ नाना विधि साधननि सुनावैं ॥ तिन तिनतैं कल्याण बतावैं ॥ १५ ॥ एकैं बहु विधि धर्मनि भाषै ॥ तिनतैं मुक्ति मुक्तिकौं आषैं ॥ एकैं कहैं जसहिं विस्तरियैं ॥ जातैं सकल दुख नितैं तरियैं ॥ १६ ॥ जा कौ जस या जगमें जोलौं ॥ सो नर रहे स्वर्गमें तोलौं ॥ एक इहांके काम बखानैं ॥ आगैं स्वर्ग नरक नहिं जानैं ॥ १७ ॥ जो तन ईहां करे भोगनिकौं ॥ ईहां छोडि जाई ता तनकौं ॥ आगैं सुष दुष लहै न कोई ॥ तातैं भोग करो सब कोई ॥ १८ ॥ एसें ग्रंथनि कहि भ्रमावैं ॥ धर्म राय की खबर न पावैं ॥ एक कहैं सम दम अरु सत्य ॥ दूजो साधन सकल अनित्य ॥ १९ ॥ जोग ग्रंथ बहु साख बखानैं ॥ तिनतैं मूढ मुक्तिकौं जानैं ॥ सामरु दाम दंड बहु भेद ॥ इनकौं गहैं एक पढिवेद ॥ २० ॥ न्याय सहित सब उद्यम करैं ॥ उत्तम धर्म जानि उर धरैं ॥ दान भोग उत्तम करि भाखैं ॥ यह मुक्ति साधन करि राखैं ॥ २१ ॥ एकैं जज्ञ दान तप गहैं ॥ एकहि जमरु नियम संग्रहैं ॥ एकहि तीरथ व्रत मन धरैं ॥ कहूं कहांलौं बहुविधि करैं ॥ २२ ॥ तिनतैं स्वर्गादिक सुख पावैं ॥ छीन भये ईहां फिर आवैं ॥ बहुर्‍यो नीच जोनि बहु लहैं ॥ नरकनिमैं केई जुग रहैं ॥ २३ ॥ अरु जब रहैं स्वर्गहूं मांहीं ॥ तबहूं कछु सुख पावैं नाहीं ॥ काम क्रोध निंदा अपमाना ॥ राग द्वेष इच्छा अभिमाना ॥ २४ ॥ इत्यादिक निग्रसो नित रहैं ॥ तातै कौंन भांति सुख लहैं ॥ भक्ति

विना विधि लोकहि जावैं ॥ काल तहातैं उलट ढहावैं ॥ २५ ॥ तातैं उद्धव भ्रमहैं सारा ॥ सुख मम चर्णनिकै आधारा ॥ जिन मेरैं चर्णनि चित धऱ्यो ॥ साधन साध्य सकल परिहऱ्यो ॥ ॥ २६ ॥ तिनकौं उद्धव जो सुख होई ॥ सो सुख कहूं न पावै कोई ॥ सो सुख कह्यो सुन्यो न हिं आवै ॥ सोईपैं जानैं जो पावै ॥ २७ ॥ सो पावे जो मो सौं मागै ॥ ओर सकल आसाकौं त्यागै ॥ मम आधीन निरंतर रहै ॥ दूजी सकल कामना दहै ॥ २८ ॥ सकल वस्तुकौं कीनौं त्याग ॥ अंतःकरण खरौ वैराग ॥ सम दरसी नित सीतल चित्त॥ मम चिंत न हृदये दृढव्रत्त ॥ ॥ २९ ॥ ताकौं दशोंदिसा सुखरूप ॥ सो सुख जो अति परम अनूप ॥ जो जन मेरै सुखकौं जानै ॥ ताको मन कितहूं नहिं मानै ॥ ३० ॥ ताकै सब आधीनहिं रहैं ॥ परि सो मो विन कछु नहिं गहैं ॥ ब्रह्मलोंककौं कदें न लेवैं ॥ इंद्रलोक पर चित्त न देवैं ॥ ३१ ॥ सब भूराज नेंन नहिं देखैं ॥ सब पताल सुख त्रण करि लेखैं ॥ जोग सिद्धि अणिमादिक अष्ट ॥ जोगी जिन हित साधे कष्ट ॥ ३२ ॥ तिनहूंकौं कबहूं नहिं लेई ॥ आपुहुतें तिन सेवें तेई ॥ मुक्ति कटहीं रहै सदाई ॥ परि मेरो जन छुवै न काई ॥ ३३ ॥ मेंहीं एक सदा प्रिय ताकौं ॥ मम चरणनि चित रातो जाकौं ॥ ताहीं ते मेरे प्रिय सोई ॥ ता बिन और नहीं प्रिय कोई ॥ ३४ ॥ त्यौं मेरो सुत विधि नहि प्यारौ ॥ नाहि संकर जो रूप हमारौ ॥ नहिं प्रिय त्यौं संकर्षण भाई ॥ श्रीअर्धंगा त्यौं नहिं साई ॥ ३५ ॥ यौं नहिं प्रिय मेरे देह ॥ जेसो तुमसों परम सनेह ॥ तुमसैं भक्त महाप्रिय मेरैं ॥ ताकै रहौं निरंतर नेरैं ॥ ३६ ॥ इच्छा रहित अरु सीतल हृद ॥ सम निरवैर सबनि परि सुहृद ॥ ब्रह्मदृष्टि देखै सब माहीं ॥ ब्रह्म बिचार तजै पल नाहीं ॥ ३७ ॥ मैं ताकौं

प्रथम यौं करौं ॥ त्रिगुण पास बंधन विस्तरौं ॥ परि ताकौ ऐसो बल भारी ॥ काटी माया श क्ति हमारी ॥ ३८ ॥ एते परि सब औगुण तजै ॥ उलटि आइ मम चरणनि भजै ॥ अरु सब सुख ताके वस रहैं ॥ सो तजि मोहि कछू नहिं गहैं ॥ ३९ ॥ बहु तनके भवबंधदहे ॥ नाम प्रगट करि मेरौ कहे ॥ तिन तिनकौं मम चरननि ल्यावै ॥ सदा सबनितैं आपु छिपावै ॥४०॥ अहंकार ममता नहिं आनै ॥ मोहि छोडि दूजो नहिं जानै गुणातीत ता जनके पाछे ॥ यह तन धारि फिरेंमें आछे ॥ ४१ ॥ सातिक गुणधारी यह देह ॥ करौ सुद्धता चरणनि षेह ॥ निह कंचन तनहूं नहिं रक्त ॥ मोही सौ तिनहीं अनुरक्त ॥ ४२ ॥ सीतल हृदय विगत अभिमाना ॥ कृपावंत सब एक समाना ॥ केहूं काम चलै नहिं बुद्धी॥मोही सेइ पाइ अतिसुद्धी॥४३॥मुक्ति हुतें नितनि स्पृह रहै॥ते जन मेरे सुषकौ लहै ॥ तासुखकौ सुख जानै तेई ॥ और सकल समझै नहिं केई॥४४॥निस्पृह जननी सुख पावै ॥ स्पृहावंतके निकट न आवै॥विषय सुषनि बस मा नव होई ॥ इंद्रिय जीत सकै नहिं कोई ॥ ४५ ॥ परि आधीन होइ मम जबहीं॥ विषय कछू न सकैं करि तबही ॥ विषय शत्रुमें सकल निवारौं ॥ आप मिलाऊं भव भय टारौं ॥ ४६ ॥ पावक प्रकट कर्‌यौ ले अस्म ॥होइ प्रचंड करै सब भस्म ॥ त्यौं मम भक्ति प्रकट जो होई ॥ जारै पाप रहैं नहिं कोई ॥ ४७ ॥ बहुरि पापकौ निकट न आवैं ॥ भक्ति प्रताप मोहिसो पावैं ॥ साधै सिद्ध जोग अष्टांग ॥ बहुविधि जज्ञ होई जो सांग ॥ ४८ ॥ सांख्य विचार सकल जो जानैं ॥ बेद पढैं देवैं बहु दानैं॥तपाहि करैं इंद्रिय मन बाधैं ॥ और सकल धर्मनिकौं साधैं॥४९॥ तोहू मोहि कदें नहिं पावै ॥ भक्ति मोहि ततकाल मिलावै ॥ एक मोहि भक्ती बसकरै ॥

दूजेतें अति अंतर परे ॥ ५० ॥ श्रद्धा सहित करे मम भक्ती ॥ तासौं मेरी अति आसक्ती ॥ में ब्रह्मादि सकलको ईस ॥ मो बिन औरे सकल अनीस ॥ ५१ ॥ सो में भक्तनके आधीन ॥ ते मोसों ज्यौं जलसों मीन ॥ जो चंडाल भक्तिमैं आवे ॥ ताही तन निरमलता पावै ॥ ५२ ॥ वर्णाश्रम सब वंदन करैं ॥ ता पदरेणु सीसपर धरैं ॥ तीनौं भवन दास सब ताकै ॥ मेरी भक्ति विराजे जाकै ॥ ५३ ॥ विद्यापढै धर्म बहुकरे ॥ जीवदया बहुविधि विस्तरै ॥ सत्यवंत अरु दृढ संतोष ॥ कबहूं कहूं करें नहिं रोष ॥ ५४ ॥ कष्ट सहित पूरण तप साधै ॥ मन इंद्रिय देहादिक बाधै ॥ तीरथ वृतनि आदिदे जेतै ॥ सब आचर्ण करे जो तेतै ॥ ५५ ॥ परिजो मेरी भक्ति न होई ॥ तो निरमल नहिं होवै कोई ॥ बिन रोमांच द्रवें विनचित्त ॥ आनंदाश्रु कला बिन नित्त ॥ ५६ ॥ तौलों साध भक्ति नहिं कहैं ॥ भक्ति विना उरसुद्ध न लहैं ॥द्रवै प्रेमतो जाको चेत ॥ कबहूं रोवे मेरेहेत ॥ ५७ ॥ कबहूं गदगद बाणी होई ॥ कबहूं ऊंचे गावे सोई कबहूं मधुर सुर गावैं ॥ कबहूं प्रेममगन रहिजावे ॥ ५८ ॥ कबहूं नृत्य प्रेम वस करै ॥ कबहूं हसे गुणनि विस्तरे ॥ लोकवेदकी लाज न जानै ॥ ज्यौं उनमत्त सकल यौं ठानै ॥ ५९ ॥ जे एसो मेरो जन होई ॥ त्रिभुवन सुद्ध करत है सोई ॥ सकल भुवनके पापनि वारे ॥ सकल भुवनको सो जनतारे ॥ ६० ॥ जेसैं हेम मलिनता होई ॥ बहुजल मांहि धोइजें सोई ॥ औरहि जतन बहुत विधि कीजे ॥ हेमाहि बहुत कसोटी दीजैं ॥ ६१ ॥ परिकेई बिधि शुद्ध न होई ॥ कोटी जतन करै जो कोई ॥ सोई हेम अग्निमैं दीजैं ॥ देकरि फूंक तप्त अतिकीजैं ॥ ६२ ॥ तातैं कोई मल नहिं रहै ॥ अपने सुद्धरूपको गहै ॥ त्यौंहीं जतन

करै बहुकोई ॥ परिआतम निरमल नहिं होई ॥ ६३ ॥ मेरी भक्ति मांहि जब आवै ॥ तब सबकर्म मेल छिटकावै ॥ निरमलहोइ लहे निजरूप ॥ पावै मोहि तजै भव कूप ॥ ६४ ॥ ज्यौं ज्यौं मेरी भक्तिहि करैं मेरे॥ गुणनि हृदयमैं धरैं ॥ श्रवन कीरतन सुमर ठानै ॥ ज्यौं ज्यौं और वासना भानै ॥ ६५ ॥ त्यौं त्यौं हृदय प्रकाशे ज्ञान ॥ देषे ब्रह्म मिटैं सब आन॥ द्वैतभाव कितहूं नहि रहै ॥ निरभय निजानंद पद लहैं ॥ ६६ ॥ नैंननि मांहि रोगज्यौं होई ॥ तातै कछू न देखे सोई ॥पुनि ज्यौ ज्यौ ओषदाहि लगावैं ॥ त्यौं त्यौ दृष्टि होत नितआवै ॥ ६७ ॥ त्यौ त्यौ वस्तु सकलकौ देषै ॥ आपुहि परम सुखी करिलेषै ॥ तातै भक्ति रूप दृढ अंजन ॥ जातैं देषे देवनिरंजन ॥ ६८ ॥ जो संसार सुखनिकौ ध्यावै ॥ सो संसार मांहि वहिजावै ॥ अरु जो ध्यावै मेरे चरना ॥ पावे मोहि मिटे भव मरना ॥६९ ॥तातैं सब साधन भ्रम जानो ॥ सुपन समान द्वैत सब मानौ ॥ मनक्रमवचन सकलकौ त्यागौ ॥ निशदिन ममचरणनि अनुरागौ ॥ ७० ॥ जो या भवहि चहै छटिकायौ ॥ अरु चाहै मम चरणनि आयौ ॥ ते तिनकी संगाति परिहरै ॥ जे नर जुवतिसौं बातहि करै ॥ ७१ ॥ जुवती सुखनि सुनै नहिं श्रवना ॥ नैनन देखे करे न गवना॥ कबहूं भूलि हदै नहिं आनै ॥ मनक्रमवचन निरंतर भानै ॥ ७२ ॥ ऐसे बंधन कहूं न होई ॥ कोटी संग करे जो कोई ॥ ज्यौं जोषित अरु जोषित संगी ॥ बंधन करैं होत प्रसंगी ॥७३ ॥ तातैं तिनकी संगति तजै ॥ सावधान मम चरणनि भजै ॥ निरभय ठौरकरै अस्थाना ॥ मो बिन संगतजै सब आना ॥ ७४ ॥ मेरौ ध्यान निरंतर करै ॥ प्रेमसहीत हृदेमें धरै ॥ कृष्णवचन सुनि हृदये राखे ॥ उद्धव और प्रश्णकौं भाषै ॥ ७५ ॥ उद्धव उवाच ॥ ॥ चौपा

ई ॥ हे प्रभु तुमहि कौन विधि ध्यावै ॥ कौंन रूपमैं चित्त लगावै ॥ मैंतो सुगत सेइ तुमचरना ॥ परिजो चहै मिटायौ मरना ॥ ७६ कृपासिंधु तुम करुणा करौ ॥ ध्यान जोग बानी बिस्तरौ ॥ सुनि उद्धव निजजनकी बानी ॥ श्रीहरिजी आपु बखानी ॥ ७७ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ उद्धवतोकौं ध्यान सुनाऊं ॥ जोग सहित सब अंग बताऊं ॥ जोगसहित जो ध्यानहि करै ॥ तो मन बेग रजहि परिहरै ॥७८॥ सम आसनमैं अस्थिर होई ॥ जंघनि परि राषै कर दोई ॥ देह समान चले नहिं दोलै ॥ नासा दृष्टि कछू नहिं बोलै ॥ ७९ ॥ इडा पूरि कुंभक थिरधारै ॥ पुनि रेचक पिंगुला निसारै ॥ बहुरौं पूरि पिंगुला द्वारा ॥ इडा निसारै वारंवारा ॥ ८० ॥ इंद्रिय अर्थ सकल परिहरै ॥ मेरौ हेत हृदेमैं धरै ॥ उद्धव द्वै विधि जोग कहावै॥ ताको भेद गुरुतैं पावैं॥८१॥ मंत्र सहितसो नाम सगर्भ ॥ मंत्र बिनासौं कहैं अगर्भ ॥ तातैं सो सगर्भसें नाम ॥ सो उत्तम हैं प्राणायाम ॥ ८२ ॥ पूरै राषै रेचक करै ॥ ॐकारमंतर ऊर धरै ॥ घंटा नाद तुल्य उर ध्यावै ॥ तासौं मिलि करि प्राण चलावै ॥ ८३ ॥ यों त्रिकाल अभ्यासै कोई ॥ प्राण मासहीमै स्थिर होई ॥ बहुरौं हृदय कमलको ध्यावै ॥ अष्ट पांखरीसों विकसावै ॥ ८४ ॥ ऊंधै मुखसौं उर्द्ध विकरै ॥ ताके मध्य सूर्यहीं धरै ॥ सुरजमै पूरण ससि आनै ॥ शशिमैं अनल तेजमय जानै ॥ ८५ ॥ अनल मध्य ममरूपहि ध्यावै ॥ परम प्रीतिसो मनहि लगावै ॥ अंगुष्ठ समहि चतुर्भुजरूप ॥ अतिसीतल सुखदान अनूप ॥ ८६ ॥ नूतन सजल मेघतन स्याम ॥ तडितवुल्य अंबर रुचि धाम ॥ मंदहास सोभानिधि आनन ॥ मकराकृत कुंडल सुभ कानन ॥ ८७ ॥ कंठै कौस्तुभमणि वनमाला ॥ उर भृगुलता लक्ष्मी विशाला ॥ शंख चक्र गदा अरु पद्म ॥ हस्त

चार सोभा अति सझ ॥ ८८ ॥ हेम मुकुट हीरामनि जर्‍यौ ॥ अति सोभायमान सिर धर्‍यौ ॥
भालतिलक अंबुज वर नयन ॥भक्तप्रसाद सुधाको अयन ॥ ८९ ॥ कर कंकन अंगद मुद्रिका॥
पग नूपुर कटिमैं क्षुद्रिका ॥ अंकुश वज्र ध्वजा अरविंद ॥ चिह्नित चरण हरण दुष द्वंद ॥ ९० ॥
नष मणि गणकी प्रभा प्रकास ॥ उर अज्ञान अंध तमनास ॥ और सकल अंगनि सब भूषन ॥
जिनकैं ध्यान मिटैं सब दूषन ॥ ९१ ॥ वय किसोर परमहि सुकुमार ॥ नष शिख ध्यावे वारंवार
॥ चरणनितें प्रति अंगहि ध्यावे ॥ एकगहे एकहि छटिकावै ॥ ९२ ॥ यौंले नषतें शिष परजंत॥
निसादिन हृदये ध्यावै संत ॥ औंर वासना सब परिहरै ॥ मेरोरूप अडि गमन धरै ॥ ९३ ॥
याविधि मन जब निहचल होई ॥ तब फिरि अंगन ध्यावे कोई ॥ अतिसुंदर सुषमैं मन धारै॥
और सकल चितवनहि निवारै ॥ ९४ ॥ याविधि मन अपनें वस होई ॥ तब विराटमैं धारै
सोई ॥ सकल विराटरूप मम जानै ॥ मोतें भिन्न कछू नहिं मानै ॥ ९५ ॥ यौं विराट ममरूपहि
जानी ॥ निहचल भयो भेदकौं भानी ॥ तब ताहूंतैं मनहि निवारै ॥ शुद्ध निरंजन ब्रह्म विचारै
॥ ९६ ॥ ब्रह्मविचार निरंतर करे ॥ सब आकार दूरि परिहरे ॥ आतम ब्रह्म एक करि देखे ॥
चेतन रूप अखंडित लेखे ॥ ९७ ॥ निजानंद निहचल निरधारा ॥ सत्य स्वरूपवार नहिं पारा॥
एक अजन्मा आपैं आप ॥ सुखदुख रहित पुन्य नहिंपाप ॥ ९८ ॥ काल न कर्म जीव नहिं
माया ॥ आपैं आप निरंजन राया ॥ जैसैं अग्नि अखंडित होई ॥ तातें उठें पतंगा सोई ॥
॥ ९९ ॥ बहुरि अग्नी मांहि समावैं ॥ तबहि पतंगा नाम गवावैं ॥ एसैं आतम ब्रह्म
विचारै ॥ एक जानि करि द्वैत निवारै ॥ १०० ॥ ऐसी भांति विचारहि करतै ॥ निसदिन

ब्रह्म मांहि मन धरतै ॥ त्रिगुणाकार सकल भ्रम भागै ॥ होइ ब्रह्म सोवत ज्यौं जागै ॥ ॥ १०१ ॥ ह्वै करि ब्रह्म ब्रह्ममिलि जावै ॥ जहांहुतें बहुरी नहिं आवै ॥ ऐसी विधि भव दुःखनि दहै ॥ मेरो निजानंद पद लहै ॥ १०२ ॥ ॥ दोहा ॥ ॥ यह पैंडो तोसो कह्यौ जाकरि हरिपुरि जाइ॥ परियामैं बहु विघनहैं ते भाषौं समुझाइ॥१०३॥ इति श्रीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधे श्रीभगवदुद्धवसंवादेभाषायांचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

॥ दोहा ॥ ॥ कह्यो पंदरहीं ध्यायमैं सिद्धि धारणाधार ॥ परम ज्ञानमैं ऊपजै, अंतराय तिनलार ॥ १ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ ॥ उद्धव जोग पंथ समुझाऊं ॥ तामैं बहुतें विघ्न बताऊं ॥ जोइंद्रिय मन प्राणहि बाधै ॥ सावधा नव्है जो गहि साधै ॥ १ ॥ मोमैं धरै आपनौं चित्त ॥ ताकौं सिद्धि विघ्नहै नित्त ॥ जोतिन सिद्धिनिकौं परिहरै ॥ सो मम चर्णनिकौं अनुसरै ॥ २ ॥ तिनसौं कबहूं रहै भुलाई ॥ तो श्रम सकल वृथाहीं जाई ॥ ऐसैं कृष्णबचन उरधारै ॥ उद्धव कीनौं प्रष्ण विचारै ॥ ३ ॥ उद्धव उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ केइ प्रकार धारणा देव ॥ अरु सिद्धिनकौ कइ विधि भेव ॥ तिनके नाम कृपाकरि कहौ ॥ जोगिनिकेविघ्ननिकौं दहौ ॥ ४ ॥ तुमआधीन सिद्धिहे सकल ॥ तुमरि कृपातें होई अकल ॥ उद्धव प्रष्ण हृदेमैं धारी ॥ तब बोले गोपाल मुरारी ॥ ५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ उद्धव सिद्धि अठारह कहियै ॥ मम धारणा करेतैं लहियै ॥ तिनमैं

अष्टसिद्धि प्रधान ॥ दश मध्यमते करौं बषान ॥ ६ ॥ अथ अष्ट प्रधान सिद्धि ॥ जातैं देहरूप अणु होई ॥ कितहूं नहीं आवर न कोई ॥ अणिमा सिद्धि नाम यह जानौ ॥ महा मोहनी माया मानौं ॥ ७ ॥ १ ॥ जो तन करै महा विस्तार ॥ जहां तहां कछु वारन पार ॥ महिमा नाम सिद्धिसो कहियै ॥ कबहूं ताकौं भूलिन गहियै ॥ ८ ॥ २ ॥ जो यह देहहि अति लघु करै ॥ मुष्टि न आवै दृष्टि न परै ॥ सो यह लघिमा सिद्धि कहावै ॥ मम जन याके निकट न आवै ॥ ९ ॥ ३ ॥ जे जे इंद्रिय भोगनि करै ॥ जहां विषयनि विस्तरै ॥ तिन सब भोग निजा करि लहियै ॥ प्राप्ती नाम सिद्धिसो कहियै ॥ १० ॥ ४ ॥ एक ठौरही बैठेरहै ॥ देषे सुने सकलकी कहै ॥ ताहि अगोचर रहे न काई ॥ सो प्रकासक सिद्धि कहाई ॥ ११ ॥ ५ ॥ इंद्रिय देह बुद्धि मन प्रान ॥ तिहूंलोक जिनको अस्थान ॥ तिनकौं त्यौं प्रेरे ज्यौं जानै ॥ ताहि ईशिता सिद्धि बषानै॥१२॥६॥विषय सुषनिकौं कदे न गहै॥जातैं अति आनंदित रहै॥वसिता नामक सिद्धि कहावै॥मेरो भक्त निकट नहिं आवै॥१३॥७॥जो जो इच्छा मनमैं ल्यावे॥सो सो सकल पलकमें पावे॥नाम अवसिता सिद्धिहि सोई॥मेरो जन आदरै न कोई॥१४॥८॥अष्टसिद्धि ए अतीप्रधान॥इनतें मध्यम भाषों आन॥ अथ दश गुण हेतु सिद्धि॥तनके गुण व्यापें नहिं कोई ॥नाम अनुरमी कहिये सोई॥१५॥१॥ दूर विश्रबन सुने सब बैन॥२॥दूरसरस देषे सबनैन॥ ३ ॥मनके बेग मनो जव धावै ॥ ४ ॥ कामरूप बहुरूप बनावै ॥ १६ ॥ ५ ॥ परके तनमैं करै प्रवेस ॥ सिद्धि छठी परकाय प्रवेस ॥ ६ ॥ निज इच्छातैं तजै शरीर ॥ सो स्वच्छंद मत्यु है वीर ॥ १७ ॥ ७ ॥ मिलै अप्सरनि विचरे देवा ॥ देषै तिनहि लहैं सब भेवा ॥ सो सुर क्रीडा दरसन कहियें ॥ मिथ्याफल

है कदे न गहियें ॥ १८ ॥ ८ ॥ जोसंकल्प करे सो होई ॥ जथा संकल्प कहियै सोई ॥ ९ ॥
जहां गयौ चाहै तह जावै ॥ अप्रतिहतगति सिद्धि कहावै ॥ १९ ॥ १० ॥ ए दशमिलि अष्टा
दश कहियै ॥ औरौ पंच तुच्छ नहिं गहियै ॥ अथ पंच तुच्छ सिद्धि ॥ वर्त्तमान अरु भूत
भविष्य ॥ सब कछु जाने लष्य अलष्य ॥ २० ॥ यहहै सिद्धि त्रिकाल ज्ञान ॥ आगे सिद्धि
वषानौं आन ॥ १ ॥ सीत उष्ण आदिक जे द्वंद्व ॥ तिनहि निवारे सो अद्वंद्व ॥ २१ ॥ २ ॥
परके मन आदिककूं जानैं ॥ सो अभिज्ञता सिद्धि बखानैं ॥ ३ ॥ विष अरु अग्नि सूर्य जल
थंभा ॥ जातें होवे इसो अचंभा ॥ २२ ॥ प्रतिष्टंभ सो सिद्धि कहावै ॥ हरिजन ताके निकटन
आवै ॥ ४ ॥ काहू सौ जीत्यौं नहिं जाई ॥ सो अपराजय सिद्धि कहाई ॥ २३ ॥ ५ ॥ वै अष्टा
दश अरु ए पंच ॥ मिलितेईसे सकल प्रपंच ॥ ऐसें मूलरूप उच्चारी ॥ साषा बहुत नहीं
विस्तारी ॥ २४ ॥ २३ ॥ मम धारणा करेतें आवैं ॥ जोगिनकौं बहुविधी चलावैं ॥ जो तिनतें
वेचलेन कबहीं ॥ तो मम चर्णनि पावै तबहीं ॥ २५ ॥ जाहिधारणातें जो आवे ॥ एसें जोगीकूं
विचलावे ॥ सो सब उद्धवतोसौं कहौं॥ जोग पंथके विघ्ननि दहौं॥सगुणरूप जो कछु विस्तारा ॥
सो नानाविध रूप हमारा ॥ ताही ताहि मांहि मन लावै ॥ तैसी तैसी सिद्धिहि पावे ॥ २७ ॥
अथ सिद्धि साधन तेवीस ॥ २३ ॥ शब्द स्पर्श रूप रस गंधा ॥ पंचभूतके सूक्षम बंधा ॥
तिनमैं जा जामें मनलावै॥ ता ताके रूपहि मिलि जावै ॥ २८ ॥ १ ॥ महत्तत्त्वमैं मनहि लगावै
पंचभूत साषा करि ध्यावैं ॥ जा जा साषामैं मनधारै ॥ ताही ता समदेह बधारै ॥ २९ ॥ २ ॥

पंचभूतके जे परमानू ॥ तिनमैं जोगी धारै ध्यानू ॥ ता ता सम लघु देहहि करै ॥ काहूंसौं

कहु गह्यौ न परै ॥ ३० ॥ ३ ॥ सातिक अहंकार मन धारै ॥ ताकौं मेरौं रूप विचारै ॥ तबजे इंद्रिय भोगनि करै ॥ बहुत भांति विषय विस्तरैं॥ ३१ ॥ते ते सुख ए जोगी पावे ॥ सो वह प्राप्ती सिद्धि कहावै॥४॥मेरो सूत्ररूप मन आनै ॥ तातैं त्रिभुवनकी गति जानै॥३२॥ ज्यौंकर दीवाले घर देखै॥यौं त्रिभुवन आचर्णनि पेखै ॥ ५ ॥ मेरे कालरूप मन धारै ॥ सब व्यापक सब ईस वि चारै ॥ ३३ ॥ तातैं सिद्धि ईशिता पावै ॥ त्रिभुवन जाने त्यौं वरतावै ॥ जाहीसौं जोई करवावै ॥ ताके अंतर त्यौं उपजावै ॥ ३४ ॥ ६ ॥ आदिपुंरुष जो मेरो रूप॥तामे धारे चित्त अनूप ॥ तातैं वसिता सिद्धी पावैं ॥ विषयनि विन आनंद बढावैं ॥ ३५ ॥ ७ ॥ निरगुण ब्रह्म मांहि मन धारै ॥ सब करता सब ईस विचारै ॥ तातैं सिद्धि अबसिता लहै ॥ सोई सो पावै जो चहै ॥ ३६ ॥ ८ ॥ शुद्ध सत्वमय मोहि विचारै ॥ तामैं जोगी मनकौं धारै ॥ तातें सुद्ध आपुहीं होई ॥ षट उरमि व्यापे नहिं कोई ॥ ३७ ॥ ९ ॥ गगन धार प्राण मन धारै ॥ शब्द रूप उर मांहि विचारै ॥ तब जहँ लगे पवन आकाश ॥ सुने तहांलौं वचन निवाश ॥ ३८ ॥ ॥ १० ॥ नैननिमैं सूरजकौं धारे ॥ अरु सूरजमें नैन विचारे ॥ अपरिच्छन्न मोहिकौं लेषे ॥ तब सो तिहूं लोककौं देषे ॥ ३९ ॥ ११ ॥ पवनसहित मोमैं मन धारै॥ जहां तहां मम रूप विचारै॥ ऐसें मनकौं जहां चलावे ॥ मनके वेग तहां ऊजावैं ॥ ४० ॥ १२ ॥ सारे मेरे रूप विचारै ॥ तिन ही तिनमैं मनकौं धारै ॥ चाहै भयो रूप तब जोइ ॥ वानर लागै होवे सोई ॥ ४१ ॥ १३ ॥ कर्‍यौ प्रवेसहि चाहे जामैं ॥ ध्यान आपुनौ आने तामैं ॥ तब ता तनमें जावे एसैं ॥ भृंग फूलतें फूलहि जेसैं ॥ ४२ ॥ १४ ॥ मूल द्वार पग बंध लगावै ॥ प्राण चलाइ सीसमे ल्यावै ॥

ब्रह्मरंध्रमें गमनहि करै ॥ जो मन होइ तांहि अनुसरै ॥ ४३ ॥ १५ ॥ स्वर्ग देव सुर बनिता ध्यावै ॥ मेरो रूप जानि मन ल्यावै ॥ तबते सहित विमानहि आवै ॥ ते जोगीकूं सुख उपजावै ॥ ४४ ॥ १६ ॥ जो जो वस्तु हृदेमें धारै ॥ ता ताको प्रभु मोहि विचारै ॥ सोई सो पावे ततकाल ॥ जबहीं चाहे काल अकाल ॥ ४५ ॥ १७ ॥ सकल नियंता सबको ईस ॥ नित स्वाधीन सकलके सीस ॥ जोगी एसो मोकों ध्यावै ॥ ताकी आणन कोइ मिटावै ॥ ४६ ॥ १८ ॥ ज्ञान रूप सब अंतरजामी ॥ ध्यावैं मोहि सकलको स्वामी ॥ अपनी जानै जन्म मरनकी ॥ ज्ञान त्रिकालरु सबके मनकी ॥ ४७ ॥ १९-२० ॥ प्रकृति गुणनितैं न्यारौ जानैं ॥ अरु तिनको स्वामी करि मानै ॥ ध्यावै मोहि अद्वंद्व॥ तब कोई नहिं व्यापै द्वंद्व ॥ ४८ ॥ २१ ॥ सबमें व्यापक सकल अतीत ॥ लिपे न सूर अग्नि जल सीत ॥ एसो मोकों ध्यावै कोई ॥ एसो लक्षण पावै सोई ॥ ४९ ॥ २२ ॥ जे मेरे अवतारनि ध्यावै ॥ आयुध छत्र चमर मन ल्यावै ॥ ताको कहु न पराजय होई ॥ सबहिन मांहि विराजे सोई ॥ ५० ॥ २३ ॥ यौं धारणा करै मम जोई ॥ सिद्धिनि पावै जोगी सोई ॥ परिए अंतरायहें सारै ॥ मेरे भक्तनि दूरि निवारै ॥ ५१ ॥ मोतें ए इनतें में नाहीं ॥ तातै मम जन निकट जाहीं ॥ मोहि न लहें नहि जे लेवैं ॥ मोहि भजैं तिनकौ ए सेवैं ॥ ५२ ॥ मोहीतें उतपाति सब इनकी ॥ में प्रतिपाल करौं तिन तिनकी ॥ मम आधीन सिद्धि अरु जोग ॥ सांष्यरु ज्ञान धर्म धन भोग ॥ ५३ ॥ सबको जनक सकलको स्वामी ॥ मैं सब इनको अंतरजामी ॥ सबमें बाहिर भीतर एक ॥ मोमें वरते सकल अनेक ॥ ५४ ॥ पंचभूत सब भूतनि मांहीं ॥ बाहिर भीतर दूजा

नाहीं ॥ त्यौं सबमेंहीं नाहीं आन ॥ आनदृष्टि सोई अज्ञान ॥ ५५ ॥ तातैं द्वैत भाव नहिं आनै ॥ मेरो रूप सकल करि मानै ॥ साधन सिद्धि सकल भ्रम तजै ॥ मेर चर्ण निरंतर भजै ॥ ॥ ५६ ॥ मम प्रसाद मम चर्णनि पावै ॥ अति अपार भवदुःष मिटावै ॥ यह में तोसों भाष्यौ ज्ञान ॥ यातें और सकल अज्ञान ॥ ५७ ॥ ॥ दोहा ॥ एक ब्रह्म करि देषनौ, यह सुनि दुष्कर ज्ञान ॥ पूछी विष्णुविभूति तब, उद्धव परम सुजान ॥ ॥ इतिश्रीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधेश्रीभगवदुद्धवसंवादेभाषायांपंचदशोऽध्यायः १५ ॥ दोहा ॥ कहत सोलमैं ध्यायमैं, प्रगट रूप इह देश ॥ ज्ञान वीर्य प्रभाव सब, वर्णन करी विशेष ॥ १ ॥ उद्धव उवाच ॥ चौपाई ॥ तुमहो परम ब्रह्म अविनासी ॥ चिदानंद विज्ञान प्रकासी ॥ आदिरु अंत मध्य नहिं जाकौ ॥ कोई भेद लहे नहिं ताकौ ॥ १ ॥ तुमही सकल जगत उपजावौ ॥ तुम प्रतिपालौ तुम विनसावौ ॥ तुम सब बाहिर अरु सब मांहीं ॥ सदा अलिप्त लिपौ कहु नाहीं ॥ २ ॥ जहां तहां तुमहींहों एका ॥ इह सब भ्रम जो दृष्टि अनेका ॥ हे प्रभु यह जग अति विस्तारा ॥ ऊंच नीच बहु विविध प्रकारा ॥ ३ ॥ अरु या जीव सत्य करि मान्यौ ॥ विषयनिसौं बहुभांति बधान्यौ ॥ याकै एक दृष्टि क्यौं आवै ॥ कैसें सकल ब्रह्मकरि ध्यावै ॥ ज्ञानवंत तव जनहैं जेतें ॥ ब्रह्म दृष्टि देखतहैं ते तें ॥ तातैं अब तुम करुणा करौ ॥ निजविभूति मोंसौं विस्तरौ ॥ ५ ॥ तिनमें देखि सबनिमें देषौं ॥ तब अद्वैत ब्रह्मकरि लेषौं ॥ सुनि उद्धवके उत्तम बैन ॥ बोले हरिजी करुणा ऐन ॥ ६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥

चौपाइ ॥ उद्धव प्रष्ण भली तुम कीनी ॥ जातें परै परमगति चीनी ॥ यहि प्रष्ण अर्जुननें करी ॥ तासों जामें विधि उच्चारी ॥ ७ ॥ तेही विधि अब तोहि सुनाऊं ॥ ऐसें ब्रह्म दृष्टि उपजाऊं ॥ कौरव अरु पांडव कुरुषेत ॥ जबहि जुरै भारतकै हेत ॥ ८ ॥ तब अर्जुन कौरवहूं विषै ॥ सकल बंधु अपने करि लिषै ॥ इन सबहिनकों जो में मारौं ॥ आपुहि आप नरकमैं डारौं ॥ ९ ॥ ऐसी विध आन्यौहंकार ॥ आपुहि मान्यौं मारनहार ॥ तबमें ताहि ज्ञान समुझायौ ॥ ताकौ तब अज्ञान मिटायौ ॥ १० ॥ प्रष्णकरी अर्जुन तब एसी ॥ तुम मोसों कीनीहै जेसी ॥ तातैं उत्तरकौं उच्चरौं ॥ या विधि ब्रह्मदृष्टिकौं करौं ॥ ११ ॥ उद्धव में सबहिनको स्वामी ॥ अरु सबहिनको अंतरजामी ॥ आपहुतें सबकों उपजाऊं ॥ सब पापों सब कौं वरताऊं ॥ १२ ॥ सकल रहैं मेरे आधीन ॥ मोहीमें सब होवें लीन ॥ तातें सब में दूजा नाहीं ॥ यौं विभूति जानो मन मांहीं ॥ १३ ॥ परितोसों विशेषसों कहौं ॥ तेरी द्वैत दृष्टिकौं दहौं ॥ सब रक्षकनि मांहि में रक्षक ॥ तिनमें काल सकल जे भक्षक ॥ १४ ॥ सोमें प्रकृति गुणनिकी आदी ॥ पंचभूतमें में भूतादी ॥ सूत्रहि सकल गुणिनिमें जानो ॥ बडे मांहि महत्तत्त्वहि मानो ॥ १५ ॥ सूक्ष्मनि मांहि जीव मुहि देषो ॥ सब दुर्जयनि मांहि मन लेषौ ॥ बेदनिमें ब्रह्मा मुहि जानौ ॥ ॐकार मंत्रानिमैं मानौ ॥ १६ ॥ छंदनिमें गायत्रीछंद ॥ में अकार अक्षरके वृंद ॥ में सबदेवनि मध्य पुरंदर ॥ सकल वसुनमैं मैं वैश्वानर ॥ १७ ॥ नीलकंठ एकादश हरमैं ॥ विष्णुनाम द्वादश दिनकरमैं ॥ तिनमें भृगुजे सप्त महाऋषि ॥ तिनमैं मनुजे सबै राजऋषि ॥ ॥१८॥ देवऋषिनिमें नारद जानौ ॥ कामधेनु धेनुनमैं मानो ॥ सिद्धनिमैं मैं कपिल स्वरूप ॥

पंखी माही गरुड मम रूप ॥ १९ ॥ प्रजापतिनमें मैंहों दच्छ ॥ तिनमें मकर जहांलौं मच्छ ॥ वादनिमें अध्यातम वाद ॥ सब असुरनिमैं मैं प्रहलाद ॥ २० ॥ तमप्रकासक मांहि दिनेस ॥ जक्ष रक्ष गण मांहि धनेस ॥ तिनमें सोम सकल जे उडुगन ॥ सब धातुनमें मैंहौं कंचन ॥२१॥ गर्जनिमांहि में गज ऐरावत ॥ मैं अनंग जे सृष्टि उपावत ॥ तहा वरुण जे सब जलजंत ॥ नागनिमें मम रूप अनंत ॥ २२ ॥ नरनिमांहि मम रूप नरेस ॥ सर्पमांहि वासुकि सर्पेस ॥ उच्चैश्रवा हयनिमैं जानौं ॥ दंडधारि तिनमैं जम मानौ ॥ २३ ॥ सकल मृगनिमैं मैं मृगराज॥ सरितनिमैं गंगा सरिताज ॥ सब आश्रमनि मांहि संन्यास ॥ वर्णनिमांहि विप्र मम वास ॥ २४ ॥ सकल सरनमें रूप समुद्र ॥ सकल धनुषधारिनिमैं रुद्र ॥ मैंहो धनुष आयुधनि मांहीं ॥ परम निवास मेरु मो मांहीं ॥ २५ ॥ जे अति गहन हिमालय तिनमें ॥ में पिप्पल सब वनस्प तिनमै ॥ मैं पुरोहितनि मांहि वसिष्ठ ॥ तहां बृहस्पति जे ब्रह्मिष्ठ ॥ २६ ॥ सेनापतिन माहि सेनानि ॥ धरम प्रवृत्तक ब्रह्मा जानी ॥ सकल औषधिनमैं जव जानौं ॥ पितरनि मांहि अर्यमा मानौ ॥ २७ ॥ ब्रह्मयज्ञ सब यज्ञनि मांहीं ॥ वृत अद्रोह समाको नाहीं ॥ वायु अग्नि जल सूर जबानी ॥ अरु मन ए षट सोधक जानी ॥ २८ ॥ चतुरनि मांहीं आत्मविचार ॥ ब्रह्मचारिमें सनत्कुमार ॥ इस्त्रिनिमें सत रूपा रानी ॥ पुरुषनिमें स्वायंभू जानी ॥ २९ ॥ सावधान तिनमैं संवत्सर ॥ अभय ठौर तिनमें उर अंतर ॥ मैंहों धर्म अभयको दान ॥ गुह्यनमें प्रिय मौन समान ॥ ३० ॥ त्रिया पुरुष संजोगी जे ते ॥ ब्रह्मा हुतें उरें सब ते ते ॥ सकल बानरनिमैं हनुमंत ॥ ऋतुनि माहि मम रूप वसंत ॥ ३१ ॥ मार्ग

शीर्ष मासनिम जानौ ॥ नक्षत्रनिमैं अभिजित मानौ ॥ देवलअसित रहित जे डुंदर ॥ कमल कोस सबहिनमैं सुंदर ॥ ३२ ॥ जुगनि मांहि सतजुगसें नाम ॥ वेदनिमांहि वेदमैं साम ॥ व्यासनि माहि व्यास द्वैपायन ॥ तिनमैं तुमजें विष्णु परायन ॥ ३३ ॥ कविनि मांहि कवि शुक्रहि जानौ ॥ सक्तिवंत मम यह तन मानौ ॥ विद्याधरनी मांहि सुदर्शन ॥ पद्मराग तिनमैं जे मणिगण ॥ ३४ ॥ सब तृण जातिनमैं कुस जानौ ॥ होम वस्तुमैं गोघृत मानौं ॥ तिनमैं धनजे सब व्यवसाय ॥ जय मारग सब तिनमैं न्याय ॥ ३५ ॥ अंग समाधि जोग अंगनिमैं ॥ मेंहों क्षमा क्षमावंतानिमैं ॥ धीरजमें जे धीरजवंत ॥ मैं बल तिनमैं जे बलवंत ॥ ३६ ॥ छलहि मांहि छलमेंहों जूप ॥ मेरे हेत कर्म मम रूप ॥ वासुदेव संकर्षण वीर ॥ प्रद्युम्न अनिरुद्ध सरीर ॥ ३७ ॥ नारायण हयग्रीव महीधर ॥ नरहरि अरु जमदग्नि पुत्रवर ॥ व्यूहार्चन नव पूजा जानौ ॥ वासुदेव तहँ मोकौं मानौं ॥ ३८ ॥ तिनमैं थिरता जे सब भूधर ॥ पूरव चित्ति नामक ते अप्सर ॥ मेंहो विस्वावसु गंधर्व ॥ धरणीमांहि गंधमैं सर्व ॥ ३९ ॥ रस जल मांहि शब्द आकास ॥ रवि शशि तारनिमैं परकास ॥ तेजस्विनिमैं पावक जानौ ॥ विप्र भक्तितिनिमैं बलिमानौ ॥ ४० ॥ वीरनि माहीं अर्जुन सार ॥ में सब उतपति थिति संहार ॥ इंद्रिय मन बुध्यादिक जे ते ॥ मेरी शक्ति प्रवृतें ते ते ॥ ४१ ॥ सबहेतुव्हे अर्थनि गहौं ॥ ते जड तिनमैं चेतन रहौं ॥ शब्द स्पर्श रूप रस गंध ॥ तिनमैं पंचभूत संबंध ॥ ४२ ॥ इंद्रिय मन महत्तत्त्व हंकार ॥ त्रिगुण सहित ए प्रकृति विकार ॥ प्रकृती पुरुष जहां कछु जेतो ॥ मेरो रूप सकलहै तेतो ॥ ४३ ॥ मो बिन कहूं कछूहै नाहीं ॥ मेंहीं प्रगट रहौं सब मांहीं ॥ जो परमाणु गिणोमैं

जबहीं ॥ तो तिन पारन पावौं तबहीं ॥ ४४ ॥ परि मम निरमित जे ब्रह्मंड ॥ तिनकौं गिनत परै नहिं खंड ॥ तातैं कहौं विभूति कहांलौं ॥ जो कछु मेरोरूपरातहांलौं ॥ ४५ ॥ औरहु जुगति विभूती कहौं ॥ द्वैत दृष्टि एसी विधि दहौं ॥ लज्जा तेज क्षमा धन दान ॥ सुंदरता ऐस्वर्य रु ज्ञान ॥४६ ॥बल सौभाग्य धैर्य जह जहां ॥ ममविभूति जानौ तह तहां ॥ ए विभूति तोसों कछु कही ॥अति अपार कहिवेकों रही ॥ ४७ ॥ मन थिर काजकरी यह जानौ ॥ इह अज्ञान कदै मतिमानौ ॥ इंद्रिय देह बुद्धि मन प्रान ॥ निश्चल करि देखो भगवान ॥ ४८ ॥ मनतें सब आकार उतारौ ॥ चेतन मेरो रूप विचारौ ॥ एक अखंडित जहँ तहँ सोई ॥ आपापर दूजा नहि कोई ॥ ४९ ॥ ऐसौ ज्ञान ब्रह्मकों पावौ ॥ ब्रह्महि पाइ जगत नहि आवौ ॥ तन मन इंद्रिय बुद्धि प्राना ॥ थिर करि जिनन न धर्‍यौ मम ध्याना ॥५० ॥ताके बहुत भांति आचरना॥ जप तप व्रतादिक करना ॥ काचै कलस भर्‍यौ जल जैसें ॥ पल पल श्रवि जावै सब तैसें ॥ ५१॥ तातें वचन काय मन प्रान ॥ सबकौं बंधकरैं मम ध्यान ॥ मोहि ध्याइ मो मांही समावै ॥ ता संसार मांहि नहिं आवै ॥ ५२ ॥ दोहा ॥ ॥ ज्यौं उद्धव तोसौं कह्यौ, यह विभूतिकौ ज्ञान ॥ त्यौंहीं सूषम थूल सब, देषो श्रीभगवान ॥ ५३ ॥ इतिश्रीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधेश्रीभगवदुद्धसंवादेविभूतिवर्णनेषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ॥ ॥ दोहा ॥ ॥ हंस उक्त स्वधर्म पुनि, भक्ति लक्षणा प्रीत ॥ कही सत्तरमें ध्याय मैं, वर्णाश्रमकीरीत ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ॥ चोपाई ॥दासनिमैं उद्धव निज दा

स ॥ जाके हृदये ज्ञान प्रकास ॥ जिन जीवनकी हित मनधरी ॥ तातैं प्रष्ण कृष्णसौं करी ॥१॥ ॥ उद्धव उवाच ॥ ॥ चौपाई॥ प्रभु तुम कल्प आदि उचार्‍यौ ॥भक्ति निमित्त धर्म बिस्तार्‍यौ ॥ वर्णाश्रम आदिक नर जेते ॥तिन धर्मनिसौं लागे ते ते ॥ २ ॥ तिनमैं कोई भक्तिहि पावै ॥ कोई करम सिंधु बहि जावै ॥ तातैं तुम करुणामय देवा ॥ भाषो नर धरमनिको भेवा ॥ ३ ॥ धर्म करत ज्यौं उपजे भक्ति ॥ तुमरे चर्ण बढे अनुरक्ती ॥ छूटै काल जाल भव कूप ॥ लहे तुमारौं ब्रह्मस्वरूप ॥ ४ ॥ जद्यापि तुम विधिसों विस्तार्‍यौ ॥ जब प्रभु हंसरूप तन धार्‍यौ ॥ परिबहु काल कहेतें भयौ ॥ तातै धर्म लीन ह्वै गयौ॥५॥ हैं कछु और करे कछु ओर ॥ जातैं जविन पावै ठौर ॥ तातैं तुम करुणा करि भाषौ ॥ बहे जाततै जीवनि राषौ॥६॥ अरु यह तुमहीं जानै देवा॥ तुम बिन दूजो लहै न भेवा॥तुमहीं कहौ सुनो उर धरौ॥तुमहीं राखौ तुमही करौ॥७॥ ब्रह्माहूंकी सभा मझारी ॥ वेदजहां नित मूरतिधारी ॥ तहांहु यह कौई नहिं जानैं ॥ ज्यौ बंधे त्यौं सबैं बखानै ॥ ८ ॥ अरु यह कैंसें करि मन आवै ॥ कर्मकरे तैं भक्तिहि पावै ॥ अरु तुम याही कौं मन धारौ॥जातैं निज धर्मनि विस्तारौ ॥९॥ जो वैकुंठ प्रयाणो करि है॥यह निजधर्म ता पीछे कोई नहिं कहै ॥ यह निज धर्म गुप्तहीं रहै ॥ १० ॥ तातैं अब तुम करुणा करौ ॥ यह निजधर्म वेगि विस्तरौ ॥ ऐसी सुनि उद्धवकी बानी ॥ आपुहि बोले सारंगपानी ॥ ११ ॥ श्री भगवानुवाच ॥ चौपाई ॥ धन्य धन्य उद्धव जन मेरे ॥ दूजो नहीं बराबर तेरे ॥ मेरो निज जन कहियै सोई ॥ हेत पराए वरते सोई ॥ १२ ॥ तातैं तुम परकारज कर्‍यौ ॥ मोतें परम धर्म विस्तर्‍यौ ॥ उद्धव परम धरम मम भक्ती ॥ और सकलतैं करै विरक्ती ॥ १३ ॥

भक्ति विना जोई जो धर्म ॥ सो सब जानौ परम अधर्म ॥ जबमें कियो प्रथम संसार ॥ तब नहि होतो विना कर्म विस्तार ॥१४॥ जेई जे मानव तन धरैं ॥ मोही सेईते ते उधरैं ॥ ह्वै कृतकृत्य लहैं मम धाम ॥ तातें सो कृत जुगसें नाम ॥ १५ ॥ तब ॐकार रूप सब बेदा ॥ ऐसें कछुनहूते भेदा ॥ सब इंद्रिय मन निहचल करैं ॥ मेरो ध्यान निरंतर धरै ॥ १६ ॥ एसें सब पापनि परिहरे ॥ सब मेरें चर्णनि अनुसरैं ॥ त्रेता विषें भए मतिमंद ॥ विषयनितें मानैं आनंद ॥ १७ ॥ तिन निमित्त बहु उद्यम करैं ॥ राजसतें पापनि बिस्तरैं ॥ तब तिन हेत बेद विस्तारैं ॥ बहुत भांतिके कर्म निवारैं ॥ १८ ॥ वर्णाश्रमके भेद उपाये ॥ न्यारे न्यारे कर्म ग्रहाये ॥ अपनो धरम त्याग जो करै ॥ सो नर जाइ नरकमें परैं ॥ १९ ॥ ऐसैं बहुविधि भय दिषलायौ ॥ थोरे कर्म निमें ठहरायौं ॥ तामें भाष्यौं उत्तम भजन ॥ मोविन सकल कर्मकौं तजन ॥ २० ॥ बहुरो बहु आरंभनि चहै ॥ राजसतें नहिं निश्चल रहै ॥ तिनके हेत यज्ञ उपजायौ ॥ विष्णुरूप कहि सबनि सुनायौं ॥ २१ ॥ विष्णु जजन कीजेंतामाहीं ॥ द्वैत दृष्ठि आनीजें नाहीं ॥ मैं मुषहूंते विप्र उपायो ॥ क्षत्रिय बाहुनितेंहि बनायो ॥ २२ ॥ जंघन वैस्य पदनतें सुद्रा ॥ पदनीचे और सब क्षुद्रा ॥ पुनि गृहस्थ जंघनतें कियौ ॥ ब्रह्मचर्य उर संभव लीयौ ॥ २३ ॥ वक्षस्थल उपज्यौं वनवास ॥ मस्तकहुतें रच्यौं संन्यास ॥ तातें पिता सकलमें एक ॥ मोतें उपज्यौं सकल अनेक ॥ २४ ॥ तातें मोहि मेटि जोकरै ॥ सो सब जाइ बंधनमैं परै ॥ जा जा अंगहुतें जो उपज्यो ॥ त्यौं त्यौं ताको लक्षण निपज्यो ॥ २५ ॥ ऊंचे अंगहुतें तो ऊंचौ ॥ नीचें अंगहुतैं सो नीचौ ॥ तिनकें बहुविधि भये सुभाव ॥ तातैं उपजैं नाना भाव ॥ २६ ॥ सम दम सत्य

क्षमा संतोष ॥ सदादयाल न उपजै शेष ॥ तप अरु सौच न भ्रम मम भक्ती ॥ इन लक्षणन विप्र अनुरक्ती ॥ २७ ॥ क्षमा तेज बल उद्यम धीर ॥ सूर उदार अचल गंभीर ॥ विप्र भक्त मेरो दृढभाव ॥ ए क्षत्रीके भए सुभाव ॥ २८ ॥ बुद्धी आस्तिक दान अदंभ ॥ विप्रभक्त उद्यम आरंभ ॥ वैस्य भयो लीनेंए लक्षण ॥ मंदबुद्धि परि महा विचक्षण ॥ २९ ॥ गाई अरु ते वर्णकौं सेवै ॥ तिनतैं कछू मिले सो लेवै ॥ सम संतोष कपटता नाहीं ॥ ऐसें लक्षण सूद्रनि मांहीं ॥ ३० ॥ मिथ्यावादरु हिंसा चोरी ॥ बुद्धी नास्तिक हृदय कठोरी ॥ काम क्रोध अरु लोभ विकारा ॥ वर्ण नीचके यही प्रकारा ॥ ३१ ॥ काम क्रोध मद तृष्णा रहित ॥ सत्य क्षमा परमारथ सहित ॥ जीवदया अरु तजै अधर्म ॥ यह सबकौं साधारण धर्म ॥ ३२ ॥ ब्रह्मचर्यके धर्मनि कहौं ॥ जातैं भक्ति उपाई चहौं ॥ विप्र क्षत्रि अरु वैस्य त्रिबरना ॥ इनकौं सकल वेद विधि करना ॥ ३३ ॥ गर्भाधानादिक संस्कार ॥ तिहूं बरणकौं यह आचार ॥ जबते बहुरि जनेऊ पावै ॥ तबते गुरुकै निकट रहावै ॥ ३४ ॥ बहुविधि गुरुकी सेवा करै ॥ वेदपढै अर्थनि उरधरै ॥ जनेउ मेषला कर जपमाला ॥ दंड कमंडल अरु मृगछाला ॥ ३५ ॥ दंत वस्त्र तन मल न निवारै ॥ सीस जटा हस्तनि कुशधारै ॥ आसन चंचल कदैं न करै ॥ लोक वारता ऱ्हदे न धरैं ॥ ३६ ॥ मूत्र पुरीष त्याग आसनाना ॥ होमरु जप भोजन जलपाना ॥ इनमें बचन नहीं उचरै ॥ नष केसादिक दूर न करैं ॥ ३७ ॥ सदा निरंतर दृढव्रत धारै ॥ कबहूं भूलि बिंदु नहिं डारै ॥ जो आपहुतैं जावै कबहीं ॥ बहुत भांति पिछतावै तबहीं ॥ ३८ ॥ करि असनानरु प्रा णायाम ॥ जापकरैं त्रिपदीसैं नाम ॥ अग्नि अर्क गुरु विप्ररु गाई ॥ सुरमुनि ब्रह्मनिन मन

कराई ॥ ३९ ॥ संध्योपासन करै त्रिकाल ॥ वचनन बोले हालन चाल ॥ गुरुकौं मेरौ रूपहि जानै ॥ नरकी बुद्धि कदै नहिं आनै ॥ ४० ॥ सर्वदेवमय गुरुकों लेषै ॥ तनके कछु आचरण न देषै ॥ भिक्षा आदि और कछु जोई ॥ गुरुकौं आनि समर्पै सोई ॥ ४१ ॥ जब गुरु ताकी आज्ञा देवै॥तबै प्रसाद आपुहीं लेवै॥बैठै ठाढे आवत जात ॥ भोजन सयनरु राति प्रभात॥४२॥ नीच भांति गुरुसेवा करै ॥ अंजलिसौं पीछे अनुसरै ॥ ऐसें व्रतहि अखंडित धारै ॥ मनहूंमें नहिं भोग विचारै ॥ ४३ ॥ ऐसैं गुरुकुल वरतै सोई ॥ ज्यौं लगि वेद समापति होई ॥ पुनि ब्रह्माके लोकहि चाहैं ॥ तो गृहस्थते नहिं संबाहैं ॥४४॥ गुरुकौं देह समर्पण करै ॥ वेदविचार हृदेमें धरे ॥ गुरु अरु अग्नि आप सब मांहीं ॥ सेवै मोहि अवर कछु नाहीं ॥४५॥ जुवति अरु जुवतिके संगी॥इनकौ कदै न होइ प्रसंगी॥दरस परम बानी परहास॥त्यागे दूरि मानि अतित्रास ॥ ४६ ॥ सौच आचमन अरु असनान ॥ संध्योपासन गत अभिमान ॥ तीरथ सेवा जप तप मिच्छा ॥ तजैं दरस संभाषण इच्छा ॥ ४७ ॥ मन अरु वचन देह वसकरै ॥ मेरे चर्ण ऱ्हदेमें धरै ॥ अरु मम भजन सबनिकौ धर्म ॥ भजन विना सब धर्म अधर्म ॥ ४८ ॥ ऐसें ब्रह्मचर्य व्रतधारी ॥ दृढ तप निशदिन वेदविचारी ॥ विगत पाप एसी विधि होई ॥ मेरी भक्ति लहै तब सोई ॥४९॥ ऐसी बिधि भवसागर तजे ॥ मेरै परम रूपकौं भजै॥अरु जो कबहीं होइ सकाम॥तब सोकरै जुवति अरु धाम॥५०॥केनाहि काम गहै वनवास॥केअधिकार पाइ संन्यास॥अरुजो उपजी मेरी भक्ति ॥ तो नहिं करे कहूं आसक्ति॥५१॥यह हे ब्रह्मचर्यको धर्म ॥ यातें दूजो सकल अधर्म॥ अब गृहस्थको धर्म सुनाऊं॥सकल गृहस्थनिकौं समुझाऊं ॥५२॥ ब्रह्मचर्य जो नहिं ठहरावै ॥ तो

गृहस्थ आश्रममें आवै॥गुरुतें वेदपढै सब जबहीं॥गुरु दक्षिणा देय पुनि तबहीं॥ ५३॥गुरुतें आग्यालै उरधरै॥तब विधिसौं आश्रमहीं करै॥तब देषै उत्तम कुललक्षण॥करै विवाह त्रिया विचक्षण ॥ ५४ ॥ ज्यौं देषैं अपनौं अधिकार ॥ त्यौंही करैं विवाह विचार ॥ विप्र विवाहैं चारौ वरना ॥ विप्र छोडि छत्रीकौं करना ॥ ५५ ॥ वैस्य विवाहे वैस्यरु सूद्र ॥ शूद्र एकहीं ऊंच न क्षुद्र ॥उत्तम सो जो एकहि करैं ॥ बहुतनि कष्ट नहीं विस्तरैं ॥ ५६ ॥ श्रुति अध्ययन जज्ञ अरु दान ॥ तिहूं वर्णकौ एक समान ॥ दान ग्रहन जज्ञ करवा वन ॥ अधिक विप्रकौं वेद पढावन ॥ ५७ ॥ परि ए तीन वृत्तिहैं ऐसैं ॥ अग्नि मध्य जल बरषै जैसैं ॥ इनतें ब्रह्मतेज नहिं रहै ॥ तातैं इनैंकौं विप्र न ग्रहै ॥ ५८ ॥ करि शिल उंछ देह निरबाहै ॥ तातैं अधिककौं नहिं सबाहै ॥ विप्र देह पूरण तप पइयैं ॥ विषयनि लागि सुनहीं गवइयैं ॥ ५९ ॥ बहुत भांति कष्ट तप करियैं ॥ हरिभजि हरिहींकौं अनुसरियैं ॥ शिलौंछ व्रतकरि राखै देह ॥ नहिं ममता जुवती सुत गेह ॥ ६० ॥ अतिथि पालनौं रज तम नाहीं ॥ मोहीकौं देखै सब मांहीं ॥ जीवन्मुक्त होइ सो विप्र ॥ मेरे चरणनि पावे क्षिप्र ॥ ६१ ॥ जो कोई मम भक्तिहि करै ॥ ताकौं कछू आपदा परै ॥ सो आपदा मिटावै कोई ॥ सोमेरो हितकारी होई ॥ ६२ ॥ ताकौं मैं उद्धारौं ऐसैं ॥ नावनसौं अंभोनिधि जैसैं ॥ परिक्षत्री निजधर्म विचारै ॥ सकल पालना हिरदैं धारै ॥ ६३ ॥ क्षत्री सबके दुःखनिहरैं॥ सकल जीव प्रतिपालन करै ॥ सोक्षत्री सुरलोकहि जावै ॥ वासव सहित महासुख पावै ॥ ६४ ॥ जो आपदा विप्रकौं परै ॥ तोसो बनिज वृत्तिकौं करै ॥ जद्यपि षडग वृत्तिहै ऊंची ॥ परिसो अति हिंसातैं नीची ॥ ६५ ॥ जो क्षत्रीकौं परै विपत्ती ॥ तासोगहै वनिजकी वृत्ती ॥ किंवा विप्रवृत्तिकौं

गहे ॥ अथवा मृगया करि निरबहे ॥ ६६ ॥ वैंस्यहिं परे आपदा जबहीं ॥ शूद्रवृत्तिसो धरै तबहीं ॥ अरु जो विपत्ति शूद्रकों परे ॥ तोप्रतिलोमज वृत्तिहि करे ॥ ६७ ॥ याविधि जबहीं मिटै विपत्ती॥तबहीं गहैं आपनी वृत्ती॥पंचजज्ञ ए प्रतिदिन करणें॥गृहस्थकौं नाहीं परिहरणें ॥ ६८ ॥ करिकैं पाठ ऋषिनकों भजै ॥ करि कछु होमहि देवनि जजैं ॥ भूतनि बलि स्वधासों पितर ॥ जलअन्नादि सकलसो देनर ॥ ६९ ॥ तिन सबनीमें मोकों जाने ॥औंर सबनि परकरुणा आनें॥ जोही कछू सहज धन पावे ॥किंवा न्यायतेंहि उपजावे ॥७०॥ तासौं लोग अपनो पोषै ॥ओर यज्ञ करि मोहि संतोषै॥ जेती लागत घरमें होई॥ते तोही धन राषे सोई ॥७१॥ और सकल मम हेत लगावे ॥ भूलिन दूजे मारग जावे ॥ जद्यपि रहें कुटंबहु मांहीं ॥ तोहूं लिपै कदे कहु नाहीं ॥ ७२ ॥ निशदिन हृदये करे विचार ॥ मिथ्या जाने सब परिवार ॥ इस्त्री पुत्र बंधु सब एसैं ॥ जलके निकट बटाउ जेसैं ॥ ७३ ॥ ए सबयौं प्रतिदेहहि आवै ॥ ज्यौं निद्रा प्रति सुपना पावै ॥ ज्यौं ज्यौं जागे वारंवारा ॥ त्यौं त्यौं मिटें सुपन व्यवहारा ॥ ७४ ॥ यौंही प्रतिदेतहि ए आवै ॥ देह तजे सब जित तित जावै ॥ अरु यौंही स्वर्गादिक लोक ॥ पाये हर्ष गए अतिसोक ॥ ७५ ॥ तातें सकल वासना दहे ॥ अतिथि समान भवनमें रहे ॥ अहंकार ममता नहिं आने ॥ सब माया बंधन करि माने ॥ ७६ ॥ सब कर्मणि मेरे हितकरै ॥ मोविच अंतराय परिहरै ॥ प्रेमभाव दृढ उरमें राषै ॥ औरहि सकल हृदेतें नाषै ॥ ७७ ॥ एकहि पुत्र भए बन जावे ॥ किंवा गेहहि मांहि रहावै ॥ एसो ग्रही मुक्तकरि मानों ॥ और कछू हृदये नहिं आनों ॥ ७८ ॥ अरुजो होइ भवन आशक्ती ॥ जुवति सुतादिक सों अनुरक्ती ॥ विषय सुलंपट तृष्णा आतुर ॥ ज्ञानरहित कर

मनमें चातुर ॥ ७९ ॥ आपुहि परम सताहि न जानै ॥ औरनकी चिंता उर आनै ॥ भाई वृद्ध पिता हे मेरो ॥ मो बिन दुःख लहै बहुतेरो ॥ ८० ॥ यह अबला लघु संतति जाकी ॥ मोबिन होइ कहा गति ताकी ॥ ए अनाथ मोबिन सबबाला ॥ क्यौं करि जीवें अती विहाला ॥८१॥ मोबिन इनहि कौंन प्रतिपालै ॥ कौंनहिं विविध दुखनिकौं टालै ॥ ऐसैं निशदिन आनैचिंता ॥ कबहूं नहिं होवै निहचिंता ॥ ८२ ॥ कदेन सुष पावे यालोक ॥ ग्रस्यौ रहै चिंता भयसोक ॥ या विधि चिंता करत अपारा ॥ नरकहि जावे वारंवारा ॥ ८३ ॥ दोहा ॥ ब्रह्मचर्य ग्रह चर्यकौ, मैं भाष्यौ इहधर्म ॥ जातैं उद्धव और सो, कछु सब जान अधर्म ॥ ॥ ८४ ॥ इतिश्रीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधे श्रीभगवदुद्धवसंवादेभाषायांसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥

दोहा ॥ ॥ अष्टादशवें ध्यायमें, वानप्रस्थ संन्यास ॥ अधिकार विशेष कर, तद्गत करत प्रकास ॥ १ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ अबमें कहों धर्म बनबास ॥ अरु अधिकार सहित संन्यास ॥ जातें मेरी भक्तिहि पावै ॥ भक्तिपाइ ममचरणनि आवै ॥ १ ॥ बरष पचासहुतें उपरांत ॥ तब बनजाइ रहे एकांत ॥ नारि सुतनमें रहनें देई ॥ जोविधि बनैं संगतो लेई ॥ २ ॥ कंदमूल फल वृत्तिहि करे ॥ वलकल मृगछाला तनधरे ॥ त्रणपत्ताकी सजा संवारै ॥ इंद्रियके सब अर्थनि वारै ॥ ३ ॥ केस रोम नष दूर न करै ॥ देह दंत मल नहिं परिहरै ॥ भूमि सयन त्रिकाल अस्नान ॥ मलन उतारै मुसल समान ॥

॥ ४ ॥ ग्रीषम ऋतु पंचाग्नी साधै ॥ बरषामें छाया नहिं बाधै ॥ सीस सकल जल धारास
है ॥ सीतकाल जल सायर रहैं ॥ ५ ॥ एसी भांतिकरै तप दुष्कर ॥ द्वंद्व न व्यापे ज्यों
जल पुष्कर ॥ अग्नि पक्व रितु पक्व फलादी ॥ भोजन लघु पवित्र अन्नादी ॥ ६ ॥ मूसल ऊषलके
पाषान ॥ केदंतनिसौं षोटै धान ॥ देह जीविका आपुहि आनै ॥ अधिक नग्रहै संच नहिं जानै
॥ ७ ॥ तिनहीं तिनसौं मौंकौं जजे ॥ और जज्ञ वनवासी तजे ॥ अग्निहोत्र अरु पूरणमास ॥
त्यौंहीं दरशरु चातुरमास ॥ ८ ॥ इन सबहिनकौं मम हित करै ॥ मोंबिन और हृदे नहिं धरै ॥
यौं तपकरि मोकों आराधे ॥ प्राणदेह इंद्रिय मन बाधे ॥ ९ ॥ यौं है सुद्ध लहै मम भक्ति ॥ और
त्रिगुन विस्तार विरक्ती ॥ यौं तबहीं मम चरणनि पावै ॥ केक्रम ब्रह्मलोक है आवै ॥ १० ॥
अरु जो एसें कष्टहि करै ॥ परि कामना हृदेमैं धरै ॥ ता सम मूरख दूजा नाहीं ॥ ताके वृथा
सकल श्रम जाहीं ॥ ११ ॥ यौं पंचोत्तर वरषनि पाछे ॥ ग्रहै सुद्ध संन्यासहि आछे ॥ सकल
क्रियाकों त्यागहि करै ॥ मनसौं मम सेवा अनुसरै ॥ १२ ॥ कर्मरचित सब लोकनि जानै ॥
तातैं छिन भंगुर करि मानै ॥ ताहींहुतें करे सबत्याग ॥ मन वच क्रमसौं हृढवैराग ॥ १३ ॥
वेदाविहिता विधि मोकों जजै ॥ ऋत्विजकौं सर्वस दै तजै ॥ जब कोई संन्यासहि करै ॥ तब
सुर बहुत विघ्न विस्तरै ॥ १४ ॥ परि यह विघ्न गणें कछु नाहीं ॥ मेरे चरणधरै उरमांहीं ॥ जो
कबहीं कछु वस्त्रहि राषै ॥ तो कोपिन और सब नाषै ॥ १५ ॥ दंड कमंडलु करमें धारै ॥ ज्यौं
मल त्यौं नहिं और विचारै ॥ देषि देषि धरणी पग धरै ॥ वस्त्रछानि चल पानहि करै ॥ १६ ॥
सत्यवंत बानीकों बोले ॥ हृदय विचार कदे नहिं डोले ॥ मौन धारि बानीको दंडे ॥ अरु का

याके कर्मनि षंडे ॥ १७ ॥ प्राणायाम मनहि बसकरै ॥ सब इंद्रिय अर्थनि परिहरै ॥ अरु ए चिन्ह नहीं जा मांहीं ॥ भेषहु धरे जतीसो नाहीं ॥ १८ ॥ भिक्षा करे सप्त घर विप्र ॥ औरहि कहूं गहै नहिं षिप्र ॥ सोऊ विप्र चतुर विध जेते ॥ जानी रहे विप्रकों तें ते ॥ १९ ॥ विप्र कहिजे दशहु प्रकार ॥ तिनको तुमसौं कहौं विचार ॥ देवविप्र ऋषिविप्रहि जानो ॥ विप्रविप्र अरु क्षत्रीमानौं ॥ २० ॥ वैश्य सूद्र अरु एक बिडाल ॥ पसु अरु म्लेछ विप्र चंडाल ॥ भिक्षा नित अरु पढे पढावै ॥ सकल अर्थ अरु तत्त्व बतावै ॥ २१ ॥ इंद्रिय जीतरु सील संतोष ॥ देवविप्र सो निर्गत रोष ॥ तप अरु सत्य न हिंसा करै ॥ दिनदिन षटकर्मानि अनुसरै ॥ २२ ॥ काल लोप कबहूं नहिं होई ॥ ऋषि ब्राह्मण कहिय तुहे सोई ॥ बिन हिंसा फलफूलनि ल्यावे ॥ तिनहींसौं देह वरतावै ॥ २३ ॥ वरषा सीत उष्ण सब सहे ॥ विप्र विप्र नित श्रद्धा गहे ॥ अश्वादिकनिकरै आरोह॥रणमें सूरत जेतन मोह ॥ २४ ॥ नीति सहित ठाने आरंभ॥क्षत्री विप्र हृदे नहिं दंभ ॥ जो उद्यम बानिजकौं करै॥पशु राषे षेती विस्तरै ॥२५॥ सो वह वैस्य ब्राह्मण कहियें ॥ तातें ले भिक्षा नहिं गहियें ॥ तेल लून घृत दूधरु लक्षा ॥ तिल अरु नील मही मधु मक्षा ॥ २६ ॥ इनकौं बनिज करतुहे जोई ॥ शूद्र विप्र कहिय तुहे सोई ॥ सब भूतनिके द्रोहहि करै ॥ सबके छिद्रनि देषत फिरै ॥ २७ ॥ प्रतिदिन हिंसासों अधिकार ॥ विप्र कहावे सो मंजार ॥ भक्ष अभक्ष अकारज कारज ॥ गम्य अगम्य न लषे अनारज ॥ २८॥ कृतघन सकल पशुनके लक्षण ॥ सो पशु ब्राह्मण कहें विचक्षण ॥ वापी कूप तलाव फुडावै ॥ वन बागादिक नास करावै ॥२९॥ संध्या अरु अस्नान न जानै ॥ एसो विप्र म्लेछ बखानै ॥ निंदक लोभी परधन हरे ॥ निरदय क्रूर पिशुनता

करे ॥ ३० ॥ सो चंडाल विप्र करि मानै ॥ ऐसैं दशविध विप्रानि जानै ॥ तातैं उत्तम भिक्षा करै औरे सकल दूरि परिहरै ॥ ३१ ॥ सात घरनितैं भिक्षा लावे ॥ ताहि करि संतोष उपावे ॥ सो ले जावे नदी तडाग ॥ तातैं कछूक करे विभाग ॥ ३२ ॥ कोई मांगे ताकों देई ॥ के जलमांहि प्रवाह करेई ॥ विचरै धरणी होइ निसंगा ॥ कदें कछु न संवारै अंगा ॥ ३३ ॥ तन मन इंद्रिय निग्रह करै ॥ मेरो रूप हृदेमैं धरै ॥ निशदिन रहे अतमाराम ॥ विषय सुखनिको सुने न नाम ॥ ३४ ॥ समदरसी अरु धीरजवंत ॥ सदा रहे निरभय एकंत ॥ मेरो भाव भयौ अतिसुद्ध ॥ परम विवेकी ज्यौं जलदूध ॥३५॥ आपुहि मोहि विचारे एक॥कदे न देषे भूलि अनेक ॥ आतम अंस ब्रह्मकौं जानौ ॥ बंधमुक्ति दोऊ भ्रम मानौ ॥ ३६ ॥ बंधन जब इंद्रिय वस होई ॥ मुक्ति इंद्रिय बंधे सोई ॥ ऐसैं जानी इंद्रिय जीते ॥ मोहि सुमरिते काल व्यतीते ॥ ३७ ॥ दुहूं लोकतें होइ विरक्ती ॥ तनहूं नहिं होवे आसक्ती ॥ पुर ग्रामादि आइ जो परै ॥ भिक्षा अर्थ प्रवेसहि करै ॥ ३८ ॥ देस पवित्र सैल बन सरिता ॥ वानप्रस्थ जहां आचरता ॥ तहां तहा नितहीं चलि जावै ॥ तिन आश्रमनी भिक्षा पावै ॥ ३९ ॥ तिनसों लहै सिलाकौ अन्न ॥ तातें होवे मनहि प्रसन्न ॥ ताहीतें निरमलता गहै ॥ उपजै ज्ञान सकल मल दहै ॥ ४०॥ इंद्रिय अर्थनि सत्य न देषे॥ छिन भंगुर सबन स्वर लेषे ॥ तातें सबतें ग्रहे विरक्ती॥ नहिं उद्यम न विषे आसक्ती ॥४१॥ यह सब अहंकार कृत जानै ॥ आतम विषे सुपन सम मानै ॥ कदैन हृदये चिंतवन करै ॥ मन वच कर्म दूरि परिहरै ॥ ४२ ॥ ऐसी विध जब उपजे ज्ञान ॥ होई विरक्त तजै सब आन ॥ मेरी भक्ति हृदेमें आवै॥ तब सब वर्णाश्रम छिटकावै ॥४३॥ विधि

निषेध दोउ भ्रम जानै ॥ वेदस्मृतिकी संकन मानै ॥ अतीबुद्धि बालक सम रहै ॥ विधि निषेध कछु कहे न गहै ॥ ४४ ॥ सब जाने परि जो उनमंत ॥ चेतनमय दीसे जडवंत ॥ पुष्पित बानी रतनहिं होई ॥ कबहूं बाद न ठाने सोई ॥ ४५ ॥ बाहिर मध्य एक सम रहै ॥ कबहूं कोइ पक्ष नहिं गहै ॥ ज्यौं ज्यौं कहे सुने त्यौं त्यौंहीं ॥ उत्तमता नहिं त्यागे क्यौं ही ॥४६॥ काहूतें उद्वेग न आनै ॥ अरु काहूके आपु न ठानै ॥ निंदा आदि सुने दुर बैन ॥ अंतरधरे निरंतर चैन॥ ४७ ॥ काहूंकों अपमान न करे ॥ मन वच कर्म मान बिस्तरे ॥ पशु समान वैरादि न जाने ॥ सकल विकार देहके भानै ॥ ४८ ॥ ज्यौं आतम अपने तन मांहीं ॥ सोई सबमें दूजा नाहीं ॥ ज्यौं बहु घटनि मांहि ससि एक ॥ घटनि संग जानियें अनेक ॥ ४९ ॥ तातें इष्ट अनिष्टहि करे ॥ सो सब आपुहिकों विस्तरे ॥ तातें आतम बुद्धिहि राषे ॥ भेद देह कृतसो सब नाषे ॥ ५० ॥ असमे समे भोजनहि आवे ॥ तोंहूं कछु नहिं मनमें ल्यावे ॥ करमचित सब देहनि जानै ॥ तिनहीतैं सब दुख सुख मानै ॥ ५१ ॥ ते सब सुखदुख कर्म सरीरा ॥ यों आतममें ज्यौं मृग नीरा ॥ केवल आहारहिं नहिं नाषै ॥ उद्यमहूं करि प्राणनि राषै ॥ ॥ ५२ ॥ प्राणनि राषें होइ विचारा ॥ लहे मोहि छूटे संसारा ॥ जो मेरी इच्छातें आवे ॥ उत्तम मध्यम जो कछु पावै ॥ ५३ ॥ यौंहि असन वस्त्रादिक चहै ॥ जेसो आवे तेसो गहै ॥ प्रिय अप्रियकी बुद्धि न आनै ॥ ए दोऊ मिथ्याकरि मानै ॥ ५४ ॥ कोई टेक न मनमें धरै ॥ मोबिन और सकल परिहरे ॥ सोच आचमन अरु अस्नाना ॥ और कछु आचर्णहि नाना ॥ ५५ ॥ ते कछु संकातें नहिं करै ॥ जो कछु सो इच्छा आचरै ॥ ज्यौं मेरे श्रुतिको भय नाहीं॥

दोऊ भ्रम जानतहों मांहीं ॥ ५६ ॥ परि तथापि कर्मनि आचरौं ॥ लोकनिके हित मनमैं धरौं ॥ त्यौं ज्ञानी विधि किंकर नाहीं ॥ विधिनिषेध भ्रम जानै मांहीं ॥ ५७ ॥ परि इच्छा अपनी आचरै ॥ लोकनिको हित मनमें धरै ॥ ताकौं भेद दृष्टि कछु नाहीं ॥ ज्ञानदृष्टि देखतहें मांहीं ॥ ५८ ॥ पूरव संसकारहे जौंलौं ॥ देहमांहि सो वरतैं तौंलौं ॥ बहुरो सो भवमें नहिं आवै ॥ मेरो निज निर्मल पद पावै ॥ ५९ ॥ अरु जाकों उपजे वैराग ॥ कऱ्यौ चहे या भवको त्याग ॥ परि मम भजन जुक्ति नहिं पावै ॥ सो सतगुरुकी सरणहि आवै ॥ ६० ॥ श्रमही बिना लहे सो जुक्ती ॥ पावै मोहि लहे भवमुक्ती ॥ गुरुकौं ब्रह्मरूप करि देषे ॥ मानव बुद्धि कदे कहिं लेषे ॥ ६१ ॥ श्रद्धा सहित असूया तजे ॥ मन वच कर्म निरंतर भजे ॥ ज्यौं लगि ब्रह्मविचारहि पावै ॥ त्यौं लगि गुरु तजि कहूं न जावै ॥ ६२ ॥ पीछैं ज्यौं जानैं त्यौं रहै ॥ परमहंसके धर्म निगहै ॥ परिजिन षट रिपु जीते नाहीं ॥ इंद्रिय अर्थ विचारत मांहीं ॥ ६३ ॥ चंचल बुद्धि न ज्ञान विराग ॥ ताको सकल वृथा हे त्याग ॥ भेषदिखाइ जीवका करे ॥ ताको दोष कह्यौ नहिं परे ॥ ६४ ॥ देवपितर ऋषि भूलिन नाषै ॥ तिनको रिण अपने सिर राषै ॥ अंतरगतिमें ताहि छि पावै ॥ आपहि वंचे बंध उपावै ॥ ६५ ॥ सो सुखकछु न लहे यालोक ॥ अरुयौं भ्रष्टहोइ परलोक ॥ एहैं वर्णाश्रमके धर्म ॥ इनतें भक्ति लहे देहिकर्म ॥ ६६ ॥ अब चाऱ्यौंके धर्म प्रधान ॥ न्यारे न्यारे करो बखान ॥ समरु अहिंसा संन्यासीको ॥ तप इज्या यह वनवासीको ॥ ६७ ॥ ग्रहमैं दया यजन यह कर्म ॥ द्विज आचारज सेवाधर्म ॥ ब्रह्मचर्य तप सौच संतोष ॥ सकल सुहृद कितहूं नहिं रोष ॥ ६८ ॥ मेरो भजन सकल मम कारण ॥ यही धर्म सबके साधारण ॥ ग्रही देइ

वनिता ऋतुदाना ॥ भूलि न गमन करै दिन आना ॥ ६९ ॥ याविधि अपनें अपनें धर्म ॥ मेरे हेत करै सब कर्म॥सबमें जाने मेरो भाव॥काहू पर नहिं धरै अभाव॥७०॥सोपावै मेरी दृढभक्ती ॥ और सकलतें करे विरक्ती ॥ तातैं उपजे मेरो ज्ञान ॥ देषे मोहि मिटै सब आन ॥ ७१ ॥ ऐसो व्है पावै ममरूप॥बहुरि न आवै या भवकूप॥ जेई सकल वर्ण अरु आश्रम ॥ तिनके एसें भाषे धर्म ॥ ७२ ॥ भक्ति सहित ए मोहि मिलावैं ॥ भक्ति विना भवसिंधु बहावैं ॥ ऐसो तत्त्व लहै सो तरै ॥ और सकल नित जन्मेमरै ॥ ७३ ॥ ॥ दोहा ॥ ए उद्धव तोसौं कह्यौ, वर्णाश्रमको धर्म ॥ यातें ममभक्ती लहै, छूटैं बंधन कर्म ॥ ७४ ॥ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणेएकादशस्कंधे श्रीभगवदुद्धवसंवादेअष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

दोहा ॥ ॥ पूर्वहि आश्रम धर्मतैं, निर्णय ज्ञान सुभाग ॥ उनविंशति अध्यायमैं, ज्ञानादिकतैं त्याग ॥ १ ॥ ज्ञान विज्ञानरु भक्तिहु, ताके लच्छन सार ॥ प्रष्णोत्तर पचतीसजू सामसु भलेप्रकार ॥ २ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ चौपाई ॥ उद्धव एहि वर्ण अरु आश्रम ॥ तिनके मैं भाषे सबधर्म ॥ इनमें रहि ममभक्ति उपावै ॥ तातैं मेरो ज्ञानहि पावै ॥ १ ॥ ज्ञानहि पाइ सकल भ्रमजानै ॥ वर्णाश्रम मिथ्या करि मानै ॥ सब साधन तजि मोकों ध्यावै ॥ और कछू हृदये नहिं ल्यावै ॥ २ ॥ ज्ञानीको मैंही हौं साधन ॥ अरु मेरो नितकरे अराधन ॥ मोहि करी मोकौं आराधै ॥ तन मन इंद्रिय मोसौं साधै ॥ ३ ॥ मोबिन स्वर्गादिक नहिं लेई ॥ मेरेहीं चर्णनि चितदेई ॥ मोबिन मुक्ति कदे नहिं गहै ॥ मोबिन सकल

वासना दहै ॥ ४ ॥ मोसों हितमें ताकौं प्रीय ॥ मोबिन और सकल अप्रीय ॥ जेहैं सहित ज्ञान विज्ञान ॥ तेही जानें मोहि सुजान ॥ ५ ॥ ज्ञानीतें मेरे प्रिय नाहीं ॥ सदा बसे मेरे मनमांहीं ॥ में ताको मेरौहै सोई ॥ दूजौ नहिं परसपर कोई॥६॥ जप तप तीरथ व्रत अरु दाना ॥ कहौं कहांलौं जेविधि नाना ॥ जेविधि करे नहीं फल एसो ॥ ज्ञान कलातें होवे जेसो॥ ७॥ तातें ज्ञान ह्रदेमें धारौ॥ औरे साधन सकल निवारौ ॥ सबमें रूप आपनौ जानौ ॥ मोहि जानि प्रभुसेवा ठानौ ॥ ८ ॥ ठहे करि सहित ज्ञान विज्ञान ॥ देषे सकल एक भगवान ॥ बहुरी मम निजरूप समावे ॥ जहां जाइ कबहूं नहिं आवै॥९॥जबहीं प्राणी ज्ञानहि पावे ॥ तबहीं मम निजरूप समावे ॥ ज्ञानविना नहिं पावै मोही ॥ यह निजमतो कहतहों तोही ॥ १० ॥ उद्धव तोमैं विविध विकारा ॥ जन्म मर्ण सुखदुःख अपारा ॥ ते समस्त या तनके जानौ ॥ सो तन माया भ्रमकरि मानौ ॥ ११ ॥ आपुहि सुद्ध निरंजन देषौ ॥ द्वैत अतीत एककरि लेषौ ॥ ए जे प्रगट सकल देहादी ॥ ते आतममेंहु ते न आदी ॥१२॥ अरु अंतहूं रहे कछु नाहीं ॥ अब अज्ञानहुतें बरताहीं ॥ ज्ञान दृष्टि कर बरते जबहीं ॥ त्रिगुण रहित आपु हेत बहीं ॥ १३ ॥ जैसैं रज्जुमांहि अति कहे ॥ आदि न हुतो अंत नहिं रहै ॥ भ्रमतें मध्य मंदमति मानै ॥ हेनाहीं परिहै सो जानै ॥ १४ ॥ त्यौं देहादि सकल भ्रमदेषौ ॥ आपुहि सदा ब्रह्ममय लेषौ ॥ एसो सुनि हरिजीसों ज्ञान ॥ उद्धव जन पूछ्यौ भगवान ॥ १५ ॥ उद्धव उवाच ॥ चौपाई ॥ हेप्रभु ज्ञान कृपाकरि कहो ॥ मेरे नाना भ्रमकौं दहो ॥ अरु त्यौंही भाषो विज्ञान ॥ भक्ति आपनी परम विधान ॥ १६ ॥ जाकौं चाहै सकल महंत ॥ जातें होइ जगतको अंत ॥ याबिन ज्ञान ध्यान कछु नाहीं ॥ साधन सकल

वृथाही जाहीं ॥ १७ ॥ याकौं पाइ मुक्तिनहिं लेवे ॥ और सुखनिपर दृष्टि न देवे ॥ एसी भक्ति क्रिपाकरि कहो ॥ अपने जनाहि और निर्वहो ॥ १८ ॥ यह भवसागर विकट अनंत ॥ जामैं भ्रमत न आवे अंत ॥ तापरि तपैं त्रिविध संताप ॥ तिनमैं परे आपहीं आप ॥ १९ ॥ तातैं जीव महादुष पावे ॥ सुखठानै सो दुखहुइ आवे ॥ तातैं दूजो रक्षक नाहीं ॥ मैं विचारि देख्यो मनमांहीं ॥ २० ॥ तुमरे चर्ण छत्रासिर धारै ॥ सो समस्त संताप निवारै ॥ ताकौं दसदिशि अमृत वर्षै ॥ ताके दरश और सब हर्षै ॥ २१ ॥ ज्यौं कोहू कंगालहि लीजैं ॥ ताके सीस छत्रधरि दीजैं ॥ सोऽहे भूप महीसुख पावै ॥ अरु औरनिकै दुःख मिटावै ॥ २२ ॥ त्यौं तुम चर्ण छत्रासिर धारै ॥ सो अपनैं सबदुःख निवारै ॥ सोभे तीनोलोकहि मांहीं ॥ ता सम और कहूं कोनाहीं ॥ २३ ॥ अरु जेताके सरणहि आवै ॥ ते ते सकल परम सुख पावै ॥ या भव कूपहि पर्‍यौ विहाल ॥ तापर डस्यो महा अहिकाल ॥ २४ ॥ तातैं विषय विषयि सुख जानै ॥ तिन निमित्त बहु उद्यम ठानै ॥ तातैं सदा अमित दुख पावै ॥ जाकौ कबहूं अंत न आवै ॥ २५ ॥ ताकौं कृपा पीयूष पिआवौ ॥ काढि कूपतें मृतक जिआवौ ॥ वचनामृतकी बरखा करौ ॥ अपनैं गुणनि बांधि उद्धरौ ॥ २६ ॥ तुमही जगतपिता जगस्वामी ॥ जगपालक जगअंतरजामी ॥ एसैं बचन सुने भगवान ॥ तब उद्धवसौं भाष्यौ ज्ञान ॥ २७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ उद्धव प्रश्नकरी तुम जोई ॥ धर्म पुत्रकी नीती सोई ॥ सर सज्यामैं भीषम परे ॥ हमरे सुनत उच्चरे ॥ २८ ॥ तेई अबमें तुमहि सुनाऊं ॥ भक्ति ज्ञान विज्ञान वताऊं ॥ प्रकृतिपुरुष महतत हंकार ॥ शब्दादिक जे पंच प्रकार ॥ २९ ॥ त्रय गुण अरु इंद्रिय दश एका ॥ पंचभूत मिलि भए

अनेका ॥ थावर जंगम विविध प्रकारा ॥ इन अठ्ठाइसको विस्तारा ॥ ३० ॥ इन विन और कहूं कछु नाहीं ॥ एकदृष्टि देखे सबमांहीं ॥ जाकरि सकल एकही जानै ॥ ताकों साधू ज्ञान बखानै ॥ ३१ ॥ अरु जब एह अठाइस तत्त्व ॥ माया जाने सकल अतत्त्व ॥ आतम ब्रह्म एक करि जानै ॥ देहादिक सब मिथ्या मानै ॥ ३२ ॥ रज्जु जानि ज्यौं सर्प निवारै ॥ त्यौं समस्त मम रूप निवारै ॥ जैसें दिसा मोह मिटजावै ॥ आठोदिसकी खबरहि पावै ॥ ३३ ॥ करत निरंतर ज्ञान विचारा ॥ देखे ब्रह्म मिटै विस्तारा ॥ ताकौं कहिय तुहै विज्ञान ॥ जातें लहै मोहि तजि आन ॥ ३४ ॥ आदिहु तो जो रहिए अंत ॥ सोईहै अबहूं बरतंत ॥ वरणाकार प्रगटहैं जैंते ॥ आदिरु अंत नहींहैं ते ते ॥ ३५ ॥ तातैं अबहूं मिथ्यां देखै ॥ तिहूंकाल मोहीकौं लेखै ॥ जेसें तिहूंकालमें धरणी ॥ घट नामादिक मिथ्याकरणी ॥ ३६ ॥ श्रुतिकौ मतौ हृदेमें आनै ॥ नेति नेति श्रुति सदा बखानै ॥ नामाकार वेद भ्रमभाषै ॥ ब्रह्मसत्य दूजो सब नाखै ॥ ३७ ॥ सकल घटनिमैं एक बतावै ॥ ऊंचनीच सब भेद मिटावै ॥ एसी भांति विचारै वेद ॥ जानै मोहि मिटावे भेद ॥ ३८ ॥ अरु त्यौंही प्रगट सबलेखै ॥ सप्तधातुकै सब तनदेखै ॥ देखै सब उपजत विनसंत ॥ योंही प्रतक्ष विचारे संत ॥३०॥ अरु सतपुरुष भएहैं जे ते ॥ तिनकै बचन विचारै ते ते ॥ ॥ एकहि मतो सबनिकौ देखै ॥ जाने मोहि भेद भ्रमलेखै ॥ ४० ॥ अरु त्यौं अनुभव हृदय विचारै ॥ चेतन राषि अचेतन टारै ॥ सबदेखै चेतन आधारा ॥ इंद्रिय देह विविध विस्तारा ॥ ४१ ॥ चेतनतें जड अर्थनि गहैं ॥ चेतन विना कोइ नहिं रहैं ॥ यौं वेदांत तथा दृष्टांत ॥ अनुभव अरु त्यौंही सिद्धांत ॥ ४२ ॥ इन चारहुको मतो विचारै ॥ मोहि जानि सब भेद निवारै ॥

सकल दृस्यतें होइ विरक्ती ॥ चेतन ब्रह्मसदा अनुरक्ती ॥ ४३ ॥ कर्मरचित सब मिथ्यामानै ॥ ब्रह्मलोकलौं न ईश्वरजानै ॥ देष्यौ सुन्यौ हृदेमें आवै ॥ सो सब बंधन जानि बहावै ॥ ४४ ॥ मेरी भक्ति हृदेमें धरै ॥ जिनतैं भक्तिहोइ ते करै ॥ भक्तरु भक्ति हेतहैं जे ते ॥ तुमसौं पीछैं भाषे ते ते ॥ ४५ ॥ अब बहुरो तव हेत विचारौं ॥ भक्त भक्ति साधन उचारौं ॥ मेरी कथा सुने अरु कहै ॥ प्रीति सहित उर अंतर गहै ॥ ४६ ॥ पूजामें अतिनिष्ठा धारैं ॥ बहुत भांति अस्तुति बिस्तारै ॥ वंदनकरै प्रदक्षिणा देई ॥ अरु अष्टांग प्रणाम करेई ॥ ४७ ॥ सब भूतनमैं मोकौं जानै ॥ परि मम जन मेरो तन मानै ॥ मम भक्तिनिकौं बहुविधि सेवै ॥ तन मन धन तिनहीकौं देवै ॥ ४८ ॥ मेरे हेत करे जो करै ॥ मोबिन और सकल परिहरै ॥ मे रे गुणनि कहै उर धारै ॥ दूजि कामना सकल निवारै ॥ ४९ ॥ मे रे अर्थ अर्थ सबत्यागे॥सुख अरु भोगनितैं वैरागे ॥ जप तप जोग जज्ञ व्रत दाना ॥ सयनासन भोजन जलपाना ॥ ५० ॥ इत्यादिक सब ममहित करै ॥ यातैं अंतर सब परिहरै ॥ सदा आपुकौं मोहि निवेदै ॥ प्रेम शस्त्र उर ग्रंथिहि भेदै ॥ ५१ ॥ ऐसैं जब ममभक्तिहि लहै ॥ तब अवसेष कछू नहिं रहै ॥ साधन साध्य लहै सो सकल ॥ काल कर्मतें होवे अकल ॥ ५२ ॥ जब मोविषे चित्तकौं धारै ॥ तब ह्वै सातिक रज तम टारै ॥ धर्मैश्वर्य ज्ञान वैराग ॥ इनकौं सहज लहै बडभाग ॥ ५३ ॥ अरु जो मेरी भक्ति न पावै ॥ देह गेहसौं चित्त लगावै ॥ तब होवै रज तम अधिकारा ॥ बढै अधर्म परै संसारा ॥ ५४ ॥ बंध मुक्तिकौं चितहै कारण ॥ बो रे चित्त चित्तहै तारण॥मोमें धारै मोकौं लहै ॥ भवमैं धारै भवमैं वहै ॥५५॥ तातैं धर्म ज्ञान वैराग ॥ ईश्वरता आदिक जेभाग ॥ ते समस्त मे रे आधीन ॥ तातें होवे ममले

लीन ॥ ५६ ॥ सेवत मोहि सकल ए पावै ॥ मोबिन कोई निकट न आवै ॥ मेरी भक्ति कहावै धर्म ॥ उद्धव दूजो सकल अधर्म ॥ ५७ ॥ एक ब्रह्म दरसन सो ज्ञान ॥ याबिन और सकल अज्ञान॥अरु उद्धव सोहै वैराग॥ जो समस्त विषयनिको त्याग ॥५८॥ अरु ऐश्वर्य सिद्धि अणिमादी ॥ मम सेवककी सेवक आदी ॥ तातैं जे मम सरणहि आवै ॥ तेई भुक्ति मुक्ति सुखपावै

दोहा ॥ ऐसैं अद्भुत बैन जब, कहे कृपाकरि कृष्ण ॥ तब उद्धव जन हरषि करि, कीनो हरिसौ प्रष्ण ॥ ६० ॥ ॥ उद्धव उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ हेप्रभु पूरण कृपा व करौं ॥ ज्यौंहै त्यौं बहुविधि विस्तरौ ॥ जो तुम धर्म भक्ति कृत भाष्यौ ॥ ब्रह्म दृष्टिकौं ज्ञानहि राख्यौ ॥ ६१ ॥ अब वैरागादिक समुझावो ॥ मेरे सब संदेह मिटावो ॥ जोहैं सकल तत्त्वसो भाषौ ॥ होई अतत्त्व दूरि करि नाषौ ॥ ६२ ॥ यम कहिये सो केइ प्रकारा॥ अरु त्यौं कहो नियम विस्तारा ॥ अरु सम कौन कौन दम देवा ॥ कौन क्षमा अरु धृतिको भेवा ॥ ६३ ॥ कौन सूरता तप अरु दान ॥ कौन सत्यको ऋतहि बषान ॥ कौन त्याग कौन धन इष्ट ॥ कौन जज्ञ दक्षिणा वरिष्ट ॥ ६४ ॥बल अरु भगको लाभरु सुखं ॥ विद्या लज्जा सोभा दुःख ॥ पंडित मूरख पंथ कुपंथ ॥ स्वर्ग नरक बंधु ग्रह ग्रंथ ॥ ६५ ॥ कौन दरिद्र कौन धनवंत॥कोन कृपन कोई स्वरवंत ॥ अरु इनतैं उलटेहैं जे ते ॥ असम अदम आदिकहैं ते ते॥६६॥ मोसौं देव कृपाकरि भाषौ ॥ राखौ तत्त्व अतत्त्वहि नाषौ ॥ यौं सुनि बहु उद्धवके प्रष्ण ॥ तबहि कृपाकरि बोले कृष्ण ॥ ६७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ चौपाई ॥ हिंसा रहित सत्य अस्तेय ॥ संग विवर्जित सबको हेय ॥ लज्जा मौनरु आस्तिक धीर ॥ ब्रह्मचर्य अरु क्षमा गंभीर ॥ ६८ ॥ ए

द्वादश यम गहै निवर्ती ॥ अरु त्यौं द्वादशनियम प्रवर्ती ॥ सौचरु कपट रहित धरमादर ॥ जप तप अरु दम पूजा सादर ॥ ६९ ॥ तीरथ अटन अतिथिकौं पोष ॥ गुरुसेवा अरु दृढ संतोष ॥ परउपकार होम विस्तारै ॥ भुक्ति मुक्ति चाहै सो धारै ॥ ७० ॥ सम जो मोमें निष्ठाबुद्धी ॥ दम इंद्रिय निग्रह मन शुद्धी ॥ जो दुखनी उपजावै कोई ॥ तिनतैं जाकै दुःख न होई ॥ ७१ ॥ सकल सहै कछु मन नहिं आनै ॥ ताकौं मम जन क्षमा बखानै ॥ जिभ्या इंद्रिय चंचल होई ॥ तिन दोनोकौं त्यागे सोई ॥ ७२ ॥ रस अरु अबलाकौं नहि गहै ॥ ताकौं मम जन धृतिहि कहै ॥ भूतद्रोह त्याग सो दान ॥ भोग तजनसौं तप नहिं आन॥७३॥ सोइ सूर जो जिते स्वभाव ॥ सोई सत्य सकल मम भाव ॥ मोकौं लिये बचन सो सत्य ॥ मोबिन बोले सकल असत्य ॥ ७४ ॥ कर्मनिमें जो होइ असंग ॥ सो वह परमसौ चहै अंग ॥ सोहै त्याग तजै फल कर्म ॥ सो धन इष्ट परम मम धर्म ॥ ७५ ॥ यज्ञ रूपमें हौं नहिं आन ॥ सो दक्षिणा देइ मम ज्ञान ॥ प्राणायाम परम बल कहियें ॥ जाकरि बडो शत्रु मन गहियें॥७६॥ मम ऐश्वर्य भाग्य जो पावै ॥ चेतन निजानंद ह्वै आवै ॥ मेरी भक्ति एक इहलाभ ॥ भक्ति विना सो सकल अलाभ ॥ ७७ ॥ जातें भेद मिटे सो विद्या ॥ उद्धव दूजी सकल अविद्या ॥ लज्जा मानि अकर्म न गहे ॥ मम जनताकौं लज्जा कहे ॥ ७८ ॥ निहकिंचन निरपेक्ष न लोभा इत्यादिक जे गुणते सोभा ॥ सो सुष जो सुखदुःख अतीत ॥ पुन्य न पाप उष्ण नहिं सीत ॥ ॥ ७९ ॥ विषयनकी इच्छा दुख जानौ ॥ गुणसंपन्न आढ्यसो मानौ ॥ बंध मुक्तकी युक्तिहि जानै ॥ मम जन पंडित ताहि बखानै ॥ ८० ॥ अहंकार जाके जग आदी ॥ अपने कहे देह

गेहादी ॥ सो समस्त मूरखही जानौ ॥ यातें और भांति मतिमानौ ॥ ८१ ॥ जाकरि मोहि लहै सोपंथ ॥ जो प्रवृत्ति सो सकल कुपंथ ॥ नित संतोषी सीतल हृदय ॥ सात्विक चित्त सबनि पर सुहृदय ॥ ८२ ॥ सोइ स्वर्ग जो सुखभंडार ॥ नरकनिमैं तामस अधिकार ॥ सतगुरु एक बंधुकरि जानौ ॥ और सकल वैरी करि मानौ ॥८३॥ सतगुरु हैं सो मेरो रूप ॥ जातें जीव तजैं ग्रहकूप ॥ सतगुरु बिना बंधु नहिं कोई ॥ सतगुरु विन सब वैरी होई ॥ ८४ ॥ मानव तन सोई ग्रह कहियैं ॥ ताकें ग्रहै ग्रही ह्वै रहियैं ॥ सो दरिद्र जो तृष्णावंत ॥ कृपण इंद्रियनि बस बरतंत ॥ ८५ ॥ विषयनि अनाशक्त सो ईस ॥ विषयनि वसते सकल अनीस ॥ इतनी प्रष्णकही मैं तोसौं ॥ जा जा विधि तुम पूछी मोसौं ॥ ८६ ॥ विधिनिषेधकै लक्षण जेसैं ॥ महापुरुष जानतहै तेसैं ॥ विधिनिषेधकौं जोलौं जानै ॥ ऊंच नीच बहुभेदनि मानै ॥ ८७ ॥ सो यह सकल निषेधहि जानौ ॥ भेद दृष्टिमें विधि मतिमानौ ॥ विधि निषेध निषेधहि देषौ ॥ दुहुतैं परैं तांहि विधि लेषौ ॥ ८८ ॥ विधि निषेध पसु मानव मानै ॥ पंडित कदे हृदै नहिं आनै ॥ तातैं विधि निषेध भ्रम जानौ ॥ मेरो रूप सकल करि मानौ ॥ ८९ ॥ ॥ दोहा ॥ ॥ विधि निषेध भ्रम जाननौ, ज्ञान कह्यौ जब कृष्ण ॥ बेदवचनं तब सुमरि करि, उद्धव कीनी प्रष्ण ॥ ९० ॥ ॥ इतिश्रीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधेश्रीभगवदुद्धवसंवादेभाषायांएकोनविंशतितमोध्यायः ॥ १९ ॥

दोहा ॥ कहत बीसमैं ध्यायमैं, भक्ति क्रियात्मक ज्ञान ॥ अधिकारीहु विभा

गतैं सुलभ योग त्रय जान ॥ १ ॥ उद्धव उवाच ॥ चौपाई ॥ हेप्रभुजी तुम करुणा करो ॥ मेरो यह संसे परिहरो ॥ तुमरी आज्ञा कहियें वेद ॥ ताहीमें दीसतुहै भेद ॥ १ ॥ विधि निषेध सो वेद बखानै ॥ ताहीतें सबको कोई मानै ॥ तुमरी आज्ञा क्यौं भ्रम लेषे ॥ जातें विधि निषेध नहिं देखे ॥ २ ॥ अरु यह प्रगटहि दीसैं देव ॥ विधिनिषेधके बहुविधि भेव ॥ प्रगटहि विधि वर्ण अरु आश्रम ॥ तिनके विधि भांति विधि कर्म ॥ ३ ॥ तिनके प्रगटहि फल स्वर्गादी ॥ अब कोनहिं यह पंथ अनादी ॥ अरु निषेध प्रगटहि प्रतिलोम ॥ अंबष्ठादिक जे अनुलोम ॥ ४ ॥ वर्णनिमें शंकरहि जे ते ॥ अरु तिनहिके कर्म पुनि ते ते ॥ तिनके प्रगटहि फल नरकादि ॥ कहैहु ते फल जाइ न बादी ॥ ५ ॥ जाके फलहि वेद ज्यौं कहै ॥ ताकौं करि नर त्यौंही लहै ॥ अरु त्यौं द्रव्य देस वय काल ॥ प्रगटहि विधि निषेध गोपाल ॥ ६ ॥ अरु जो विधि निषेध नहिं सत्य ॥ तो सुख दुख अरु फलहि असत्य ॥ कोई स्वर्ग नरक नहिं जावे ॥ तो बहुश्रम करि विधि न करावे ॥ ७ ॥ अरु काकहियैं वारंवारा ॥ तुमरे वचन अनेक प्रकारा ॥ यह तो कह्यौ तुमारे वेद ॥ जातें विधिनिषेध भेदके ॥ ८ ॥ देव पितर मुनि मानव जे ते ॥ वेद नयन देखतहैं ते ते ॥ विधिनिषेध तिनके फल जानैं ॥ अरु त्यौंही त्यौं तेऊ ठानैं ॥ ९ ॥ सकल तुमारी आज्ञा मांहीं ॥ ज्यौं ज्यौं थापे त्यौं वरताहीं ॥ सोमिथ्या क्यौं कहियै वेद ॥ याकौं मोहि बतावो भेद ॥ १० ॥ द्वै विधि बचन बढै संदेह ॥ वेहैं सत्य किधौं प्रभु एह ॥ यह पूरण संदेह मिटावो ॥ एक भांतिके वचन सुनावो ॥ ११ ॥ या विधि परम ज्ञान विस्तारो अपनें रचे जीव निस्तारो ॥ सुनि उद्धवकी ऐसी बानी ॥ तब बोले श्रीसारंगपानी ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ उद्धव परम ज्ञान अब कहौं ॥ तेरें सब संदेहहि दहौं ॥ मैं भाषेहैं तीन उपाई ॥ कर्मरु भक्ति ज्ञान समुझाई ॥ १३ ॥ ज्यौं जाकौ देष्यो अधिकार ॥ ताकौ तेसो कियो बिचार ॥ जोभाषौं सबहिन सों ज्ञान ॥ तो ते विष इतजैं नहिंआन ॥ १४ ॥ तातैं कर्म अकर्म छुडाऊं ॥ लेकरि ज्ञान मध्य ठहराऊं ॥ तातैं वचन सकल मम सत्य ॥ विधिनिषेधसो नहीं असत्य ॥ १५ ॥ परिए सकल ज्ञानके कारण ॥ ज्ञान लहेतें सकल निवारण ॥ ए तुम सेदि ब्रह्मकी जानौ॥ तातैं कछु संदेह न आनौ॥१६॥जिन भव सुख ज्यौंहे त्यौं जान्यौ ॥ ब्रह्मलोकलौं नस्वर मान्यौ ॥ तातैं तिनकै उद्यम दहै ॥ और सकल तजि थिर ह्वै रहै ॥ १७ ॥ तिनकों ज्ञान जोग अधिकार ॥ थिर ह्वै करनो ब्रह्मविचार ॥ अरु जिन विषयनि सुष नहिं जानै ॥ अरु तिनके उद्यम नहिं भानै ॥ १८ ॥ परि मम गुणनि सुनी सुखमानै ॥ मेरो भजन भलौं करि जानै ॥ ताकों भक्ति जोग हितकारी ॥ ऐसैं जानै तत्त्व विचारी ॥ १९ ॥ अरुजे विषयनिके आधीन॥तिनके उद्यमसौंलौं लीन॥ कथा सुननको नहिं अवकास॥अरु मम प्रीति नहीं अभ्यास ॥ २० ॥ तिनकों कर्म जोग सुखदाई ॥ इनतें औरन श्रेय उपाई ॥ ए तीनौं भाषतहौं तोसौं ॥ निश्चल चित ह्वै सुनियो मोसौं॥२१॥प्रथमहि कर्म जोग विस्तारौं॥विषयी जीवनिकौं निस्तारौं॥ मेरे बहुविधि गुण विस्तारा॥कथाप्रसंगहि विविध प्रकारा॥२२॥तिनमैं प्रीति न उपजै तौंलौं॥मम जन संगकरै नहिं जौंलौं॥ अरु जौंलौं न बढै वैराग ॥ विषयनिकौ नहिं होवै त्याग ॥ २३ ॥ तोलौं कर्म जोग नहिं तजै ॥ कर्मनि करि नित मोकौं भजै ॥ अपने धर्म मांहिंथितिरहै ॥ कबहूं भूलि निषेध न गहै ॥ २४ ॥ यज्ञ महोत्सव बहुविधि करै ॥ सकल कर्म मम हित विस्तरै ॥ मनतें

इच्छा सकल मिटावै ॥ सो नर स्वर्ग नरक नहिं जावै ॥ २५ ॥ ऐसैं ज्ञान भक्तिकौं लहै ॥ तातैं कर्म काल सबदहै ॥ उद्धव यह मानव तन ऐसौ ॥ सकल सृष्टिमांहीं नहिं जैसौ ॥ २६ ॥ स्वर्ग नरकके वछैं जाकौं ॥ परिक्यौंही नहिं पावैं ताकौं ॥ ज्ञान भक्ति यातन करि लहै ॥ और सबनि करि भव जल वहै ॥ २७ ॥ जो एसो मानव तन पावै ॥ ॥ सो समस्त कामना मिटावै ॥ तजै निषेध सकलही कर्म ॥ अरु कामना हेत जे धर्म ॥ २८ ॥ अरु फिरि नहिं वंछे नर देहा ॥ परम रतन नहिं षोवे एहा ॥ जद्यपि बहुरो नर तन पावै ॥ परिज्ञानादिक कछु न रहावै ॥ २९ ॥ मातपिता भाई कुललोग ॥ ज्ञान मिटावैं करि संयोग ॥ खान पान आदिक बहु साधैं ॥ बालपन सौं ताकों बाधैं ॥ ३० ॥ तातैं ज्यौं लगि नाहीं मरे ॥ त्यौं लगि जतन निरंतर करे ॥ या तनकौं मिथ्या करि जानौ ॥ अरु सो ब्रह्मदानि करि मानौ ॥ ३१ ॥ तातैं जतन निरंतर करैं ॥ सावधानता हिरदै धरै ॥ या तनमैं आशक्त न होई ॥ करे उपाय मुक्तिको सोई ॥ ३२ ॥ ज्यौं पंषी तरु वासा करै ॥ तामैं तीति मान मन धरै ॥ अरु ता वृक्षहि काटे कोई ॥ जिनके हृदे दया नहिं होई ॥ ३३ ॥ वृक्ष संग जो पंषी परै ॥ तो तिनके वस व्है करि मरै ॥ परिसो प्रथम वृक्षहि त्यागे ॥ काटत देषि आप उठिभागे ॥ ३४ ॥ आपुहि ऐसी भांति बचावै ॥ पीछे तहां रहै जहँ भावै ॥ त्यौंही नर तन तरु आधारा ॥ आतम पंषी किय आगारा ॥ ३५ ॥ ताकौं निशदिन करे प्रहार ॥ सदा निरंतर वारंवार ॥ ऐसो देषि धरैं तन त्रास ॥ प्रथमहि त्यागैं तरुको वास ॥ ॥ ३६ ॥ मोमें आइ बसेरा करै ॥ तातैं बहुरि न जन्मे मरै ॥ मानव तन भवसागर नावा ॥ मेरि कृपाहूतें यह पावा ॥ ३७ ॥ जामें गुरु षेवट सुखदाई ॥ सानुकूलमैं पवन सहाई ॥ तोहूं

आपुहिं जो नहिं तारे ॥ नाव छोडि भवसागर डारे ॥ ३८ ॥ ताकौं आतम घाती मानौ ॥ दूजो आतम घाति न जानौ ॥ अरु जो भवतें होइ विरक्ती ॥ दुखमय जानिनहो वैरक्ती ॥ ३९ ॥ सो समस्त इंद्रिय वस करे ॥ मन निश्चल करि मोमैं धरे ॥ जो मन धारत अचल न होई ॥ तोहूं आतुर होई न कोई ॥ ४० ॥ एकहि वार न सकल निवारै ॥ क्रम क्रम सकल उपाधिहि टारै ॥ कछु इक आसा पूरे मनकी ॥ हृदये राषै मूलषननकी ॥४१॥ देवै सो तजवेके हेत ॥ सावधान नित रहे सुचेत ॥ आगे फलकी अवधि बतावै॥दोष दिषाइ विरक्ति उपावै ॥ ४२ ॥ ऐसें क्रमहि क्रम मनं डारै ॥ क्रम क्रम सकल विकार निवारै ॥ इंद्रिय गुण हृदये नहिं आनै ॥ स्वास जीति मनकी गतिभानै ॥ ४३ ॥ मन जीतनकौं परम उपाई ॥ जातैं मन गति जानी जाई॥ जेसैं अवस तुरंगहि होई ॥ अस्ववार वस होइ न सोई ॥ ४३ ॥ तब तापर चढिकरि अस्वार ॥ हठ नहिं करै एकही वार ॥ कछु हयकौं रुष सहित चलावै ॥ पीछें दे चाबुक दोरावै ॥ ४५ ॥ ऐसी विधि याकौं बसकरै ॥ त्यौं जोगी क्रम क्रम मन धरै ॥ सांख्य विचार निरंतर करै॥ या विधि यह जग जन्मेमरै ॥ ४६ ॥ तत्त्वनकी उत्पत्तिं विचारै ॥ ज्यौं ज्यौं बिनसे त्यौं मन धारै ॥ सकल उपाधि उरेकी देषै ॥ आपुहि परे सकलतें लेषै ॥ ४७ ॥ याविधि जों लगि मन बस होई ॥ तों लगि करै विचारहि सोई ॥ ऐसी विध जब सांख्य विचारै ॥ गुरुके वचन हृदयमें धारे ॥ ४८ ॥ तब सबहीतें होई विरक्ती ॥ मन मोंमें होवे अनुरक्ती ॥ जोग पंथजे अष्टप्रकारा ॥ अरु यह आतम देह विचारा ॥ ४९ ॥ अरु मम श्रवन कीरतन ध्यान ॥ मन जीतनकौ पंथन आन ॥ जोगरु भक्ति सांख्य ए तीन ॥ सब ग्रंथनिमें लीने बीन ॥ ५० ॥ इनतें चोथो

नहीं उपाई ॥ तातैं मन मोंमें ठहराई ॥ तातैं चोथे कछु नहिं करणौ ॥ इन पंथनि मोंकौं अनुसरणौ ॥ ५१ ॥ अरु जो कदे पाप ह्वै आवै ॥ सावधान ता उर न रहावै ॥ तोहूं और न करै उपाई ॥ सो सो पाप इनहितैं जाई ॥ ५२ ॥ और करै नानाविधि जोई ॥ सो सो अधिक अधिक मल होई ॥ विधिनिषेध सबहीं मल जानौ ॥ कबहूं कछु उत्तम मतिमानौ ॥ ५३ ॥ विधिनिषेध ए कीने दोई ॥ जातैं बंधरहैं सबकोई ॥ भयतैं बहु आरंभनि करैं ॥ अपनैं आपनैं विधि आचरैं ॥ ता पीछे सब बंध जनाऊं ॥ करौं अबंध सकल छोडाऊं ॥ सकल न त्यागे एकहि वारा ॥ तातैं कीनै बहुत प्रकारा ॥ ५५ ॥ तातैं विधिषेध नहिं करणा ॥ सकल त्यागि मोंमें मन धरणा ॥ विधिनिषेध जन मिथ्या जानै ॥ अरु भव सुख सब दुखकरि मानै ॥ ५६ ॥ परि समरथ तजिवेंकों नाहीं ॥ प्रबल ज्ञान प्रगटयो नहिं मांहीं ॥ ताकौं भक्ति जोंग अधिकार ॥ सहजैं छूटैं सकल विकार ॥ ५७ ॥ मेरी कथा निरंतर सुनै ॥ हृदय मांहि मेरे गुन गुनै ॥ दृढ विश्वास हृदेमैं राषै ॥ मेरे गुण नामाहि नित भाषै ॥ ५८ ॥ यों जद्यपि विषयनिमैं रहै ॥ परि मन वच क्रम त्यागहि चहै ॥ सो नित भक्ति जोगसों भजै ॥ मोविच अंतराय सब तजै ॥ ५९ ॥ तंत्रपंथ पूजा विस्तरै ॥ ममहित जो कछु सो सब करै ॥ याविधि सकल वासना नासै ॥ मेरो रूपहि हृदय प्रकासै ॥ ६० ॥ तातैं ब्रह्मरूप करि जानैं ॥ द्वैतभाव मिथ्या करि मानै ॥ संसय कर्म भर्म सब भागै ॥ अहंकार तजि सोवत जागै ॥ ६१ ॥ जहां तहां मोहीकौं देखै ॥ मोबिन और कछू नहिं लेखै ॥ ऐसो ह्वै ममरूप समावै ॥ याही जन्म और नहिं पावै ॥ ६२ ॥ तातैं जाकौ मेरी भक्ती ॥ निशदिन ममचरणनि अनुरक्ती ॥ तातैं जद्यपिनाहीं ज्ञान ॥ अरु नाहीं

वैरागनिदान ॥ ६३ ॥ तोहूं सो मोकौं अनुसरै ॥ अति दुस्तर भवसागर तरै ॥ वर्णाश्रमके धर्मनि करै ॥ बहुत भांति तपकौं आचरै ॥ ६४ ॥ निशदिन सांख्यहि ज्ञान विचारै ॥ गहि वैराग सकल अघजारै ॥ साधे जोगहि अष्ट प्रकारा ॥ दान वृतादिक बहु विस्तारा ॥ ६५ ॥ ए सब आपुहितें चलि आवे ॥ मम जनके आधीन रहावे ॥ मेरीभक्ति सकल सिरताजा ॥ जैसें सकल नरनिमें राजा ॥ ६६ ॥ भुक्ति मुक्ति पल नहिं परिहरै ॥ मम जनकी नित सेवा करै ॥ अरु में जद्यपि बहुविधि कहौं ॥ भुक्ति मुक्ति कछु दीनी चहौं ॥ ६७ ॥ परि मेरौ निजजन नहिं लेवै ॥ सकल त्यागि ममचरणनि सेवै ॥ निरपेक्षता परमहै श्रेय ॥ मोबिन सकल वस्तुकौ हेय ॥६८॥निस्पृहता यह सुखहि अपार॥जहां न काल कर्म अधिकार॥ में निस्पृह निस्पृह जो होई॥ मेरो भक्त कहींजैं सोई ॥ ६९ ॥ मेरेशम लक्षणहैं जामैं ॥ मेरे रूप जानिये तामैं ॥ सबतें निस्पृह नित ममभक्त ॥ में निस्पृह तासौं अनुरक्त ॥७०॥ तातें निस्पृहता सुख ऐसौं ॥ सकल विस्वमें नाहीं जैसौ ॥ निस्पृह जन मेरो सुख पावै ॥ स्पृहावंतके निकट न आवै ॥ ७१ ॥ जे एकांत भक्तहैं मेरे ॥ तिनके पुन्य पाप नहिं नेरे ॥ रागद्वेष वर्जित सम दरसै ॥ त्रिगुणातीत ब्रह्मकौं परसै॥७२॥जोगरु भक्ति सांख्य ए तीन॥तीनौ एकै कहैं प्रवीन॥इनकौं पाई मोंकौं पावै॥ए बिन पाइ न मोंमें आवै ॥ ७३ ॥ ए साधनहें तीनौं नीकै ॥ इन बिन और न तारक जीकै ॥ ए साधनहें मेरो रूप ॥ इनतें तत्त्व न और अनूप ॥ ७४ ॥ मेरो गोप्य रहस्यहि जोग ॥ जीव ब्रह्मकौ क्षिप्र संजोग ॥ छूटै सकल अविद्या भोग ॥ काल जाल नहिं संसै रोग ॥ ७५ ॥ ऐसें तीन पंथ विस्तारै ॥ इन करि बहुत जीव निस्तारै ॥ जेइ जे जन इनमें आवै ॥ तेइ ते मेरो

पदपावै ॥ ७६ ॥ दोहा ॥ जे इन पंथनिकौं तजै, करे कर्म अविकार ॥ तिन पशु जीवनिकौ कहै, विधिनिषेध विस्तार ॥ ७७ ॥ इति श्रीभागवतेमहापुराणे एकादशस्कंधे श्रीभगवदुद्धवसंवादेभाषायांविंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

दोहा ॥ ॥ श्रीधर श्रीलक्ष्मीनृसिंह परानंद संदोह ॥ तिनकी कृपाकटाक्षतै दुर होत मन मोह ॥ १ ॥ ज्ञान क्रिया हरिभक्तिमैं जिनकौं नहिं संतोष ॥ तिन काम्यौंके हित कहै, द्रव्य देश गुण दोष ॥ २ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ चौपाई ॥ ज्ञान भक्ति अरु कर्म उपाई ॥ आप मिलनकौं दिए बताई ॥ परिजे अतिहीं पशु अज्ञान ॥ इनकौं छोडिकैरे कछु आन ॥ १ ॥ बहुत कामना हृदये धरै ॥ तिन हित बहुकर्मनि विस्तरै ॥ ते पशुदुःख निरंतर पावै ॥ भव प्रवाह मांहि बहि जावै ॥ २ ॥ तिन हित विधिनिषेध उच्चारै ॥ तिनकै बहु आरंभ निवारै ॥ अपनौंहूं अपनौ अधिकार ॥ तामें वरतें तजि विस्तार ॥ ३ ऊंचौ नीचौ सब परिहरै ॥ अपने कर्म मांहि अनुसरै ॥ सो सो तिन तिनकौं विधि जानौ ॥ तातैं और निषेधहि मानौ ॥ ४ ॥ ए कछु वस्तु बुद्धि मति देखौ ॥ पशुजीवनकौं बंधन लेखौ ॥ उपजी वस्तु समस्त असुद्ध ॥ परि कहि भाषै सुद्ध असुद्ध ॥ ५ ॥ कर्म सकल छोडा वन कारण ॥ मैं यह कियो वेद उच्चारण ॥ पाप छुडाई धर्म ग्रहवाऊं ॥ याबिधि बहु आरंभ छुडाऊं ॥ ६ ॥ यह समस्त जगको व्यवहार ॥ यातें जगको वार न पार ॥ क्षिति जल पावक पवन अकास ॥ सब जग पंचभूत परकास ॥ ७ ॥ ब्रह्मादिक थावर परजंत ॥ पंचभूत करि सब वरतंत ॥ अरु

एकहि आतम सब मांहीं ॥ तातें भेद कहूं कछु नाहीं ॥ ८ ॥ परि तथापि में भाष्यो वेद ॥ ताकरि कीने नाना भेद ॥ तिनके स्वारथ सुखके हेत ॥ विधि उचारे फलनि समेत ॥ ९ ॥ देश काल गुण द्रव्य सुभाव ॥ इनके भाषे नाना भाव ॥ एक निषेध एकविधि भाषै ॥ यौं संकोच मांहि सब राषै ॥ १० ॥ जाही देश कृष्ण मृग नाहीं ॥ अरु जहँ द्विजसेवा न करांही ॥ अरु जो कृष्ण मृग हि जब रहै ॥ परि मिलेछ तहँ वासा गहै ॥ ११ ॥ अरु जद्यपि तुरकउ तहँ नाहीं ॥ परि मघ हद आदिनके मांहीं ॥ अरुजो मगधादिक परिहरै ॥ परि कदरजता दूर न करै ॥ १२ ॥ अरु कदरजता मेटी होई ॥ परिजो उषर होवे सोई ॥ सो सो देस निषेध कहीजैं ॥ तिनमैं वासादिक नहिं कीजैं ॥ १३ ॥ तिनतें और देस सुचि जानै ॥ तिन मांही वासादिक ठानै ॥ अरु जो काल कर्मको नाहीं ॥ सूतक आदि भये जा मांहीं ॥ १४ ॥ सो सो काल निषेध कहीजे ॥ उत्तमसो जामें विधिकीजै ॥ वस्त्रादिकहि जलादिक सुद्ध ॥ मूत्रादिकतें होइ अशुद्ध ॥ १५ ॥ सुद्ध असुद्ध वचनतें त्यौंहीं ॥ सूंघेतें पुष्पादिक यौंहीं ॥ तवहीं पाक कऱ्यो सो सुद्ध ॥ बहुत कालतें होइ असुद्ध ॥ १६ ॥ कहियै भूमि मसान असुद्ध ॥ बहुत कालतें कहियै सुद्ध ॥ भूमें जब वरषा जल होई ॥ बहुत कालतें शुद्धहि सोई ॥ १७ ॥ ऐसी भांती ओरहु जानौ ॥ शुद्ध अशुद्ध भेद पहिचानौ ॥ विनास्नान सुद्ध बालादिक ॥ स्नानादिकतैं शुद्ध जुवादिक ॥ १८ ॥ जीरण वस्त्र अधनकौं सुद्ध ॥ द्रव्यवंतकौं परम असुद्ध ॥ औरौं सकल शक्ति अनुमान ॥ शुद्धअशुद्ध हि कियो बखान ॥ १९ ॥ सो सब देस काल अनुसार ॥ विधिनिषेधकौ कह्यौ विचार ॥ धन अरु पात्र वस्त्र गजदंत ॥ तेलरु घृत हेमादि अनंत ॥ २० ॥ काल अग्नि जल माटी वाई ॥

जथा जोग है सुद्ध कराई ॥ अरु जो कछु लाग्यौ दुर्गंध ॥ ज्यौं लगि धोए मिटे न गंध ॥२१॥ त्यौं लगि जानि अशुद्ध न गहियै ॥ गंध गएतें निर्मल कहियै ॥ शक्ति अवस्था तप अस्नान संसकार सुभकर्मरु दान ॥ २२ ॥ मम सुमरणतें होवै सुद्ध ॥ करे अन्यथा होइ असुद्ध ॥ मेरो मंत्रलियै विधि जानो ॥ मंत्रविहीन निषेधहि मानो ॥ २३ ॥ अर्पे थोहि सुद्ध सबकर्म ॥ करे विपर्जय होइ अधर्म ॥ देशरु काल कर्म अरु करता ॥ द्रव्य मंत्र ए खट आचरता ॥ २४ ॥ ए जो सुद्ध होइ तो सुद्ध ॥ ए असुद्ध तो होइ असुद्ध ॥ अरु कहु होवे शुद्ध अशुद्ध ॥ कहु अशुद्धही होवै शुद्ध ॥ २५ ॥ सुद्ध असुद्ध भेदहै जाके ॥ राग दोष होवेगो ताके ॥ जोईहै ऊंचेको धर्म ॥ नीचेको है ऊंच अधर्म ॥ २६ ॥ अरुजो कछू धर्म नीचेकूं ॥ सोईहै अधर्म ऊंचेकूं ॥ ताहीतें दोऊ भ्रम जानै ॥ मेरोभक्त कदे नहिं मानै ॥ २७ ॥ जो कबहूं विष अमृत लीजे ॥ ले ऊंचे नीचेकूं दीजे ॥ तो तिनमें तो भेद न होई ॥ मरनों अमर एक सम दोई ॥ २८ ॥ योंही विधिनिषेधहु होवैं ॥ ऊंच नीचकी ठौर न जोवै ॥ परिए दोऊ हे कछु नाहीं ॥ आपविचारो ॥ अंतर माहीं ॥ २९ ॥ नीचै नीचकर्म आचरैं ॥ मदिरा पानादि कहूं करै ॥ तोहूं इनकों दूषण नाहीं ॥ सो नितहीहै दूषण मांहीं ॥ ३० ॥ अरुजो ग्रही करतुहे संग ॥ ऋतुकें समय जुवति प्रसंग ॥ तो ताकौं कछु दूषण नाहीं ॥ सो नितहीहै दूषण मांहीं ॥ ३१ ॥ ज्यौंहि पर्‍यौ धरणीपर कोई ॥ ताहि न परनेकों भय होई ॥ परिजे कछू चढेहैं ऊंचे ॥ संगकरी ढहिआवैं नीचे ॥ ३२ ॥ तातें तिनको संग न करणो ॥ मन वच कर्म संग परि हरणो ॥ ज्यौं ज्यौं प्राणी छोडे कर्म ॥ त्यौं त्यौं छूटे पावै मर्म ॥ ३३ ॥ क्षेम धर्म सब नीकौ एह ॥ मिटहीं सोक मोह संदेह ॥ या

निमित्तमें भेद सुनाये ॥थोरे थोरेमें ठहराये ॥ ३४ ॥ पीछें भ्रम कहि सकल निवारे॥ऐसी भांति जीव निस्तारै ॥ जब नर विषयनि उत्तम जानै ॥ तब तिनमें आशक्तिहि ठानै ॥ ३५ ॥ तातें हृदये उपजै काम ॥ तातें तहां कलहको धाम ॥ ताहीहुतें क्रोध उपजावे ॥ तब अविवेक आपुहीं आवै ॥ ३६ ॥ सो अविवेक हरै सब ज्ञान ॥ तातें प्रानी मृतक समान ॥ तातें काज अकाज न जानै ॥ निशदिन बहुविधि चिंता ठानै ॥ ३७ ॥ सब पुरुषारथ होवै छीन ॥ निशदिन रहै दुखित अरु दीन ॥ तातें समुझै आपु न आन ॥ मिथ्या जीवै वृषभ समान ॥ ३८ ॥ ज्यौं होवे लुहारकै षाल ॥ स्वासलेत यों षोवे काल ॥ अरु पुनि कहै कर्म फल जे ते ॥ स्वर्गादिक नाना विधि ते ते ॥३९॥ ते ते कहि करि रुचि उपजाई ॥मेटि निषेधनि बिधि करवाई॥जैसैं औषध कटु कषवावै ॥ बालककौं लाडूहि दिषावै ॥ ४० ॥ औषधको फल लाडू नाहीं ॥ औषधपिये रोग सब जाहीं ॥ स्वर्गहेत जो कर्मनि करै ॥ पुनि सुनि तत्त्व फलहि परिहरै ॥ ४१ ॥ तब अनर्थ तजि अर्थहि आवै ॥ मोमें व्है निहकर्म समावै ॥ अरु यह जबतें जन्महि पावै ॥ तबतें आपुहि विषय कमावै ॥४२॥ पुत्र कलत्र कुटुंबरु प्राना ॥ इनके हेत चहै सुखनाना ॥ आपु आपुको करै अनर्थ ॥ तिनकौं मूरख जानै अरथ ॥ ४३ ॥ ऐसैं या भवमें नित भर्मै ॥ कदें न जाने सुखके मर्मै ॥ अरु तिनकौं जोभरमत देषै ॥ सदा निरंतर दुखित हु लेषै ॥ ४४ ॥ सो तिनकौं कबहूं न वहावै ॥ अर्थरु काम न कदे दृढावै ॥ तातें मैंतो सबविधि जानौं ॥ कैसैं कामरु अर्थ बषानौं ॥ ४५ ॥ परिजे कछु श्रुतिमांहि सुनायै ॥ अर्थ धर्म अरु काम बतायै ॥ ते ते सकल छुडावनं कारण ॥ हेत बिचार कियो उच्चारण ॥४६ ॥ ऐसो वेदतत्त्व नहिं जानै ॥

मूरख पुष्पित बनै बषानै ॥ फलनि हेत आरंभैं कर्म ॥ तिनकौ कदे न छूटै भर्म ॥ ४७ ॥ कामी कृपण लोभ अधिकारी ॥ तृष्णा आकुस सदाबिकारी ॥ फूलहि मांहीं फल करिमानै ॥ कामनि लागि तत्त्व नहिं जानैं ॥ ४८ ॥ मैं तिनके नित हृदेमें मांहीं ॥ परि तोहूं ते जानें नाहीं ॥ जातें यह सब जगत पसारा ॥ अरु समस्त जाके आधारा ॥ ४९ ॥ जाकी शक्ति पाई सब वर्त्तें ॥ चुंबक संग लोहज्यौं नर्त्तें ॥ जाकी आज्ञा सबहीं मानै ॥ कोई मरजादा नहि भानै ॥ ५० ॥ ऐसो हे सबहिनमें ईस ॥ जेसैं सकल देहमें सीस ॥ परिते काम कर्मतें अंध ॥ मोहि न देषें अर्थनि बंध ॥ ५१ ॥ जैसें नयन रोगमय होवै ॥ आगैं होती वस्तु न जोवैं ॥ यौं अज्ञान अंध कर्मिष्ट ॥ देषें नहीं निकटमें इष्ट ॥ ५२ ॥ ते मोबिन मम मतो न जानैं ॥ हनिं जीवनि जज्ञादिक ठानैं ॥ ते फिर तिनहिं हतें परलोक ॥ जन्म जन्म पावें भय सोक ॥ ५३ ॥ जब याकै बहुहिंसा देखी ॥ हनि हनि जीव जीवका पेखी ॥ तिनके हेत कही यह बानी ॥ हिंसा जज्ञहि मांहि बखानी ॥ ५४ ॥ पसुवध एक जज्ञमें भाष्यौ ॥ और समस्त दूरिकरि नाष्यौ ॥ जब प्राणी तामें ठहरावै ॥ तब पुनि वेदहि सकल छुडावै ॥ ५५ ॥ वा निमित्त पसु हिंसा भाषी ॥ सो मूरषनि तत्व करि राषी ॥ तातैं बहुविधि कर्मनि करैं ॥ बहूत काम हृदेमैं धरैं ॥ ५६ ॥ पसुहिंसा करि करि व्यवहार ॥ जे जे पावें बहुत प्रकार ॥ देव पितर भूतनकौं यजैं ॥ उरतें सुख इच्छा नहिं तजैं ॥ ५७ ॥ सुपन तुल्य स्वर्गादिक भोग ॥ तिन कौं सुनि उत्तम या लोग ॥ तिनकी इच्छा हृदये धरैं ॥ द्रव्य षरचि कर्मनि विस्तरैं ॥ ५८ ॥ विघ्न होइ बहुकर्मनि मांहीं ॥ स्वर्गादिकहू पावैं नाहीं ॥ ज्यौं को सायर पारहि जावै ॥ धन

हित ग्रहके धनहि लगावै ॥ ५९ ॥ पाछैं परैं विघ्न जो कोई ॥ ता दोन्योंतें जावे सोई ॥ यों जे बहुविधि कर्म उपावैं ॥ ते पसु दुहूंलोकतैं जावैं ॥ ६० ॥ सातिक जे ते देवनि भजैं ॥ जक्षादिककों राजस जजैं ॥ तामस भूत प्रेत बहु सेवैं ॥ तन मन धन तिन तिनकौं देवैं ॥ ६१ ॥ इहां यज्ञहू बहुविधि कीजैं ॥ विप्रनि बहुत दक्षिणा दीजैं ॥ तातैं स्वर्गादिक सुख पइयैं ॥ तहां बहुत विध भोग भुगइयैं ॥ ६२ ॥ पुनि जब होवे तिनको अंत ॥ तबहूं जें भुवमें धनवंत ॥ ऐसी भांति कामना करै ॥ तिन निमित्त कर्मनि विस्तरै ॥ ६३ ॥ तिनकौं मेरी वात न भावे ॥ भक्ति कहांतें हृदये आवे ॥ जद्यपि वेद कर्म उच्चारै ॥ धर्मरु अर्थ काम बिस्तारै ॥ ६४ ॥ परि तथापि ब्रह्महीं बतावै ॥ क्रम क्रम दूजो सकल छुडावै ॥ परि श्रुतिको आसय नहिं जानैं ॥ है कछु औरे और बषानैं ॥ ६५ ॥ शब्द ब्रह्म महादुर्बोध ॥ पंडितहूं नहिं पावै सोध ॥ सूक्ष्म थूल रूप द्वे जाके ॥ मोबिन भेद लहे को ताके ॥ ६६ ॥ प्राणस्वरूप परासें नाम ॥ पस्यंती को मनमें धाम ॥ तीजी कंठ मध्यमा मूल ॥ चोथी प्रगट वैषरी थूल ॥ ६७ ॥ भेदहि तिनको कोइ न जानै ॥ तातैं औरे और बषानै ॥ अंत पारको ईनहिं पावै ॥ ज्यौं सायर थाह्यौ नहिं जावै ॥ ६८ ॥ अति गंभीर अर्थहे जाकौ ॥ कोई भेद न जाने ताकौ ॥ मैं सबहिनमैं अंतरजामी ॥ शक्ति अनंत सकलको स्वामी ॥ ६९ ॥ सर्वहि व्यापक ब्रह्मस्वरूप लिषन कबहूं परम अनूप ॥ सोईहे व्यापक सब मांहीं ॥ शब्द रूप दूजाको नाहीं ॥ ७० ॥ कमल नालमैं तंतू जैंसें ॥ शब्द रूप सबमें मैं ऐसें ॥ सोई प्रगट्यौ बहुविस्तार ॥ मन करि हृदयहुतें मुषद्वार ॥ ७१ ॥ ज्यौं मकरी तंतु बिस्तारै ॥ करि विस्तार बहुरि संहारै ॥ त्यौं मम

वेद भयो विस्तार ॥ ॐकार इक मूलाधार ॥ ७२ ॥ तातैं अक्षर बहुत प्रकारा ॥ तिनतैं छंद वार नहिं पारा ॥ चार चार अक्षर अधिकाहीं ॥ छंद होत एसी विधि जाहीं ॥ ७३ ॥ एकहुतें यों होइ अनेक ॥ बहुरो सकल एकके एक ॥ गायत्री अक्षर चोवीस ॥ उष्णिक छंद अष्ट अरु बीस ॥ ७४ ॥ जो बत्तीस अनुष्टुप सोहे ॥ बृहती नाम तीस षटकोहे ॥ पंक्ति नाम अक्षर चालीस ॥ त्यौंही त्रिष्टुप चंवालीस ॥ ७५ ॥ जगतीछंद अष्ट चालीस ॥ कहत पार नहिं कोट वरीस ॥ याविधि प्रगट्यो बहु विस्तार ॥ जाको कछू वार नहिं पार ॥ ७६ ॥ कहा न्हदेमें कहा वतावे ॥ ले कहि अंत कहा ठहरावे ॥ ऐसो मतो न जानें कोई ॥ मोबिन भावें विधि किन होई ॥ ७७॥ जज्ञरूप कहि मोकौं राखै ॥ सकल देवमय मोकौं भाषै ॥ मेरे हेत कर्म करवावे ॥ मोतें उपज्यों सकल बतावे ॥ ७८ ॥ अंत सकलको भाखे नास ॥ मोकौं कहै सुनित्य प्रकास ॥ नानारूपनि वृथा जनावे ॥ एकब्रह्म कहि सकल सुनावे ॥ ७९ ॥ जेसें साप जेवरी मांहीं ॥ यों सब जगत बतावे नाहीं ॥ मोकों नित्य निरंजन भाखै ॥ अंजन सकल दूरि करि नाखै ॥ ८० ॥ तातें श्रुति नित मोहि बतावे ॥ परि यह तत्त्व न कोई पावे ॥ सो पावे जो मम आधीन ॥ हुइ निहकाम रहे लै लीन ॥ ८१ ॥ ॥ दोहा ॥ यों सुनि करि श्रुति तत्त्वकौं, उद्धव लिये आनंद ॥ प्रश्नकरी पुनि कृष्णसौं, ज्यों छूटे भव फंद ॥ ८२ ॥ इति श्रीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधे श्रीभगवदुद्धवसंवादेएकविंशोऽध्यायः२१

दोहा ॥ तत्त्व गणित बावीशमैं, कह्यो भेद सब एक ॥ जन्म मृत्यु विधि आदिले, प्रकृतीपुरुष विवेक ॥ १ ॥ ॥ उद्धव उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥

हेदेवेश तत्त्वहैं केते ॥ कहो कृपाकरि मोसों ते ते ॥ जिनकौ रचित सकल संसार ॥ जो दीसै नाना विस्तार ॥ १ ॥ तुमतौ अष्टाविंसाति कहैं ॥ तेमें दृढकरि मनमैं गहैं ॥ परि बहुतें मिलि बहुविधि कहैं ॥ अरु तिनतें सुनि त्यौंही गहैं ॥ २॥ केइ कहतहैं तत्त्व छत्रीस ॥ अरु त्यौं कोई कहें पचीस ॥ केई षट अरु केई चार ॥ केई भाषें शप्त विचार ॥ ३ ॥ केई नवकौ करे विवेक ॥ केई भाषें दश अरु एक ॥ केई तत्त्व बतावें षोडश ॥ अरु त्यौं एक कहैं त्रयोदश ॥ ४ ॥ केई भाषें दश अरु सात॥ए रिषिमते स्मृति विख्यात ॥ कौन प्रयोजन ले ले भाखें ॥ यों अपनें अपनें मत राखें ॥ ५ ॥ क्रिपाकरौं निज बेन सुनावौ ॥ सत्य मतो सो मोहि जनावौ ॥ सुनि उद्धवके बैन रसाल ॥ कृपासिंधु बोले गोपाल ॥ ६ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ हेउद्धव ज्यौं ज्यौं सब भाखैं ॥ जितनें जितनें तत्त्व निराखैं ॥ ते ते तुम सब मानो सत्य ॥ तत्त्व विचारै सबैं असत्य ॥ ७ ॥ मायादेषि कहें जो जे ते ॥ मायामांहि सत्यहैं ते ते ॥ मोहिदेखि जो तिनकों देखे ॥ तो समस्त मिथ्याकरि लेषे ॥ ८ ॥ मायामांहीं जुक्त विचारे ॥ अपनों अपनों मतो उचारे ॥ यह यौंहीं यह यौंहीं नाहीं ॥ कहें सबें मिलि आपु न मांही॥९॥ यह यौंहीहैं जोमें भाखौं ॥ तेरी कही सत्य नहिं राखौं ॥ याविधि मम माया भरमाए ॥ तिन नानाविधि पंथ चलाए ॥ १० ॥ मम मायाकी शक्ति अनंत ॥ तिनके पंथनिकौ नहिं अंत ॥ जब सम दम उर अंतर आवैं ॥ तब ए सकल भेद छटिकावैं ॥ ११ ॥ जे ते तत्त्व सकल मायाके ॥ जिनतें भए सकल ता ताके ॥ क्रम क्रम तत्त्व उपजते गए ॥ त्यौं त्यौं भेद बहुत विधि भए ॥ १२ ॥ जैसें एक वृक्ष विस्तार ॥ ताकी संपति बहुत प्रकार॥कछु साखा बहुतें पर साखा ॥

अरु तिनके बहु विधि उपसाखा ॥ १३ ॥ तिनको बहुत भांति विस्तार ॥ पान फूल फल विविध प्रकार ॥ अरु ता वृक्षहि बरनें कोई ॥ ज्यौं ज्यौं कहैं सत्य त्यौं होई ॥ १४ ॥ थोरे होइ कहैं जो साखा ॥ बहुतें होइ मिली पर साखा ॥ उपसाखा मिलि बहुविधि होवैं ॥ ते सब पंथ सत्य सब जोवैं ॥ १५ ॥ यौं संसार वृक्ष विस्तार ॥ माया मूलहि सकल प्रकार ॥ तत्त्व सकल साखा पर साखा ॥ अरु तिनके बहुविधि उपसाखा ॥ १६ ॥ तातें ज्यौं वर्णें त्यौं सत्य ॥ परि सब माया सकल असत्य ॥ ज्यौंही ज्यौं जिनके मन आयौ ॥ त्यौंही त्यौं तिन बरनि सुनायौ ॥ १७ ॥ माया करि बंध्यो सो आतम ॥ तातें छोडै सो परमातम ॥ ए दोहू अरु जड चोवीस॥ तिनकौं मिले सकलहि छवीस ॥ १८॥ अरु जे बंध मुक्तहैं दोई ॥ ते भ्रम माया सत्य न कोई ॥ तातैं जीव ब्रह्म द्वै नाहीं ॥ यौं पचीस जानौं मन माहीं ॥ १९ ॥ सत रजतम ए गुणहैं जेते॥ जड सरूप मायाके ते ते ॥ रज उतपति सातिक प्रतिपाल ॥ तामस रूम ग्रसतहै काल ॥ २० ॥ राजसहुतें कर्म अधिकार ॥ तामस तें अविवेक अपार ॥ सातिक गुणतें उपजे ज्ञाना ॥ एहैं मायाके गुण गाना ॥ २१ ॥ इनतें परे आतमा मानौ ॥ तातैं ब्रह्मरूप करि जानौ ॥ पंचवीस ताहीतें कहैं ॥ त्यौंही ते सुनि और उगहैं ॥ २२ ॥ सोहे काल गुणनि विस्तारै ॥ सो सुभावतें शक्ति पसारै॥ तातैं कालरूप हरि जानौं॥ अरु सुभाव महत्तत्त्वहि मानौं॥ २३॥ तातैं तत्त्व अधिकन गहियैं ॥ पंचवीस छहवीसहि कहियैं॥ प्रकृति पुरुषमह ततहंकार॥ तन मात्रा ए पंचप्रकार॥ २४॥ श्रोत्ररु त्वचानेत्र जिव घ्राना ॥ ए पंचौ इंद्रियहैं ज्ञाना ॥ पायु उपस्थ चरणकर बानी ॥ पंचकर्म इंद्रिय यह शानी ॥ २५ ॥ मन दशहूं इंद्रियको राजा ॥ जाकी शक्तिकरैं सब काजा ॥ क्षिति

जल पवन तेज आकास ॥ ए अठाइस तीन गुण पास ॥ २६ ॥ गति उत्सर्ग ग्रहन अरु बचना ॥ ए पांचौ इंद्रिय फल रचना ॥ तातैं अष्टाविंशति तत्त्व ॥ अधिक न भाषैं ज्ञानी सत्त्व ॥ २७॥ सृष्टिआदि थी माया एक ॥ पुरुष शक्तितैं भई अनेक ॥ तनमात्रा मह तत हंकार ॥ एहैं कारण नवे प्रकार ॥ २८ ॥ पंचभूत मन अरु इंद्रिय दश ॥ कारजरूप विकृती षोडश ॥ सत रज तम गुण तीन प्रकार ॥ तिनतैं रच्यौ सकल विस्तार ॥ २९ ॥ कारण करण प्रकृती जानौ ॥ पुरुष निमित्तहि साक्षी मानौ ॥ इच्छा सक्ति पुरुषतैं पावैं॥मिलि समस्त तब सृष्टि उपावैं ॥३०॥ सप्तधातुकौ सब विस्तारा ॥ आतम द्रष्टाके आधारा ॥ सकल तत्त्व सप्तमें आये ॥ तातैं एकनि सप्त बताये ॥ ३१ ॥ पंचभूत आपहि उपजाये ॥ तिनके बहुविधि देह बनाये ॥ आपु प्रवेश कियौ हरि तिनमैं ॥ चेतन दीसतुहै जिन जिनमैं ॥ ३२ ॥ ऐसी विधि षटकौ विस्तार ॥ आपु मांहि सबकरैं विचार ॥ पृथिवी आप तेज त्रय तत्त्व ॥ अरु आतम निर्मित सबसत्त्व ॥ ३३ ॥ याविधि चार तत्त्व विस्तार ॥ ऊंचौ नीचौ सब संसार ॥ पंचभूत तन मात्रा पंच ॥ पंचइंद्रिय सब परपंच ॥ ३४ ॥ मन आतमा मिली दशसात ॥ तत्त्व सप्तदश जानो तात ॥ मन आतमा एककरि जानैं ॥ ते जन षोडश तत्त्व बखानैं ॥ ३५ ॥ पंचभूत अरु इंद्रिय पंच ॥ ब्रह्म जीव मनको परपंच ॥ ऐसी विधिकरि पंथ चलावैं ॥ तेरहको सब जगत बतावैं ॥ ३६ ॥ इंद्रिय पंच पंच पुनि भूत ॥ आतम मिलि सब जन उद्भूत ॥ ऐसी विध एकादश कहैं ॥ जुक्ति विचार हृदेमें गहैं ॥ ३७ ॥ पंचभूत मन बुधिहंकार ॥ आतम मिलि नवको विस्तार ॥ ऐसी विधि बहु मारग कहैं ॥ जुक्ति विचार हृदेमें गहैं॥ ३८ ॥ प्रकृति पुरुषको लहैं विवेक ॥ इनकों जानि

एकको एक ॥ ऐसो सुनि तत्त्वनिको ज्ञान ॥ उद्धव पूछ्यों परम सुजान ॥ ३९ ॥ उद्धव उवाच ॥ चौपाई ॥ हेप्रभुजी यह ज्ञान सुनावौ ॥ मेरे उरको भ्रमहि मिटावौ ॥ चेतन ज्ञान रूप अविनासी ॥ सुद्धानंद परम परकासी ॥ ४० ॥ ऐसें आतम तुमरो रूप ॥ परे गुणनितैं परम अनूप ॥ जड विना समय परम अशुद्ध ॥ दुःखरूप पल सुख नहिं सुद्ध ॥ ४१ ॥ ऐसी प्रकृति पुरुषतें न्यारी ॥ तोहूं भई परस्पर प्यारी ॥ प्रकृति मांहि आतम मिलि रह्यो ॥ अरु आत्मा प्रकृतिकरि गह्यो ॥ ४२ ॥ इनमें भेदन जान्यौ परे ॥ एकमेक व्है सब अनुसरे ॥ इनमैं प्रकृति कहालौं कहियैं ॥ कोन आतमा जो दृढ गहियैं ॥ ४३ ॥ करि करुणा बानी विस्तरो ॥ वचन बान संसय परिहरो ॥ तुम माया बंध्यो संसार ॥ तुमहींहुतैं होई उद्धार ॥ ४४ ॥ तुमहीं मायाकी गति जानौ ॥ कृपाकरौ तब तुमहीं भानौ ॥ बानी सुनी भक्त अपनेकी ॥ तब बोले श्रीकृष्ण विवेकी ॥ ४५ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ ॥ चौपाई ॥ हेउद्धव यह ज्ञान अगाध ॥ कोई एक लहे मम साध ॥सो यहज्ञान सुनाऊं तोही ॥ तूंहै सदा अनुव्रत मोही ॥ ४६ ॥ उद्धव प्रकृति रचे संसार ॥ सूक्षम थूल विविध परकार ॥ उपजैं वरतें होइ बिनास ॥ तामें आतम नित्य प्रकास ॥ ४७ ॥ उद्धव यह हे मेरी माया ॥ तिन सत रज तम गुण उपजाया ॥ तिनकौ त्रिविध सकल विस्तार ॥ जाको कछू वार नहिं पार ॥ ४८ ॥ त्रिविध कहनकौ परि कहुं भेद ॥ तिनतें जीवलहे नितषेद ॥ अध्यातम अधिदैव अधिभूत ॥ त्रिविध रूप सब जग उद्‌भूत ॥ ४९ ॥ दृग अध्यातमरूप अधिभूत ॥ रवि अधिदैव मिली अदभूत ॥ तीनों मिले परसपर जबहीं ॥ तिनकौ कारज सीझै तबहीं ॥५०॥

तीनौं बिना कछू नहिं होई ॥ तीनी मिलि वरते सब कोई ॥ त्वचास्पर्श पवन त्यौं जानौ ॥ कर्णरु शब्द दिशायों मानौ ॥ ५१ ॥ नासागंध अस्वनी सूता ॥ जिव्हा रसरु वरुण जलजूता चित्त चेतना अंतरजामी ॥ बुद्धि बोधना ब्रह्मास्वामी ॥ ५२ ॥ अहंकार हंकरता रुद्र ॥ मन मानवो देवता चंद्र ॥ याविधि त्रिविध प्रपंच पसार ॥ सकल परे आतम निज सार ॥ ५३ ॥ इन तीनौं बिन जगत न होई ॥ ते आतम बिन रहे न कोई ॥ आदि सकलके आतम एक ॥ जातें चेतन होइ अनेक ॥ ५४ ॥ आतम स्वप्रकास अविनासी ॥ चेतन रूप सकल सुखरासी ॥ ए सब आतमके आधार ॥ अरु आतमा सकलके पार ॥ ५५ ॥ विन आतमा कछू नहिं होई ॥ अरु आतम नहिं जानें कोई ॥ मह तततें उपज्यौ हंकार ॥ तिहूं गुणनिकौ त्रिविध प्रकार ॥ ५६ ॥ सो अज्ञान मूलकरि मानौ ॥ जाको कियौ जगत भय जानौ ॥ सो आतमा आपही लियौ ॥ भव भय आपु आपुकों कियौ ॥ ५७ ॥ आतम सदा एकहीं रूप ॥ अहंकारतें परे अनूप ॥ सो जब रूप आपनौ जानै ॥ तबहीं सकल उपाधी भानै ॥ ५८ ॥ सो कछु होई नहीं उपाधी ॥ परि आतमा लेइकरि व्याधी ॥ समुझे जबहि आपनौ रूप ॥ तब आतमा तजे भवकूप ॥ ५९ ॥ अरु तब रूप आपनौ जानै ॥ जब ममचरण हृदेमें आनै ॥ जद्यापि मिथ्या सब संसार ॥ जो कछु दीसे विविध प्रकार ॥ ६० ॥ परि जोलौं नहिं मोकौं भजै ॥ तोलौं निज अज्ञान न तजै ॥ जबहीं मेरे सरणहि आवै ॥ तबहीं आतम ज्ञानहि पावै ॥ ६१ ॥

॥ दोहा ॥ ऐसै श्रीमुष बैनसुनि, प्रकृतिपुरुषको ज्ञान ॥ उद्धव कीनो प्रश्ण तब, हरि जन परम सुजान ॥ ६२ ॥ उद्धवउवाच ॥ चौपाई ॥ तुम करि रहित बुद्धिहै

जिनकी ॥ कहियें देव कोन गति तिनकी ॥ सकल व्यापी आतम एक ॥ क्यौंकरि पावै देह अनेक ॥ ६३ ॥ अरु शुभ अशुभ कर्महें जे ते ॥ त्रिगुण रचित कहियें सब ते ते ॥ तिन कर्मनि निह कर्म बँधावै ॥ क्यौंकरि जोनि अजोनी पावै ॥ ६४ ॥ अमर मेरे केसैं करि देवा ॥ याकौ मोहि बतावो भेवा ॥ यह तुम विना न कोई जानै ॥ जद्यपि विद्या बेदबषानै ॥ ६५ ॥ जो कछु पढे बंध सो होई ॥ तातें तत्त्व न जानै कोई ॥ याविधि उद्धव पूछयो ज्ञान ॥ तब हसि बोले श्रीभगवान ॥ ६६ ॥ ॥ श्रीभगबानुवाच ॥ ॥चौपाई ॥ उद्धव यह मन परम विकारी ॥ सब इंद्रियनि मांहि अधिकारी ॥ इंद्रिय मिल मनहीं सब करै ॥ सुखहित बहु उद्यम विस्तरै ॥ ६७ ॥ सो तन तजि दूजे तन जावै ॥ तहां तहां आतमही आवै ॥ जिन जिन सुखनि सुने अरु देषे ॥ तिन तिनकौं उत्तम करि लेषें ॥ ६८ ॥ तिनकों सो मन निश दिन ध्यावै ॥ यह तन छीनभए तहँ जावै ॥ वह तन पाइ बिसारें याकौं ॥ जन्ममरण कहिये वुहे ताकौं ॥ ६९ ॥ जा तनमें बांधें अभिमान ॥ छोडै पूरव तन गहि आन ॥ जन्म मरण आतमकौं सोई ॥ दूजो जन्ममरण नहिं कोई ॥ ७० ॥ जैसें सुपन मनोरथ जावै ॥ यह तन छोडी औरहि पावै ॥ तब या तनकी सुद्धि न रहै ॥ वाही तनकौं आपुहि कहै ॥ ७१ ॥ जन्मरु मरण स्मृतिकों होई ॥ आतम जन्म मरणहै सोई॥ और कछू आतम नहिं मरै॥ अरु कबहूं नाहीं अवतरै ॥ ७२ ॥ यौं तनमैं मनको अभिमाना ॥ तातें तन उपजतहैं नाना ॥ ते सब आतमके आधारा ॥ तन मन बुद्धि चित्त हंकारा ॥ ७३ ॥ जिन संगति आतमकौं दुःख ॥ तिनहित जे बिन पलनहि सुख ॥ उद्धव सकल देहहैं जे ते ॥ सदा सकल विनशतहैं ते ते ॥

॥ ७४ ॥ काल नदी प्रवाह प्रचंड ॥ ताकरि पलक परत नहिं षंड ॥ जैसें नदी निरंतर बहै ॥ परि देषनकौं त्यौंहीं रहै ॥ ७५ ॥ अरु ज्यौं अर्चि निरंतर जावै ॥ परि दीपकद्युति त्यौंहि रहावै ॥ अरु जैसें सब वृक्षनिकै फल ॥ दीसैं त्यौं परि थिर नाहीं पल ॥ ७६ ॥ त्यौंही सब देहनिकौं जानौ ॥ कालहि ग्रसत निसी दिन मानौ ॥ जद्यपि अवस्था जाती लेषै ॥ बालकुमार जुवादिक देषै ॥ ७७ ॥ परितोहूं मूरष नहिं जानै ॥ मैं वह ईहौंयौं करि मानै ॥ यह आतम सो सदा अजन्म ॥ देह संगते पावे जन्म ॥ ७८ ॥ अरु त्यौं अमर निरंतर जानौ ॥ देह संग मरतोसो मानौ ॥ जेसैं अग्नि दारुके संग ॥ सदालहे उतपति अरु भंग ॥ ७९ ॥ ज्यौं लगि तनकी संगति रहे ॥ त्यौंलगि आतम अतिदुष सहै ॥ गर्भ प्रवेस वद्धि अवतार ॥ बाल अवस्था तथा कुमार ॥ ८० ॥ जोवन मध्य जरा अरु मरना ॥ नवहि अवस्था देह अवरना ॥ आतम एक रूप सबहिनमैं ॥ कबहूं नहीं लिपे तिन तिनमैं ॥ ८१ ॥ एसें जानि मुक्ति तब होई ॥ मेरी सरणागत जे कोई ॥ अपनो दादौ पिता विचारे ॥ तिनकौ मरणौ उरमैं धारे ॥ ८२ ॥ भाई ज्यौं अबमें अनुरक्त ॥ त्यौंहीं तेहू ते आशक्त ॥ तेतो प्रगट कालवश भये ॥ परवश भए छोडि सबगये ॥ ८३ ॥ मेरी यौं हैहै गति एसी ॥ भई बाप दादाकी जेसी ॥ अरु मेरे अब बालक जैसैं ॥ हमहूं हुते पिताके तैसैं ॥ ८४ ॥ सकल अवस्था सो मम गई ॥ यहतो प्रगट औरही भई ॥ याही विधि जेसैं सब देह ॥ तेसें छुटै पुत्र धनगेह ॥ ८५ ॥ यौं उरमैं बहुभांति विचारै ॥ अपनें बंधन सकल निवारै ॥ देहादिक सब संगति तजै ॥ सदा निरंतर मोकौं भजै ॥ ८६ ॥ बीज जन्म पाकेतें अंत ॥ खेती खेतमांहि वरतंत ॥ खेती करण हारसो न्यारा ॥ यौं तन न्यारौ करै

विचारा ॥ ८७ ॥ कर्मबीज विस्तारे नाहीं ॥ दग्धकरे जेही तन मांहीं ॥ तिनतें न्यारो आपुहि जानै ॥ संग करेतें सुखदुःख मानै ॥ ८८ ॥ तातें तनकौ संग निवारै ॥ याविधि आपु आपुकौं तारै ॥ जो जन न्यारो आपुन जानै ॥ तन सुख हेत कर्म बहु ठानै ॥ ८९ ॥ तिनतें नाना देह नि पावे ॥ पुनि पुनि जन्मि जन्मि मरि जावे ॥ सातिकतें सुरके ऋषि होई ॥ राजस नरके दानव सोई ॥ ९० ॥ तामस पस्वादिकके भूत ॥ याविधि त्रिगुण जगत अदभूत ॥ जद्यपि आतम सदा अनीह ॥ कबहूं कछू न करे सनेह ॥ ९१ ॥ परित न करते करता होई ॥ संग दोषं बंधतहै सोई ॥ जेसै नाचै गावै कोई ॥ तिनकौं दूजो द्रष्टा होई ॥ ९२ ॥ त्यौं त्यौं आपहु बेठे करें ॥ तान ताल रागहि उरधेरे ॥ त्यौं माया गुण कर्मनि ठानै ॥ आतम करता आपुहि मानैं ॥ ९३ ॥ तिनहीं कर्मनि बंधे आपू ॥ जो कछू करे होइसो पापू ॥ तिनकौं जानि तजे नहिं जोलौं ॥ जनममरण दुखमिटे न तोलौं ॥ ९४ ॥ जलप्रवाह ढिग ठाढौं कोई ॥ तब वृक्षनि देखे चल सोई ॥ नयन भ्रमत ज्यौं कोई देखे ॥ तब सब भ्रमती धरती लेखे ॥ ९५ ॥ तेसें यह आतम थिर जानौं ॥ और सकल चंचलकरि मानौ ॥ निश्चल मन करि देखे जबहीं ॥ निश्चल ब्रह्मरूपहे तबहीं ॥ ९७ ॥ जेसें स्वप्न मनोरथ मृषा ॥ यों सब जगत विषय सुख तृषा ॥ परि जद्यपि जग सत्य न कोई ॥ तोहूं कदे निवृत न होई ॥ ९७ ॥ जैसें सुपन सत्य कछु नाहीं ॥ परि जोलोंहे निद्रा मांही ॥ त्योंलगि सकल सत्यही जानै ॥ सुखदुख पावै उद्यम ठानै ॥ ९८ ॥ त्यौं अज्ञान नींदवस जोलौं ॥ जनममरण भव मिटे न तोलौं ॥ तातैं उद्धव सबभ्रम जानौं ॥ महा अनर्थ रूप करि मानौ ॥ ९९ ॥ विषयनिकौ उद्यम

छटिकावौ ॥ अरुजेहैं ते सकल मिटावौ॥ज्यौंलगि आपुहि समुझै नाहीं॥ त्यौंलगिहैं नाना भय मांहीं ॥ १०० ॥ अरु आपुहि समुझै नहिं तोलौं ॥ मम आधिन होई जोलौं ॥ मम आधीन निरंतर रहै ॥ जग उपहास सीस सब सहै ॥ १ ॥ केई एक करे अपमाना ॥ केई गहि बांधै अज्ञाना ॥ केई मूतें थूतें तनमैं ॥ डारैं धूरि भीषके अनमैं ॥ २ ॥ एकै डहिकै मूढ डिगावैं ॥ एकै निंदैं चोट लगावैं ॥ एसैं बहुविधि दुख उपजावैं ॥ बहुविधि भयके बैन सुनावैं ॥ ३ ॥ परि जो अपनो श्रेय विचारै ॥ सो एको मनमैं नहिं धारै ॥ बहु कष्टनितैं मन न डिगावै ॥ सो भव तजि मम चर्णनि आवै ॥ ४ ॥ मेरो पंथ खडगकी धारा ॥ जो न डिगे सो उतरे पारा॥ हरिके बैन निदुष्कर जानी ॥ उद्धव प्रषणकरी भय मानी ॥ ५ ॥ ॥ उद्धव उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ प्रभु तुम एसैं बैन सुनायै ॥ ते मेरे मन दुष्कर आयै ॥ जो असाध बिन काज धिकावै ॥ तातैं सहै कौंन विधि जावै ॥ ६ ॥ मेरे हृदे ज्ञान ठहरावौ ॥ सहन उपाइ मोहि समुझावौ ॥ जे सहनो उत्तम करि जानै ॥ अरु त्यौं औरनि पास बखानैं ॥ ७ ॥ परि ते आइ परैं नहिं सहे ॥ अंत प्रकृतिके सब ह्वै रहे ॥ केवल जे तुमचर्ण अधारा ॥ तिनमें कोई नहीं विकारा ॥ ८ ॥ ते नित निश्चल सीतलरूप ॥ नित आनंदित परम अनूप ॥ तिनकौं कदे लिपे कछु नाहीं ॥ सदाबसे तब चर्णनि मांहीं ॥ ९ ॥ औरे सकल प्रकृति आधीन ॥ सदा बिकारनि आगे दीन ॥ तातें तुमहीं करुणा करौ ॥ ज्ञानादिक मम हृदये धरौ ॥ ११० ॥

दोहा ॥ एसीकीनी प्रषण जब, उद्धव परमसुजान ॥ भाख्यौ सहन उपाय तब,

भवभंजक भगवान ॥ इति श्रीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधे श्रीभगवदुद्धवसंवादे भाषायांद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

दोहा ॥ तिरस्कार मन सहनता, संयम बुद्धिप्रकार ॥ कही ध्याय तेवीशमैं, भिक्षू गीत मझार ॥ १ ॥ दुष्टवचन शरतैं बुरे, भले शत्रुके बान ॥ श्रीधर जो नर सहत है, तासम साधु न आन ॥ २ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ हेउद्धव ऐसो नहिं कोई ॥ दुर्जन वचन क्षुभित नहिं होई ॥ दुर्जनवचन बान जो सहै ॥ मंन क्रम बचन क्षोभ नहिं लहै ॥ १ ॥ जो ऐसो सो साधु कहावै ॥ या बिन साधूपद विन पावै ॥ षेंचि कसी सहने गहिबान ॥ अरुते भेदैं मरम स्थान ॥ २ ॥ तौ तिनतैं दुष होइन ऐसौ ॥ दुष्ट वचन बाननतैं जैसौ ॥ परिमैं तोहि उपाइ सुनाऊं ॥ सहन सीलता उर ठहराऊं ॥ ३ ॥ मोसों सुनो एक इतिहास ॥ जातैं होवे न्हदे प्रकास ॥ भिक्षुक एक ज्ञानमय भाषी ॥ ताकी तोहि सुनाऊं साषी ॥ ४ ॥ कियौ असाधुनि बहु अपमाना ॥ तिरस्कार ठान्यो विधि नाना ॥ तब ता भिक्षुक गाथा कही ॥ कुमति आपनी सगरी दही ॥ ५ ॥ सो अब सुनौ सुचित ह्वै मोसौं ॥ निजजन जानि कहतहौं तोसौं ॥ मालवदेश रहै घर जाको ॥ षेती वणिज जीविका ताको ॥ ६ ॥ क्रोधवंत लोभी अरु कामी ॥ विप्रनके अपजसको नामी ॥ जाकें होइ द्रव्य अधिकाई ॥ अरु जो नहिं देही नहिं षाई ॥ ७ ॥ आपनकौं पीडा उपजावै ॥ पुत्रादिक षानें नहिं पावे ॥ देवपितर अतिथी नहिं पोषै ॥ बैनहुकों न कदे संतोषै ॥ ८ ॥

सो कदरज एसो द्विज होई ॥ तातैं नीचौ और न कोई ॥ तातैं सो कदरज द्विज भयौ॥सब जगमें जिन अपजस लयौ ॥ ९ ॥ ज्ञाति अतिथि बंधव निज तनकौं ॥ इनहीं हेत न षरचै धनकौं ॥ पुत्रादिक कलपैं दुष लहैं ॥ ज्ञाति भृत्य दुर्बैननि कहैं ॥ १० ॥ पुत्रकलत्ररु कन्या भाई ॥ जहां लगे सबबंध सगाई ॥ ते सब द्रोह निरंतर करैं ॥ ताकौं अप्रिय सब आचरैं ॥११॥ ऐसो देषि पाप अति ताको ॥ जक्ष समान वित्तहै जाको ॥ धर्म काम दोनौ करि हीन ॥ दुहूं लोकके सुषतैं छीन ॥ १२ ॥ जिन हित पंचजज्ञ नित करैं ॥ सकल गृहस्थ दंडकौं भरैं ॥ तिन तब कीयौ देवनि कोप ॥ तातैं भयो विप्रधन लोप ॥ १३ ॥ कछू द्रव्य ज्ञातिनि हरलयौ ॥ चोरी भएहुतैं कछु गयौ ॥ कछू अग्नि लागेतें जर्‍यौ ॥ कछु धरणी मांहीं बीसर्‍यौ ॥ १४ ॥ कछू राज विग्रहतें गयौ ॥ यौं बहुभांति क्षीन सब भयौ ॥ जब ताकौ धन सब हरिलियौ ॥ तिरस्कार तब सबहि न कियौ ॥ १५ ॥ बहुत कष्टकरि धन उपजायौ ॥ सो नहिं दियौ न आपु न षायौ ॥ तातैं उपजी चिंताचित्त ॥ निशिदिन बस्यौ न्हदेमें वित्त ॥ १६ ॥ होवै तप्त षेदकौं पावै ॥ अस्रू कंठ बहुत विधि ध्यावै ॥ ऐसी विधि उपज्यौ वैराग ॥ जातैं सकल दुखनिकौ त्याग ॥ १७ ॥ तबसो विप्रवचन उचारै ॥ बहुत भांति आपुहि धिक्कारै ॥ अहो वृथामें कष्ट उपायौ ॥ आप आपकौं दुख उपजायौ ॥ १८ ॥ बहुतैं श्रम उपजायौ द्रव्य ॥ सुपन समान भयो सो सर्व ॥ नामें षरच्यौ नामैं षायौ ॥ नामें एकहु अंग लगायौ ॥ १९ ॥ द्रव्य कदरजको है कछु जे तो ॥ एकहु अर्थ न आयौ ते तो ॥ ना यह लोक नहीं परलोक ॥ केवल दुःखबढै भय सोक ॥ २० ॥ बहुत कष्ट सहि इहां उपायौ ॥ पुनि परलोक नरकमैं जायौ ॥ परम जस

स्विनको जस सुद्ध ॥ अरु जे पंडित ज्ञानप्रबुद्ध ॥ २१ ॥ सकल गुणिनके हैं गुण जे ते ॥ लोभ लेशतें नासें ते ते ॥ जेसें रूपवंत अति कोई ॥ केहू अंगहीन नहिं होई ॥ २२ ॥ सेत कुष्टको छटिको एक॥मेटे गुण अरु रूप अनेक॥यों थोरोहू होवे लोभ॥मेटे सकल रूप गुणसोभ ॥ २३ ॥ जबते धनको साधन करै॥वृद्धिहेत उद्यम विस्तरै॥तब ते त्रास शोक भय लहैं ॥ चिंता अग्नि निरंतर दहै॥२४॥सिद्ध भये अरु रक्षित भोग॥नाश लगे नहिं सुख संजोग॥चोरी हिंसा मिथ्या दंभ॥काम क्रोधविशमर्णा थंभ ॥ २५ ॥ वैररु गर्भस परधा भेद ॥ अप्रतीति चिंता भय खेद ॥ ए पंद्रह जब होइ अनर्थ ॥ तब तिनहूतें होवे अर्थ ॥ २३ ॥ तातें परम अनर्थ कहावे ॥ भलोचहे सो दूरि बहावे ॥ अर्थनाम सुनि भूले लोक ॥ बिन बिचार पावें भयसोक ॥ २७ ॥ पुत्रकलत्र बंधु अरु भाई ॥ मातपिता हित सजन सहाई ॥ द्रव्यहेत सबकरें विरुद्ध ॥ आपु आपुमें ठानें जुद्ध॥२८॥ द्रव्य काज अतिक्रोधहि करैं ॥ तिनकौं मारैं आपुनि मरैं ॥ धनहित प्रीय प्राण छटिकावैं ॥ आपुहि मूढ नरकमैं जावैं ॥ २९ ॥ जाकौं देव बहुत विधि ध्यावैं ॥ परि ऐसो नरदेह न पावैं ॥ सो नर तन तामें द्विजदेह ॥ करुणामय हरिजीको गेह ॥ ३० ॥ ताकौं पाइ अर्थ नहिं साधै ॥ सब तजि हरिकौं नहिं आराधै ॥ महा अनर्थ अर्थकौं गहै ॥ सो भवसिंधु आपुतें वहै ॥ ३१ ॥ तातैं दूजो नहिं मतिमंद ॥ परे दुःखमैं तजि आनंद ॥ देवपितर ऋषि भूत सहाई ॥ पुत्रकलत्र आपुहित भाई ॥ ३२ ॥ धनाहि पाइ जो इनहि न पोषै ॥ औरनकों नहिं संतोषै ॥ सो सब त्यागि नरकमैं जावै ॥ तहां मूढ नानादुख पावै ॥ ३३ ॥ सो तन धनमें ब्रथा गमायो ॥ भवदुषतें नहिं आप बचायो ॥ जाहि पाइ बुधि ऐसी करै ॥ जातें बहुरि न जनमें मरे ॥ ३४ ॥

सो नर तनमैं व्रथा गमायौ ॥ छांड्यौ अर्थ अनर्थ उपायौ ॥ वय बल आयु सकल मम गए ॥
नषशिख वृद्ध अंग सब भए ॥ ३५ ॥ अबमें अर्थ कौंनविधि साधौं ॥ दुराराध्य हरिकौं
आराधौं ॥ भईजे अनर्थ सब जानै ॥ तेऊ क्यौं आरंभनि ठानैं॥३६॥छोंडे अर्थ अनर्थ उपावैं ॥
क्यौं सब आपु आपु दुखपावै ॥ परिए कोई नहिं स्वतंत्र ॥ सकल देखियत हैं परतंत्र ॥ ३७ ॥
ते जाकी मायाकरि मोहे ॥ नट बाजीके सम सब सोहे ॥ भईसो प्रभुबडो वरिष्ठ ॥ ब्रह्माआदि
सकलकौ इष्ट॥ ३८ ॥ जे धन अरु जे धनके दाता ॥ जे कामद अरु कामविख्याता ॥ अरु बहु
धर्म कर्महें जे ते ॥ मातपिता सुषदाई ते ते ॥ ३९ ॥ कहो कहांतें हित आचरै ॥ मृत्यु ग्रस्ततें
नहिं परिहरैं ॥ कालरूप शत्रुहै जाकौं॥कहौ कहाको सुषहै ताकौं॥४०॥परिजे दीनबंधु भगवान॥
करुणासागर परमनिधान ॥ तिनहीं मोकौं करुणाकरी ॥ जातें मम उर ऐसी धरी ॥ ४१ ॥
भवसागरतें तारै जाकौं ॥ दे वैराग नावही ताकौं ॥ तातें मोहि दियो वैराग ॥ मेरे प्रगटे
पूरण भाग ॥ ४२ ॥ अब जो आयु होइ कछु मेरौ ॥ ताकरि भजन करौं हरिकेरौ ॥ यातनके
गुण सकल निवारौं ॥ मनतें सकल कामना टारौं ॥ ४३ ॥ सकल साधु अनुमोदन करैं ॥
तथा अस्तुयौं कहि उच्चरैं ॥ जदपि आयु थोरोहै मेरौ ॥ तोहू हरिकौ पद अतिनेरौ ॥ ४४ ॥
नृपखट्वांगज बहि हरिध्यायौ ॥ एक मुहूरतमें हरिपायौ ॥ तातें प्रभुसम कोई नाहीं ॥ जनकौं
प्रगट होत फल मांहीं ॥ ४५ ॥ मन बच क्रम अब ताकौं भजौं ॥ दूजी सकल कामना तजौं ॥
ऐसो निश्चय मनमैं धर्‍यौं ॥ भिक्षुक भयो सकल परिहर्‍यो ॥ ४६ ॥ सीतल हृदय त्रषा सब
त्यागी ॥ निश्चल भयो विप्र बडभागी ॥ अहंकार ममता कछु नाहीं ॥ एकाकी विचरै भुव

मांहीं ॥ ४७ ॥ इंद्रिय प्राण वचन मन गह्यौ ॥ अंतर बाहिर संगहि दह्यौ ॥ आपुहि काहू कौं न लखावे ॥ भिक्षाहेत ग्रहनमैं आवे ॥ ४८ ॥ संसकार नहिं तनकौ जाकौं ॥ जीरण वस्त्र टूक तन ताकौं ॥ भिक्षुक वृद्धविप्रकों जोवैं ॥ तब बहु दुष्ट घातकी होवैं ॥ ४९ ॥ केई ताकौ दंड छुडावैं ॥ केई पात्र षोंशले जावैं ॥ केई लहैं कमंडलु करतैं ॥ केई निकशन देइ न घरतें ॥५०॥ केई धूलि भीखमैं डारैं ॥ केई मूढ क्रोधकरि मारैं ॥ केई आसनकौं ले भागैं ॥ उरधहिकर केई पग लागैं ॥ ५१ ॥ केई कंथा कौ परिहरैं ॥ मारु मारु बानी उच्चरैं ॥ केई खोशलेइ जपमाला ॥ केई वस्त्र जाहिले बाला॥५२॥केई आनि आनि करि देवैं ॥ केई खोंसि खोंसि पुनि लेवैं ॥ केई भीख अन्नले जाहीं ॥ भोजन करणें पावे नाहीं ॥ ५३ ॥ केई तनमैं थूकें मूतें ॥ केई निंदाकरैं बहूतें ॥ केई काननि लागि पुकारैं ॥ केई सीस धूलि जल डारैं ॥ ५४ ॥ केई मौन छुडाइ बुलावैं ॥ केई बोलत मौन गहावैं ॥ केई ताहि बांधि करि राखैं ॥ जान न पावै केई भाखैं ॥ ५५ ॥ केई करैं बहुत अपमान ॥ निंदैं बहुविधि मूढ अजान ॥ यहहै चोर जान नहिं पावै॥ दिन देखे निशिचोरी आवै ॥ ५६ ॥ याकौं छीन भयोहै वित्त ॥ तातें यहहै व्याकुलचित्त ॥ सकल कुटंब याहि परिहऱ्यौ ॥ जीवन काज भेष यह धऱ्यौ ॥ ५७ ॥ देखो यह केसो है मोटो॥ महाप्रबल अंतरको खोटो ॥ देखो हम पचिहारे केते ॥ परियाके भेदें नहिं ते ते ॥ ५८ ॥ धीर जवंत अडिग यह एसौ ॥ पवन प्रचंड मेरु गिरि जेसौ ॥ याके जानि न हम कछु कह्यौ ॥ बक ज्यौं ध्यान मौन गहिरह्यौ ॥ ५९ ॥ यौंकरि क्रोध बंधले डारैं ॥ काठ मांहिदे ऊपर मारैं ॥ हांसी सहित बीनती करैं ॥ हितसं विष बनानि उच्चरैं ॥ ६० ॥ एमांतिक दुख भाषे जेसें ॥ देवात्मक

पुनि पावैं तसैं ॥ सीत उष्ण वरषादिक दैविक ॥ जरा रोग आदिक जे दैहिक ॥ ६१ ॥ एसैं बहुविधि पावे दुःख ॥ कदे न आवे तिनकों सुख ॥ परिसों कदे न मनमैं आनै ॥ अपनें करे कर्म सब जानै ॥ ६२ ॥ तब तिन भाषी गाथा एक ॥ हृदये धार्यो परम विवेक ॥ भिक्षुक कहे वचन तब जेई॥ मैं तोसों भाषतहों तेई ॥ ६३॥ ॥भिक्षुक उवाच॥ ॥चौपाई॥ सुखदुखदा यक लोग न एते ॥ अरु नहिं देह नहीं सुर जेते ॥ नाहीं ग्रह नहिं कर्म न काल ॥ ए समस्त हैं मनके ख्याल ॥ ६४ ॥ जात चक्रमें मनहि फिरावै ॥ जीव महादुख मन कर पावैं ॥ मनहीं करै विषयनिको भोग ॥ तातैं होई कर्म संयोग ॥ ६५ ॥ होवै सत रज तम विस्तार ॥ जातें जोंनी विविध प्रकार ॥ तातैं दुःख निरंतर लहै ॥ देह जोगतें निसदिन दहै ॥ ६६ ॥ तातैं दुख दायक मन एक ॥ संत कहें यह परम विवेक ॥ आप आतमा सदा अनीह ॥ परिसो मनकरि करे समीह ॥ ६७ ॥ मनसों बंध अविद्या माहीं ॥ जातें बंधन जाने नाहीं ॥ विष समान विषय निकों खावे ॥ ताके संग जीव दुष पावै॥ ६८ ॥ यहहै जीव ब्रह्मको अंग ॥ याकों संसृति मनके संग ॥ मनकरि रहित ब्रह्म सुखरासी ॥ सदा एक रस परमप्रकासी ॥ ६९ ॥ तातें बंधन मनहीं करैं ॥ संग आतमा जनमैं मरैं ॥ जब मन रहित जीव यह होई ॥ तब शिव जीव भेद नहिं कोई ॥ ७० ॥ तातैं जिन अपनों मन गह्यौ ॥ ताही कछु करणो नहिं रह्यौ ॥ अरु जो मन बशकीनो नाहीं ॥ तो श्रम सकल वृथाहीं जाहीं ॥ ७१ ॥ सुवर्णादि देवे बहुदाना ॥ एकादशि आदी व्रत नाना ॥ अपने अपनें धर्मनि करे ॥ सम दम जप नियमनि विस्तरे ॥ ७२ ॥ विद्या वेद पढे उच्चरै ॥ औरे सकल धर्म विस्तरै ॥ परि जो नाहिं वश मनएक ॥ तो मिथ्या आचरण

॥७६॥

अनेक ॥ ७३ ॥ मनवस काज कहे सब ते ते ॥ विधि आचरण वेदमें जे ते ॥ मननिग्रह सो उत्तम ज्ञाना ॥ मननिग्रह बिन सब अज्ञाना ॥ ७४ ॥ तातैं मन जो निग्रह करै ॥ सो विधि काहेकौं बिस्तरै ॥ तातैं विधिहूतैं कछु नाहीं ॥ सब बिधिहै मननिग्रह माहीं ॥ ७५ ॥ अरु जो बस नाहीं मनएक ॥ तो विधि कीने वृथा अनेक ॥ सब इनको फल मनबस करणो ॥ मनवश काज सकल आचरणो ॥ ७६ ॥ मनकौं बसहि करे जो कोई ॥ इंद्रिय गण आपें वसहोई ॥ मन वश विन इंद्रिय वशनाहीं ॥ करि करि जतन बहुत मरिजाहीं ॥ ७७ ॥ मनवश भए सकल बसदेवा ॥ तीनोभवन करेंता सेवा ॥ सकल बलिनतें मन बलबंत ॥ मारिकरे सबहिनकौं अंत ॥ ७८ ॥ मनकौं कोई जीति न शकै ॥ बहुत उपाय करि करि थकै ॥ ऐसें मनकौं जीतै कोई ॥ सबहिन माहि प्रबलहै सोई ॥ ७९ ॥ सो दुर्जय मनबस नहि करैं ॥ बाहिर जुद्धादिक बिस्तरैं ॥ बैरी मित्र बहुत विधि ठानैं ॥ अनहित अरु हित तिनतैं जानैं ॥ ८० ॥ ते अतिमूढ सुषी नहिं होवैं ॥ मनजीते बिन जुग जुग रोवैं ॥ दुःखरूप जड मिथ्या तनकौं ॥ आपमानि करि बांध्यौ मनकौं ॥ ८१ ॥ तब बहु किये देह संबंधी ॥ तिनसौं मूरष ममता बंधी ॥ यहमें ए समस्तहैं मेरे ॥ मित्र शत्रु ठानै बहुतेरे ॥ ८२ ॥ तातैं मूढ महादुष पावै ॥ उपजि उपजि पुनि मरि मरि जावै ॥ तातैं दुषकौं मनहीं कारण ॥आतमकौं भव जलमें डारण॥८३ ॥ अरुजो सुख दुख दाता एते॥मोकौं दुख देतेहैं ते ते॥तेसब सुखदुख मोकों नाहीं ॥ देह एक सब आपुन मांहीं ॥८४॥ते सुखदुख देहहि सब पावै॥आतमके कछु निकट न आवै॥अरु जद्यपि मनके संजोग ॥ करे जीव ए सुखदुख भोग ॥ ८५ ॥ ताहूमें दुख देवौं काकौं ॥ रूप सकल मम देखौं जाकौं॥

॥७६॥

आप आपकौं क्यौं दुखदीजे ॥ अपनौ अहित आपक्यौं कीजैं ॥ ८६ ॥ या तनमें मैंही दुख पावौं ॥ अरु तिनहींमैं क्यौं उपजावौं ॥ दंतनि भूलि जीभ काटीजैं ॥ तो फिरि तिनहिं कहा दुष दीजैं ॥ ८७ ॥ दंतनि अरु जिभहीं दुख देई ॥ सोतो सकल आपकौं लेई ॥ इंद्रिय अधिपति दैवत जे ते ॥ जो दुखदानि होइ सब ते ते ॥ ८८ ॥ तोहूं आपको पक्यौं कीजैं ॥ पर उपाधि क्यौं सिरपर लीजैं ॥ करदीजैं मुख मांहि असनसौं ॥ तो मुख काटे करहि दसनसौं ॥ ८९ ॥ तो पावक अरु वासव जानैं ॥ राग दोष भावे त्यौं ठानैं ॥ यौं सब इंद्रियके जो देवा ॥ करैं आपमें दुख अरु सेवा ॥ ९० ॥ ते ते सब जानैं त्यौं करैं ॥ ज्ञानी अपनैं मन नहिं धरैं ॥ अरु जो सुखदुख दाता आप ॥ दूजैकौं कछु नाहींहै पाप ॥ ९१ ॥ तो यह सब आपनौ स्वभाव ॥ अरु किनको आनियें अभाव ॥ अरु आतममें सुखदुख नाहीं ॥ उपजैं ज्ञान सकल मिट जाहीं ॥ ९२ ॥ आप भूलि सुखदुख करिलीनैं ॥ सब मिटि जाइ आपकौं चीनैं ॥ तातैं दोष कौंनकौ धरियैं ॥ जो अपनो मनवश नहिं करियैं ॥ ९३ ॥ अरु जो ग्रह सुखदुखके दाता ॥ लोकवेद कहियैं विष्याता ॥ तो आपन क्यौं क्रोधहि कीजैं ॥ परको दुःख आप क्यौं लीजैं ॥ ९४ ॥ ग्रह आकाश मांहिहैं जे ते ॥ द्वादश रासि बसैं सब ते ते ॥ रागद्वेष आपनमें करैं ॥ तिनकौं सुखदुख नितहीं परैं ॥ ९५ ॥ जां जां रासि जन्मजे पावैं ॥ तिनकी संगति सुखदुख आवैं ॥ तातैं आतम सदा अजनमा ॥ वार वार देहनिकौं जनमा ॥ ९६ ॥ तातैं सुखदुख तनहीं पावैं ॥ निकट आतमाके नहिं आवैं ॥ अरु जद्यपि संगत दुषपरैं ॥ आपु क्रोध तो कांसौं करैं ॥ ॥ ९७ ॥ करणहार ते ग्रहही जानैं ॥ राग दोष भावे त्यौं ठानैं ॥ अरु दुषदानि होइ जो कर्म ॥

ते तो सकल आपही भर्म ॥ ९८ ॥ यह जडदेह कर्मता माहीं ॥ आतम निकट देहहीं नाहीं ॥ आतम चेतन ज्ञान स्वरूप ॥ परे सकलतें परम अनूप ॥ ९९ ॥ तातें क्रोध कौंनको करौं ॥ काकौ दोष हृदेमैं धरौं ॥ अरु जो दुःख कालतें कहियैं ॥ तो आपनमैं कदेन लहियैं ॥ १०० ॥ तनहीं कालहुतें दुषपावै ॥ ते आतमके निकट न आवै ॥ काल आतमा ब्रह्मस्वरूप ॥ देह विलक्षण सकल अनूप ॥ १०१ ॥ तातें कालहुतें दुष नाहीं ॥ कालभयानक देहहि माहीं ॥ ज्यौं ले अग्नि अग्निमैं डारे ॥ सो वह अग्नि न अग्निहि जारे ॥ १०२ ॥ अरु जौंहि मही कौकन लीजें ॥ ले बहुतें हेमहिमे दीजें ॥ ताहिम अंस सीतभय नाहीं ॥ जद्यपि रहै सदाता माहीं ॥ १०३ ॥ यौंहि एक आतमा अकाल ॥ सुखदुखादि देहनिके ष्याल ॥ आतम सबतें सदा अतीत ॥ इच्छारहित अनीह अभीत ॥ १०४ ॥ अरु आतमा परेतें परे ॥ द्वंद्व जहां लौं ते सब उरे ॥ कोई आतमकौं नहिं जानै ॥ सुखदुख कौन कौनकौं ठानै ॥ १०५ ॥ सुष अरु दुःष जहांलौं जे ते ॥ एक प्रकृतीके सब ते ते ॥ सो प्रकृति आप जडरूप ॥ चेतन आतम ब्रह्मस्वरूप ॥ १०६ ॥ केवल मानिलियौ संसार ॥ सुष दुष तन मन सकल असार ॥ मोह निशातें जागे जे ते ॥ निरभय भए सकलही ते ते ॥१०७॥ तातें अबमें भय नहिं आनौं॥ आपहि परे सकलतें जानौं ॥ हरिचरणनि की सेवाकरौं ॥ एसी विधि भवसागर तरौं ॥१०८॥ जेइ जे आए हरिशरण ॥ तिनहीं तिन पाए हरिचरण ॥ तातें मैं हरिचरणनि भजौं ॥ मन क्रम वचन आन सब तजौं ॥ १०९॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ उद्धव यौं द्विजभयौ विरक्त ॥ तन-हूंमें न रह्यौ अनुरक्त ॥ बहुत असाधुनि बहुत डिगायौ ॥ परिसो कछू न मनमें ल्यायौ ॥११०॥

ए भाष अष्टा दश श्लोक ॥ करि विचार मेट्यौ भयशोक ॥ तातैं उद्धव सुषदुष दायक ॥ आतमकों कोई नहिं लायक ॥ १११ ॥ सुष दुष दाता नाहीं कोई ॥ जो तो कहूं द्वैत कछु होई ॥ सुषदुष भ्रमतें जानें सकल ॥ आतम एक अजन्मा अकल ॥ ११२ ॥ भ्रम छूटे दूजाको नाहीं॥ मेरो रूपमिले मो मांहीं ॥ जब सुषदुष मिथ्याकरि मानै ॥ मान अमान हृदे नहिं आनै॥११३॥ धीरज धरि ममचरणनि भजै ॥ देहादिककी आसा तजै ॥ तब भवसागरकौं तरि जावै ॥ मेरौ निजानंद पद पावै ॥ ११४ ॥ तातैं उद्धव मन वच कर्म ॥ सकल द्वैतकौं जानौ भर्म ॥ सबतें मनकौं निग्रह करौ ॥ निश्चलकरि ममचरणनि धरौ ॥ ११५ ॥ याहीकौं कहियतुहे जोग॥ जाकरि होवे मम संजोग ॥ अरु जो या गाथाकौं धारै ॥ सुने सुनावे सदा विचारै ॥ ११६ ॥ तिनकै निकट द्वंद्व नहिं आवै ॥ अंतकाल ममचरणनि पावै ॥ तातैं याकौ सदा विचारौ ॥ मेरो बल अंतरगत धारौ ॥ ११७ ॥ दोहा ॥ यह उद्धव तोसों कह्यो, मन संजम दृढ ज्ञान ॥ अब भाषतहौं सांष्यकौ, सुनत मिटे ज्यों आन ॥ ११८ ॥

॥ इति श्रीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधेश्रीभगवदुद्धवसंवादेभाषायांत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दोहा ॥ ॥ सांष्य योग करिकै कह्यौ, मनको मोह सुदहन ॥ चिंतातैं सब योनिमैं, आतम आवा गवन ॥ १ ॥ भेदभाव जिनके हृदय, श्रीधर भेद मिटाय ॥ कृष्णकह्यौ उद्धव प्रती, चौबीशैं अध्याय ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच॥

चौपाई ॥ उद्धव तोसौं सांष्यहि कहौं ॥ द्वैत भर्म श्रमही विन दहौं ॥ जाके सुनतहि छूटै द्वैत॥ देषै एक ब्रह्म अद्वैत॥१॥ प्रथमहि महापुरुष जे भये ॥ ते यह सांष्य प्रगट करि गये ॥ मुक्ति सांष्य जानतहीं होई॥सांष्य विना नहिं छूटे कोई॥२॥सोई सांष्य कहौं में तोसौं॥निश्चल मन ह्वै सुनियो मोसौं ॥ उद्धव प्रथमहु तोमें एक ॥ मोबिन कछूनहु तौ अनेक ॥ ३ ॥ तबमें प्रकृति आपतें करी ॥ जड चेतन द्वै विध विस्तरी ॥ तिन दोनोंतें उपज्यौ पुत्र ॥ महत्तत्त्व कहियतुहे सूत्र ॥ ॥ ४ ॥ एक प्रकृतितें गुण त्रय कीने ॥ लक्षण भिन्न तिहूंकौं दीने ॥ सूत्रहुतें त्रय विधहंकार ॥ भरमावनकौ बडो विकार ॥ ५ ॥ पंचभूत जे पृथिवी आदी ॥ पंचो तन्मात्रा शब्दादी ॥ तामस अहंकारतें एते ॥ राजसतें इंद्रिय सब ते ते ॥ ६ ॥ सातिकतें मन अरु सबदेवा ॥ जिनकौं पाइ भए बहुभेवा ॥ तब सबहिनमें प्रेरि मिलायौ ॥ तिन सबहिन मिलि अंड उपायौ ॥ ७ ॥ अंड सलिलमांही थिर कऱ्यौ ॥ तामें में निजअंशहि धऱ्यौ ॥ आदिपुरुष सो मेरो रूप ॥ त्रिगुण नियंता ज्ञान स्वरूप ॥ ८ ॥ तासु नाभतें उपज्यो पद्म ॥ तामें सकल भुवनको सद्म ॥ पद्महुतें तब ब्रह्मा भयो ॥ वरले मोंसों जग निरमयो ॥ ९ ॥ राजस अधिपति भयौ विरंच ॥ तातैं प्रगट्यौ सकल प्रपंच ॥ लोकपाल लोकनसौं सारे ॥ तीनोलोक त्रिविध विस्तारे ॥ १० ॥ स्वर्गलोक देवनिकौं दियौ ॥ अंतरिक्ष भूतनि ग्रह कियौ ॥ भूमिलोकमें मानव राषे ॥ असुर अहिनकों नीचे भाषे ॥ ११ ॥ मै हरलोक जन तप सतलोक ॥ चाऱ्यौं में सिद्धनके ओक ॥ जे त्रिगुण कर्मनिकौं करै ॥ ते तीनो लोकनिमैं फिरै ॥ १२ ॥ तप अरु जोग तथा संन्यास ॥ इनतें तिन चारौंमें वास ॥ भक्तिहुतें जावें वैकुंठ ॥ जो सबहिन करि सदा अकुंठ ॥ १३ ॥

प्रबल कालरूपहै मेरा ॥ जगताहि सकल भक्ष्य तिनकेरौ ॥ सत्यलोकहूं मैं जो जावै ॥ काल तहांऊ ताकौं खावै ॥ १४ ॥ कबहु जाइ कष्टकरि ऊंचैं ॥ कबहूं काल ढहावत नीचै ॥ ऐसी विधि सब भरमत रहैं ॥ जन्मैं मरैं बहुत दुषसहैं ॥ १५ ॥ उत्तम मध्यम नीचे जे ते ॥ छोटे बडे बहुत विधि के ते ॥ जे कछु जहां लगें आकार ॥ ते सब प्रकृति पुरुष विस्तार ॥ १६ ॥ प्रकृति पुरुष विन और न कोई ॥ इंद्रिय मन गोचर है जोई ॥ प्रथमहि निराकारमैं एक ॥ तातैं भौं आकार अनेक ॥ १७ ॥ अरु पुनिमैं हिरहोंहों अंत ॥ तातें अबहूं मेरे वरतंत ॥ जाकी आदि अंतहै जोई ॥ ताके मध्यहुमें पुनि सोई ॥ १८ ॥ ज्यौं माटीतें बहु घटभये ॥ अंत फूटि माटी मिलि गये ॥ माटि आदि माटीहै अंत ॥ त्यों माटी मय धव वरतंत ॥ १९ ॥ ज्यौं काचनकै बहु आभरना ॥ आदि अंत एकही सुवरना ॥ त्योंही मध्य और कछु नाहीं ॥ नामरूप मिथ्या हुइ जाईं ॥ २० ॥ त्यौं जब देषैं तजि व्यवहार ॥ तबमेंहीहो सब विस्तार ॥ आदिरु अंत मध्य में एक ॥ मिथ्या नामरु रूप अनेक ॥ २१ ॥ मायातें महत तहंकार ॥ तिनतें होइ सकल विस्तार ॥ बहुरौ नास सकलकौ होई ॥ महदादिक निरहैं नहिं कोई ॥ २२ ॥ प्रकृतिमूलयौं पुरुष अधार ॥ अरु जो काल सकल करतार ॥ मेरीशक्ति तीनयौं जानौ ॥ मोतें द्वैत कदै मतमानौं ॥ २३ ॥ याविधि चल्यौ जाइ विस्तार ॥ नदीप्रवाह तुल्य संसार ॥ परमातमकी इच्छा जौलौं ॥ वरतें सकल निरंतर तोलौं ॥ २४ ॥ बहुरौं प्रलय सकलकौ होई ॥ सूक्षम थूल रहै नहिं कोई ॥ महावलिष्ठ शक्ति ममकाल ॥ ताकौ सकल जगत यह ख्याल ॥ २५ ॥ काल विनाशे सकल ब्रह्मंड ॥ कितहूं कछून राषे खंड ॥ अनावृष्टि होवै शतवर्ष ॥ तातैं देहनिको

आकर्ष ॥ २६ ॥ छोटे बडैं देहहें जे ते ॥ लीन अन्नमें होवे ते ते ॥ अन्न भूमिमें होवै लीन ॥ भूमि गंधमिलि होवै छीन ॥२७॥ गंधलीन होवै जल माहीं ॥ जल सूक्षम रसमांहि समाहीं ॥ रस तब तेजमाहि मिलिजाई ॥ तेज रूपमें जाइ समाई ॥ २८ ॥ रूप पवन मांही मिलिरहै ॥ पवनहि तब स्पर्श गुणगहै ॥ स्पर्श लीन होई तब गगन ॥ गगन शब्दमें होवे मगन ॥ २९ ॥ शब्दमिलै तामस हंकारा ॥ सो अरु इंद्रिय दश परकारा ॥ ते सबमिलि राजस हंकार ॥ मिलि करि सकलहोइ संहार ॥३०॥ अहंकार महत्तत्त्वहि मिलै ॥ प्रकृतितबै महत्तत्त्वहि गलै ॥ देवरु मन सात्विक हंकार ॥ मिलिकरि सकलहोइ संधार ॥ ३१ ॥ प्रकृतिकालमें होवै लीन ॥ कालपुरुष मिलि होवे छीन ॥ पुरुषमिलै पुरुषोत्तम मांहीं ॥ पुरुषोत्तम कहुजावै नाहीं ॥ ३२ ॥ भेदाभेद रहित तब एक ॥ नित्यानंद द्वैत वितरेक ॥ चेतन निर्मल ज्ञानस्वरूप ॥ पूरण अक्षय परमअनूप ॥ ३३ ॥ तातैं उद्धव मिथ्या द्वैत ॥ आदिरु अंतमध्य अद्वैत ॥ जल बुदबुद सम सब आकार ॥ उत्तम मध्यम विविध प्रकार ॥ ३४ ॥ एसें सदा विचारे कोई ॥ ताको कौंनभांति भ्रम होई ॥ रवि उद्योतरहै तम कैसें ॥ नदी मध्य दावानल जेसें ॥ ३५ ॥ यहमें भाष्यो सांख्यप्रकार ॥ सकल द्वैत उतपति संहार ॥ जाके ज्ञान न संसेरहै ॥ अहंकार दृढ ग्रंथिहिदहै ॥ ३६ ॥ छोडेरूप अरूप समावै ॥ जातें बहुरिन दुखकौं पावै ॥ तातैं याकौं सदा विचारौ ॥ मोकौं जानि आपकौ तारौ ॥ ३७ ॥ ॥ दोहा ॥ उद्धव यह तोकौं कह्यौ, सांख्यज्ञान विचार ॥ अब गुणवृत्तिनको कहौं, भिन्न भिन्न परकार ॥३८॥ इति श्रीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधेश्रीभगवदुद्धवसंवादेभाषायांचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ॥

॥ दोहा ॥ पचवीशे अध्यायमें, निर्गुणता सुविवेक ॥ चितमें वरतै तीनगुण, गुण की वृत्तिअनेक ॥ १ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ उद्धव अब भाषों गुणवृत्ति ॥ जिनकौं जानैं लहै निवृत्ती ॥ जागुणतें जो लक्षणहोई ॥ भिन्नभिन्न भाषों सो सोई ॥ १ ॥ सम दम क्षमा विवेक स्वधर्म ॥ लज्जा मान न करै विकर्म ॥ सत्य दया नहिं भूलै शुद्धी ॥ उत्तम मारगमें थिर बुद्धी ॥ २ ॥ जस अरु सोभा धीरजवंत ॥ परउपकार सदावरतंत ॥ बुद्धी आस्तिक नित निहसंग ॥ संतोषी अरु दान अभंग ॥ ३ ॥ कोमल विनय दीन चतुराई ॥ सीतल हृदय सकल सुषदाई ॥ एसी भांति बहुत संपत्ती ॥ सात्त्विक गुणकी जानो वृत्ती ॥ ४ ॥ आतम इन सबनीतें न्यारा ॥ चेतनकरि वरतावनहारा ॥ भोगाशक्ति हृदे बहुकाम ॥ धन अभिलाषा जस अभिराम ॥ ५ ॥ तृष्णा हास गर्व बलवंत ॥ रिपुमित्रादिक भेद अनंत ॥ करि कामना भजे सबदेव ॥ परमारथको लहै न भेव ॥ ६ ॥ बहु आरंभनिमैं उत्साह ॥ हृदय कठोर सदा अतिचाह ॥ बहुत वृत्ति राजसकी एसी ॥ ए तुमसौं भाषीमें जेसी ॥ ७ ॥ हिंसा क्रोध लोभ अधिकाई ॥ जहँ तहँ दीनरु दंड झुठाई ॥ श्रम अरु कलह सोक अरु मोह ॥ निद्रा आलस भय परद्रोह ॥ ८ ॥ निशिदिन चिंता उद्यमहीन ॥ हृदये आशा भइ न छीन ॥ ऐसी बहु तामसकी वृत्ती ॥ जिनतें कदे न लहै निवृत्ती ॥ ९ ॥ उपजें ममता अरु हंकार ॥ तातें करें विविधव्यवहार ॥ ते सब मिलित गुणनिकी वृत्ती ॥ जिनतें बाढे बहुत प्रवृत्ती ॥ १० ॥ धर्मरु अर्थ काम अनुरक्ती ॥ श्रद्धा लोभ तथां आसक्ती ॥ धर्म प्रवृत्त परायण जे ते ॥ बहुत भांति

विस्तारे ते ते ॥ ११ ॥ वरतैं अपनै अपनै धर्म ॥ प्रिय ग्रहके सुख अरु ग्रहकर्म॥ ए सब मिलित गुणनिकी वृत्ती ॥ जिनतें बहुविधि होइ प्रवृत्ती ॥ १२ ॥ सम दम आदि जुक्त नर जोई ॥ सात्विक लक्षण कहियैं सोई॥राजस कामादिक अधिकार॥तामस क्रोधादीक विकार ॥१३॥ जब स्वधर्मसों मोकौं भजे ॥ दूजी सकल कामनातजै ॥ तिया पुरुष भावे सो होई ॥ सात्विक प्रकृति कहीजैं सोई ॥ १४ ॥ जब कामना हृदै धरिलेवै ॥ अपनें कर्मनि मोकौं सेवै ॥ यह स्वभाव राजसको कहियैं ॥ मुक्तिहेत कबहूं नहिं गहियैं ॥ १५ ॥ जब हिंसा हृदयेमें आनै ॥ तिनकर्मनि ममसेवा ठानै ॥ सो वह तामस प्रकृति कहावै ॥ तातैं मम सुष कदैन पावै ॥ १६ ॥ सत रज तम तीनौ गुण जेहैं ॥ जीवनिकौं बंधन सब तेहैं ॥ ते गुण मेरी आग्या करैं ॥ हातें मोहि भजे ते तरैं ॥ १७ ॥ चितहूंतें ऊपजें ए सकल ॥ इनकौं तजै आतमा अकल ॥ इनकौं छोडि रहै मोमांही ॥ बहुर्‍यो उपजे विनसे नाहीं ॥ १८ ॥ करि साधन रज तम परिहरै ॥ सात्त्विक गुणकी वृद्धिहि करै ॥ सात्विक सूरजवत परकास ॥ अतिसीतलज्यौं चंद विगास ॥ १९ ॥ सब कल्याण मूल सुषकारी ॥ निश्चल करण सकल दुषहारी ॥ तातैं धर्म ज्ञान सुष लहैं ॥ चिंता सोक मोह भयदहै ॥२०॥ जब सात्विक तामस नहिं रहै ॥ राजस आइ बसेरा गहै ॥ राजस रूप संग बल भेद ॥ तातें मान कर्म भय षेद ॥२१॥ जब सत रज ए छूटैं दोई॥ केवल एक तमोगुण होइ ॥ तबहि विवेक नास आवरना ॥ उद्यम रहितरु जडता करना ॥२२॥ तातें सोक मोहको वासा ॥ निद्रा आलस निशिदिन आसा ॥ जबछूटैं इंद्रियकी वृत्ती ॥ हृदये नहिं ईहा उतपत्ती ॥ २३ ॥ चित्त प्रसन्न सकल निहसंग ॥ सो सात्विक मम यहहै अंग ॥ जब

इंद्रिय तन मन अरु बुद्धी ॥ थिर नहिं रहै लहै नहिं सुद्धी ॥२४॥ ठानै विविध करम विस्तार॥ सो जानौ राजस अधिकार ॥ जब विकार मन बहुविधि गहै ॥ आसाबंध निरंतर रहै ॥ २५ ॥ सोक विषाद चेतनाहीन ॥ सो तामस उद्यम बलछीन ॥ जब उपजै सात्विककौ भाव ॥ तब सब होवें देव सुभाव ॥ २६ ॥ राजसतें असुरनकी वृत्ती ॥ भूतगणनिकी तम उतपत्ती ॥ सात्विकतें जागरणहि होई ॥ राजस पावै सुपना सोई ॥ २७ ॥ तामसहूंतैं सुषपति लहै ॥ ब्रह्मतुरीय निरंतर रहै ॥ सात्विक ऊर्ध्व लोकनी जावै ॥ राजस नर आदिक तन पावै ॥ २८ ॥ तामस नीचै थावर आदी ॥ याविधि भरमें जीव अनादी ॥ सात्विक वृद्धमान जो होई ॥ तामैं मरण लहै नर कोई ॥ २९ ॥ सो देवनिके लोकहि जावै ॥ राजसतें मरि नरतन पावै ॥ तामसतैं मरि नरकनि लहै ॥ तीनौं गुण तजि मोमें रहै ॥ ३० ॥ मेरेहेत कर्म जो करै ॥ तामें दूजो फल नहिं धरै ॥ सो वह सात्विक कर्म कहावै ॥ तातैं जीव महासुष पावै ॥ ३१ ॥ फल निमित्त मम कर्मनि ठानै ॥ ताकौं राजस कर्म बषानै ॥ हिंसाहेत करे ममकर्म ॥ सो तामसहै बडो अधर्म ॥ ३२ ॥ भेदरहित वह सात्विक ज्ञान ॥ देहभेद सो राजस जान ॥ बालक मूक तुल्य जो होई ॥ तामस ज्ञान कहीजैं सोई ॥ ३३ ॥ आतम देहरहित जो एक ॥ सौहै मेरो ज्ञानविवेक ॥ होई विरक्त वसे एकंत ॥ सात्विक कहै सो संत ॥ ३४ ॥ ग्रहमें कहिंये राजस वास तामस द्यूतादिक आवास ॥ थावर चल मम मूरति जहां ॥ निर्गुण वास कहीजैं तहां ॥ ३५ ॥ सात्विक कर्त्ता जो निहसंगी ॥ राजस कर्त्ता जो फलसंगी ॥ विधिकरि रहित तामसी कर्त्ता ॥ आसालागि कर्म विस्तरता ॥३६॥ आपहि मेटि रहै मम शरणा ॥ ताकौं सब निर्गुण आचरणा॥

सो जन निर्गुण कर्त्ता कहियैं ॥ ताके संग परमपद लहियैं ॥ ३७ ॥ जो निहकर्म आतमा जानै ॥ सकल जतनकी श्रद्धा ठानै ॥ सकल त्यागि निश्चल जो होई ॥ सात्विक श्रद्धा कहियै सोई ॥ ३८ ॥ राजस श्रद्धा ठानै कर्म ॥ तामस श्रद्धा करे विकर्म ॥ निर्गुण श्रद्धा मेरी भक्ती ॥ जातें मिटे सकल आशक्ती ॥३९॥ पंथ पवित्र विना श्रम आवै ॥ जामैं अपनो धर्म न जावै ॥ जातें उपजै नहीं विकार ॥ सो कहिये सात्विक आहार ॥ ४० ॥ षाटा मीठा तीषा षारा ॥ दुषदाइक राजस आहारा ॥ जो असुद्ध हिंसातें आवै ॥ सो तामस आहार कहावै ॥ ४१ ॥ ममजन अरु मेरो उच्चिष्ट ॥ सो निर्गुण भोजन अतिसिष्ट ॥ इंद्रिय सुष तृष्णादिक दहै ॥ तजि आरंभनि थिर ह्वै रहै ॥ ४२ ॥ आतमतें उपजे सुष जोई ॥ सातिक सुष कहियतुहै सोई ॥ इंद्रिय सुष राजसई गहिऐं ॥ निद्रा आलस तामस कहिऐ ॥ ४३ ॥ मेरे प्रेमभक्ति सुष जोई ॥ निर्गुण सुष कहियतुहै सोई ॥ द्रव्य देश फलकालरु ज्ञान ॥ कर्ता कर्म अवस्था दान ॥ ४४ ॥ श्रद्धा निष्ठा अरु आकार ॥ तिनौ गुण निर्मित विस्तार ॥ जो कछु कहौ सुनौ अरु देषौ ॥ मन अरु बुद्धि जहां लगि पेषौ ॥ ४५ ॥ सो सब प्रकृतिपुरुष विस्तरा ॥ त्रयगुणनि निर्मित सकल पसारा ॥ इनतें जीव लहे संसार ॥ त्रिगुण कर्ममय वारंवार ॥ ४६ ॥ जो इनतीनौं गुणनि निवारै ॥ चित्त आपनौ मोमैं धारै ॥ सो मेरो निर्गुण पदपावै ॥ बहुरौ या भवमें नहिं आवै ॥ ४७ ॥ यातें यह ऐसी नरदेह ॥ जाकरि मिटैं सकल संदेह॥ होवै प्रगट ज्ञान विज्ञान ॥ पावै मोहि मिटै सब आन ॥ ४८ ॥ तातैं पंडित सकल निवारै ॥ मोकों सेइ आपकौं तारै ॥ या विन सकल अपंडित जानौं ॥ ते ते आतमघाती मानौं ॥ ४९ ॥ सबहूंतैं होवै निहसंग ॥

सावधान पलपरै न भंग ॥ इंद्रिय देह प्राण मन जीतै ॥ मम चरचा दिनरन वितीतै ॥ ५० ॥ सकल सात्विकी संगति करै ॥ राजस अरु तामस परिहरै ॥ देहादिकतें निस्पृह होई ॥ आगै इच्छा करे न कोई ॥ ५१ ॥ मोमें धारे निश्चलबुद्धि ॥ तब पावै अंतरगत शुद्धी ॥ या विधिसात्वि कहू छटिकावै ॥ तातैं लिंग शरीर मिटावै ॥ ६२ ॥ लिंग शरीर मिटे भव तजै ॥ निर्मलरूप आप नौ भजै ॥ ऐसें होइ मोहिकौं जानैं ॥ बाहिर भीतर द्वैत न मानै ॥ ५३ ॥ मोमें मिलि मोहींमें रहै ॥ बहुरो काल अग्नि नहिं दहै ॥ रहै निरंतर मेरे संग ॥ तातें कदे नं होवै भंग ॥ ५४ ॥ ॥ दोहा ॥ ए उद्धव तोंसो कही, तीनोगुणकी वृत्ति ॥ अब औरै ज्ञानहि कहौं जातें होइ निवृत्ति ॥ ५५ ॥ इतिश्रीभाग० म० एकादशस्कंधेश्रीभगवदुद्धवसंवादेभाषायांपचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

दोहा ॥ योगभ्रंश योगिनकौं, होत कुसगंति पाय ॥ कहै सुसंगतिकारणे छब्बीसें अध्याय ॥ १ ॥ जाय जोषिता संगतें, योगधारणा ध्यान ॥ श्रीधर सदाबिचारिये, एलगीत आष्यान ॥ २ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ उद्धव यह नरतनहै ऐसो ॥ सकल सृष्टिमें नाहीं जैसो ॥ या तनकरि ममज्ञानहि पावै तातैं भवतजि मोमें आवैं ॥ १ ॥ तातैं ऐसै तनकौं पाई ॥ मो मिलनैंको करे उपाई ॥ अंतरमांही मोहि विचारै ॥ औरै सकल वासना ठारै ॥ २ ॥ मम भक्तनके लक्षण जानै ॥ त्यौं त्यौं आपु आपुमें ठानै ॥ अनायास तब मोकौं पावै ॥ काल व्याल बहुरो नहिं पावै ॥ ३ ॥ तब माया गुण

मिथ्या जानै ॥ मेरो ज्ञान पाइकरि मानै ॥ यों ह्वै रहै देहहुंमांहीं ॥ तोहूं फेरलिपै कहुं नाहीं॥४॥ परि जद्यापि होवै ऐसोहूं ॥ करे असाधु संग नहिं तोहूं ॥ शिश्नरु उदर परायण जे ते ॥ मन क्रम वचन त्यागिये ते ते ॥ ५ ॥ करै असाधु एकको संग ॥ तोहूं ज्ञान ध्यानको भंग ॥ असत संग नर जबहीं करै ॥ ताके संग नरकमें परै ॥ ६ ॥ जैसें अंध अंधके संग ॥ कूपपैर होवै सुषभंग॥ याकी गाथा भाषौं एक ॥ जातैं उपजै परमविवेक ॥ ७ ॥ जब उर्बसी बिरह तनदह्यो ॥ सोक मोह सागरमें बह्यो ॥ तब पुरुरवा भाषी जोई ॥ तोसों भाषैं गाथा सोई ॥ ८ ॥ राजा पुरूरवा चक्रवर्त्ती ॥ ताकी आन जहांलौं धर्त्ती॥श्रापहुतें उत्तरी उरबसी॥ सो मिलिकैं नृपके उरबसी॥९॥ बहुऱ्यो श्राप मुक्ति जब भई ॥ तब तजि नृपहिं उर्बसी गई॥ नृपति बिलाप करै बहु रोवै ॥ परिसो नृपकी और न जोवै ॥ १० ॥ राजा नग्नदेह सुध नाहीं ॥ बानी बिकल दीनता मांहीं ॥ लज्जारहित मंदमति जैसें ॥ चल्यौं उर्बसी पीछे तैसें ॥ ११ ॥ अहो प्रिया तुम ठाढी होवो ॥ मेरी और कृपाकरि जोवो ॥ मोकौं मार कहां तुम जावो ॥ कृपाकरो मेरे ग्रह आवो ॥ १२ ॥ मिलि उर्वसी संग सुषपायो ॥ सो सो सकलदुःष ह्वै आयौ ॥ त्रप्तन भयो भोगवत भोग ॥ पाई उर्वसी को संजोग ॥ १३ ॥ ता उर्वसी ज्ञान आकर्ष्यो ॥ तातैं भलेमानके हर्ष्यो ॥ तन मन हृदय कछू नहिं आन्यो ॥ निशिदिन मास बरषनहिं जान्यौ ॥ १४ ॥ तब ता नृपके पूरणभाग ॥ जातें प्रगट भयो वैराग ॥ तब नृप बचन बषानै जेई ॥ तोसों मैं भाषतहों तेई ॥ १५ ॥ ॥ पुरूरवा उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ अहो एक देषो मम मोह ॥ आपुहि कियो आपुनो द्रोह ॥ गहियों कंठ देवकी माया ॥ जिन मेरो सब आयु गमाया ॥१६॥ इन मोकों डाहिक्यो बहुतेरो ॥ सर्वसु आयु

लियौ हरि मेरौ ॥ में दिनरात न जान्यौ जात ॥ अमृतकरि मान्यौ विषात ॥ १७ ॥ वर्ष समूह गए मम बीत ॥ सकल विकारनि लीनो जीत ॥ देषो में कैसो डहिकायौ ॥ इस्त्रीके कर आप बिकायौ ॥ १८ ॥ जो में राजा चक्रवर्त्ती ॥ जीति समस्त करि वस धर्त्ती ॥ सकल भूप ममचरणनि सेवैं ॥ तन मन धन सब मोकों देवैं ॥ १९ ॥ सोइ बिकानो मैं स्त्रीहाथ ॥ ज्यौं वानर बाजीगर साथ ॥ ज्यौं ज्यौं इस्त्री मोहि नचायौ ॥ त्यौं त्यौं में मूररष सुषपायौ ॥ २० ॥ तो परि राजसहित तजि मोह ॥ त्रण समान करि चलि बिछोह ॥ नग्न भयो में पीछै धायौ ॥ ज्यौं उन्मत्त आप विशरायौ ॥ २१ ॥ कौन भांति ताकौ बलहोई ॥ तेज प्रताप रहै नहिं कोई ॥ जो होवै इस्त्री आधीन ॥ जेसें षरी संग षरदीन ॥ २२ ॥ विद्या मौन तपस्या त्याग ॥ बनमें वासरु दृढवैराग ॥ ए समस्त कीनें कछु नाहीं ॥ ज्यौं लगि त्रिया बसै मनमांहीं ॥ २३ ॥ यह उर्वसी जबहितें पाई ॥ काम अग्नि बहुभांति जगाई ॥ परि यह अग्नि न सीतल भई ॥ अधिक अधिक नित बढतीगई ॥ २४ ॥ जैसैं अग्नि प्रज्वलित होई ॥ तामैं इंधन डारे कोई ॥ सो त्यौं अधिक अधिक प्रज्वरै ॥ पलकहु नहिं सीतलता करै ॥ २५ ॥ में अपनो नहिं जान्यौ अर्थ ॥ आपु आपुकौ कियो अनर्थ ॥ मूरष आपहि पंडित मान्यो ॥ पड्यो मृत्युसुष अमृत जान्यो ॥ २६ ॥ जोमें ईस सकल भुवकेरो ॥ सो है रह्यौ तियाकौ चेरो ॥ में मूरष ताकौं धिकार ॥ जिन न कियो कछुज्ञान विचार ॥ २७ ॥ इस्त्रीकरि जाकौ चितहर्‍यो ॥ ज्ञान विचार सकल परिहर्‍यौ ॥ ताकौं हरि बिन कौंन छुडावै ॥ दूजो आपन छूट न पावै ॥ २८ तातें में हरिसरणनि गहौं ॥ सकल त्यागि हरिको ह्वै रहौं ॥ जद्यपि देवी मोहि बुझायौ ॥ त्रिया

प्रीति दुख कहि समुझायौ ॥ २९ ॥ तोहूं मैं मूरष नहिं जान्यौ ॥ काम अंध सुखही करि मान्यौ ॥ तातैं ताको नहिं अपराध ॥ यह मेरो मन बडौ असाध ॥ ३० ॥ जोहै नरक स्वर्गमय देख्यौ ॥ दुख मांहीं में सुखकरि लेख्यौ॥गुणमें साप जान दुख पावै ॥ अग्नि पतंग परै मरिजावै ॥ ३१ ॥ तो तिनकौ अपराध न कोई ॥ आप दुःख करि लेवै सोई ॥ तातैं तिनको एहि सुभाव॥ में मनमें क्यौं धरों अभाव ॥ ३२ ॥ जो में आप अग्निमें परौं ॥ तो उरदुःख कवनकौ धरौं ॥ देहहि मलिन महादुर्गंध ॥ सो करि जान्यौ विमल सुगंध ॥ ३३ ॥ सोई अपनि अविद्या कर्‍यौ ॥ निजानंद आतम वीसर्‍यौ ॥ यह तन तो बहुतनिकौ कहियैं ॥ तामें ममता गहि क्यौं रहियैं ॥ ३४ ॥ मातपिता अपनौं करि कहैं ॥ इस्त्री एकमेक मिलिरहैं ॥ के यह तन कहिए राजाकौ ॥ के पावक भक्षणहै ताकौ ॥ ३५ ॥ के भूको के स्वान शृगाल ॥ के आपनो मित्रके काल ॥ यह तन तो कहियैं किन किनको ॥ प्रगटहि दीसतहै तिन तिनकौ ॥ ३६ ॥ महा अशुद्ध देह यह एसो ॥ प्रगटहि नरक खानिहै जेसो ॥ तासौं मन बांधे मतिमंद ॥ इस्त्री नाम कालकौ फंद ॥ ३७ ॥ त्वचारु रुधिर मांस अरु अंत ॥ मज्जा मेद रोम नष दंत ॥ विष्ठा मूत्र रेत क्रमि हाड ॥ इस्त्री प्रगट नरक पीषाड ॥ ३८ ॥ तातैं इस्त्री अरु ता संगी ॥ ताकौ कदे न होय प्रसंगी ॥ ताकै दर्श क्षुभित मन होई ॥ देषे बिना न बिचले कोइ ॥ ३९ ॥ तातैं तिन दर्शन जो करियैं ॥ आपाहि आप नरकमें परियैं ॥ जो यह इंद्रिय अर्थ निवारै ॥ मन क्रम वचन संगति न टारै ॥ ४० ॥ तब यह मन सहजहि थिर होई ॥ कदे विकार न परसै कोई ॥ तातैं जे इस्त्रीनिकौं भजै ॥ अरु इस्त्री तिनकौं बुध तजै ॥ ४१ ॥ दर्श पर्श

अरु श्रवण निवास ॥ सब भावनितें माने त्रास ॥ इंद्रियकौ विश्वास न करै ॥ ज्ञानवंत नितही परिहरै ॥ ४२ ॥ महापुरुष जे जीवन्मुक्ता ॥ तिनकों यह सब संग अजुक्ता ॥ तोतें जगतैं छूटे चहैं ॥ ते हमसैं क्यौं संगति गहैं ॥ ४३ ॥ तातें में संग निवारौं ॥ श्रीपतिचरण समल उरधारौं ॥ दीनबंधु करुणामय स्वामी ॥ कृपाकरी यह अंतरजामी ॥ ४४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ या विधि वचन कहे नरराज ॥ तजि उर्वसी लोक सबसाज ॥ ज्ञानलह्यौ सब संशय टार्‌यौ ॥ मन निश्चल करि मोमें धार्‌यौ ॥ ४५ ॥ तातैं उद्धव यह पुरुषार्थ ॥ नर तन पायौ तबहीं स्वार्थ ॥ जब समस्तकी संगति तजै ॥ सत संगति गहि मोकौं भजै ॥ ४६ ॥ संत बतावैं हित उपदेश ॥ जिनतें संशय रहे न लेश ॥ मनकी सब आसक्ति निवारै ॥ संत महा भवसागर तारै॥४७॥निस्पृह निरारंभ सम दरसै ॥ संग्रह रहित द्वंद्व नहिं परसैं ॥ अहंकार ममता नहिं आनैं॥मोहि भजैं दूजो नहिं जानैं॥४८॥मेरीकथा श्रवण जे करैं॥ते सब पापनितैं निस्तरैं॥ सुनै कहै अंतरगत ध्यावै ॥ अति आतुर सौं प्रीति बढावै ॥ ४९ ॥ सो जद्यपि उपदेश न देवै ॥ तोहूं मोहि चहेतें सेवैं ॥ तहां कथा मेरी नित होवै ॥ तेंई अघ संदेहनि होवै ॥ ५० ॥ ते सहजहीं लहै ममभक्ति ॥ सहजहि होवै सकल विरक्ती ॥ मेरि भक्ति लहे नर जवहीं ॥ पूरण काम भयो सो तबहीं ॥ ५१ ॥ तातैं कछू न करणो रहै ॥ ज्ञानानंद रूब मम लहै ॥ सीत निशा होवै कहु कोई ॥ तहां अग्निपर जावै सोई॥५२॥ तम तुषार भय सहजहि जावै॥त्यौं साधू सब दोष मिठावै ॥ यह अपार सागर संसार ॥ जामें बूडे जीव अपार ॥ ५३ ॥ तिनकौं नाव प्रगट इक एह ॥ संतरूप प्रगटहि मम हेद ॥ ज्यौं प्राणनि राषै आहार ॥ मेरी शरण दुःषसंहार

॥ ५४ ॥ ज्यौं परलोक धर्म धन जानौ ॥ त्यौं भव तारक साधू मानौ ॥ जिनके हृदय प्रगट ममचरण ॥ तिन बिन और न या भवशरण ॥ ५५ ॥ ज्यौं बाहिरहै सूरजएक ॥ यों उर धेरै नेन अनेक॥संतहि मातापिता हितकारी ॥ संतदेव बंधू दुखहारी ॥५६॥ तातैं संत संग नित करणौ॥ और उपाय न हृदये धरणौ ॥ तिनतें अनायास भवतरै ॥ अनायास मोकौं अनुसरै ॥ ५७ ॥ तब पुरूरवा ऐसो कऱ्यौ ॥ सहित उर्वसी लोक परिहऱ्यौ ॥ सब तजि भयौ आतमाराम ॥ विचऱ्यौ भूमैं ह्वै निहकाम॥५८॥ तातैं असत संग पहिरहै ॥ साधू संग निरंतर करै ॥ साधूजन सुषहीं भवतारै ॥ सुखहीं ममचरणनि चितधारै ॥ ५९ ॥ दोहा ॥ ऐसो साधु असाधुकौ, सुनि हरिजीसौं संग ॥ तब उद्धवजन पूछियौ, कर्म जोग परसंग ॥ ६० ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधेश्रीभगवदुद्धवसंवादभाषायांऐलगीतायांषडविंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

दोहा ॥ श्रीधर पूजनविधि सबै, मूरति अष्टप्रकार ॥ सत्तावीशें ध्यायमै चित्तशुद्ध निजसार ॥ १ ॥ रागादिक जाचितविषै, सोकयों होइ असंग ॥ तिनहित पूछत कृष्णसौं उद्धव पाइ प्रसंग॥ २ ॥ ॥ उद्धव उवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ हेप्रभु कृपाकरौ अब ऐसी ॥ भाषौ क्रिया जोग विधि जैसी ॥ जाकै करत होइ सतसंग ॥ पावै ज्ञान होइ निहसंग ॥ १ ॥ यह जो तुम प्रतिमाकी पूजा ॥ तातैं श्रेय कहै नहिं दूजा ॥ याकौं कहैं व्यास अरु नारद ॥ गुरू बृहस्पति परमविशारद ॥ २ ॥ औरो सकल मुनीस्वर जे ते ॥

परम श्रेय यह भाषें ते ते ॥ कल्प आदि तुम विधिसों कह्यो ॥ सो दृढकरि विधि हृदये ग्रह्यो ॥ ३ ॥ तिन भृग्वादी सुतनि सुनायौ ॥ शंभूहुतें भवानी पायो ॥ जें ते सकल वर्ण अरु आश्रम ॥ इस्त्री शूद्रहु सबकौ धर्म ॥ ४ ॥ याबिधि और धर्महैं जे ते ॥ याही काज कहे सब ते ते ॥ याबिनु और धर्म जे करे ॥ तो तिनतें फिरि बंधन परे ॥ ५ ॥ यह सब धर्मनि कौहै धर्म॥ याहीहुतें कटै सब कर्म ॥ तातें पूजाविधि विस्तारो ॥ क्रिपाकरो जीवन निस्तारो ॥ ६ ॥ तुम दयाल सबके हितकारी ॥ सुमरत सकल दुःखभय टारी ॥ शुनिकें परउपकारी बैन ॥ बोले हरषि कमलदलनैन ॥ ७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ चौपाई ॥ उद्धव याकों अंत न पार ॥ ममपूजा बहुविधि विस्तार ॥ परितोकूं संक्षेप सुनाऊं ॥ तामें तत्त्व सकलको ल्याऊं ॥ ८ ॥ पूजाविधि हे तीन प्रकार ॥ वैदिक तांत्रिक मिश्रित सार ॥ वेदमंत्र अरु वैदिक अंग ॥ सो कहिए वैदिक परसंग ॥ ९ ॥ योंहीं तांत्रिक मिश्रित जानै ॥ भावे तासौं पूजा ठानै ॥ विप्ररु क्षत्री वैस्य त्रिबर्ना ॥ इनकौं याविधि पूजा करना ॥ १० ॥ सो समस्त विधि तुमहि सुनाऊं ॥ जीवनिको क़ल्यान उपाऊं ॥ प्रतिमा भूमि अग्नि जलवाई ॥ द्विज अरु आप अर्क अरु गाई ॥ ११ ॥ अरु सब हिनमैं मोकौं जानै ॥ जथा जोग सब पूजा ठानै ॥ गुरु अरु मोमें भेद न राखे ॥ मानुष बुद्धिदूरि करि नाखे ॥ १२ ॥ शुद्धहोइ जलमाटी संग ॥ अस्नानादि सकल ए अंग ॥ जे जे प्रगट वेद अरु तंत्र ॥ ते ते सकल पढै मम मंत्र ॥ १३ ॥ संध्योपासन आदिजु कर्म ॥ प्रगटहि तिहूं वर्णके धर्म ॥ तिन तिनसौं नित मोकों भजे ॥ होइ निषेध सकलसौ तजै ॥ १४ ॥ जाहीकरि मम सुमरण होई ॥ काटै सब कर्मनिकों सोई ॥ सोई सो

कहियै ममधर्म ॥ ममसुमरण विन बंधन कर्म ॥ १५ ॥ अब भाषौं प्रतिमाके भेद ॥ सेवत जिनहि मिटै भवखेद ॥ एक शिलाकी कहियैं मूरति ॥ एक काष्ठकी त्यौं ममसूरति ॥ ॥ १६ ॥ एक लेप चंदनकी करियें ॥ एक चित्र पुस्तक लिखिधरियें ॥ प्रतिमा एक सुवर्ण सवारी ॥ एक मनोमय मनमैं धारी ॥ १७ ॥ एक मृत्तीका कीले कीनी ॥ एकरत्न मणिकी करि लीनी ॥ ए मम प्रतिमा अष्टप्रकार ॥ जानै मम मंदिर निजसार ॥ १८ ॥ तिनमैं होवै निश्चल जेती ॥ सयनादिकन करावे तेती ॥ सालिगराम आदि हे जेती ॥ मेरौ तनजानै नित तेति ॥ १९ ॥ और सबनिकौं पूजाकाल ॥ किंवा जानै नित गोपाल ॥ लिपिलिखी कामार्ज न करै ॥ औरे स्नानादिक विस्तरै ॥ २० ॥ उत्तम सामग्रीसौं सेवै ॥ तन मन धन सब मोकौं देवै ॥ जो निहकाम कपट बिन होई ॥ करे भाववस मोकों सोई ॥ २१ ॥ उत्तम वस्तुनि मन करि ल्यावें ॥ प्रेमसहित सब मोहि चढावें ॥ उत्तमविधि अस्नान करावे ॥ वस्त्राभर्णादिक पहिरावे ॥ २२ ॥ अग्नि घृतादिक होमहि करै ॥ धरणी रवि अस्तुति विस्तरै ॥ जलकौं पूजे जल फलफूल ॥ जानै मोहि सकलकौ मूल ॥ २३ ॥ भक्तिसहित जो अर्पे तोई ॥ ताहूंमें मोकों सुखहोई ॥ तोजे धूप दीप नैंवेद ॥ मोकौं बहुविधि करै निबेद ॥ २४ ॥ ताकी महिमा कहा बखानौं ॥ ज्यौंहै त्यौं मैंही पहिचानौं ॥ तातैं मैं नितप्रीति अधीन ॥ तोषन मानौं प्रीति बिहीन ॥ २५ ॥ अबभाषौं पूजाविधि तोसौं ॥ सावधान ह्वै सुनियो मोसौं ॥ होइ पवित्र करै अस्नान ॥ मनमैं राखै मेरो ध्यान ॥ २६ ॥ पूजा साज प्रथम सबलेई ॥ फिरि उठबैकौं रहन न देई ॥ बैठे उत्तरके पूरवमुख ॥ निश्चल प्रतिमा केवल सन्मुख ॥ २७ ॥ दर्भनिको निज आसन

करै ॥ अंगनिकै न्यासहि बिस्तरै ॥ न्यासकरै मम मूरति अंग ॥ तब ठानैं अस्नान प्रसंग ॥२८॥ उत्तम कलस तोयसौं भरै ॥ दूजे जलके पात्रहि धरै ॥ जलमैं बहुत सुगंध मिलावै ॥ तासौं मोही स्नान करावै ॥ २९ ॥ अर्घपाद अरु विष्टर करै ॥ तीन पात्र तातें जल भरै ॥ गंध पुष्प तामें बहुधरै ॥ गायत्री अभिमंत्रनि करै ॥ ३० ॥ तब आपनौं करे तन शुद्ध ॥ कोऊ द्वार न होइ अशुद्ध ॥ हृदयमांहि ममरूपहि ध्यावै ॥ रव ॐकार जहांतें आवै ॥ ३१ ॥ जैसें गृहमें दीपप्रकास ॥ यों ध्यावै तनमांहि उजास ॥ पूजे प्रेम सुतनमय होई ॥ पुनि मूरतिमें थापै सोई ॥ ३२ ॥ सांगोपांग करै तनपूजा ॥ कोई भावन उपजै दूजा ॥ देवे अर्घपाद आचमन ॥ रचे अष्टदल पंकज भवन ॥ ३३ ॥ तापर थापे ले धर्मादी ॥ सकलशक्ति रवि शशि अग्न्यादी ॥ शंखरु चक्र गदा असि अस्त्र ॥ धनुष बान मूसल हल शस्त्र ॥ ३४ ॥ ए आठो आठेदिशि आनै ॥ वनमाला लच्छा उर जानै ॥ नंद सुनंद पहाबल चंड ॥ कुमुदेक्षण बल कुहुद प्रचंड ॥३५॥ अष्टदिशा पार्षदहि समग्र ॥ ठाढो गरुड जोरिकर अग्र ॥ विष्वक्सेन व्यास गुरुदेव ॥ गणपति दुर्गा अरु सबदेव ॥ ३६ ॥ करजोरें हरि सन्मुख ठाढे ॥ हरषत बदन प्रेम अतिबाढे ॥ सबहिनकौं पूजे अर्घादी ॥ विनय नम्रता वंदन आदी ॥ ३७ ॥ चंदन अरु कपूर उशीर ॥ कुंकुम अगर सुगंधित नीर ॥ प्रथमहि कछु मधुपर्क चढावै ॥ निर्मल जल आचमन करावै ॥ ३८ ॥ पुनि सुगंध जलसों अस्नान ॥ मंत्र वंदन मन क्रम नहिं आन ॥ पुंडरीकलोचन भव भावन ॥ आदि पुरुष सबके उपजावन ॥ ३९ ॥ जय जय ब्रह्म सकल आधार ॥ नमो नमस्ते वारंवार ॥ ऐसें तंत्र मंत्र उचारै ॥ सहस्रशीर्षा श्रुति बिस्तारै ॥ ४० ॥ वस्त्र जनेऊ अरु आभरना ॥ अंग अंग

तिलकादिक करना ॥ उत्तम माला बहुत सुगधा ॥ प्रेम सहित मोसें मन बंधा ॥ ४१ ॥ बालभोग आचमन करावै ॥ कुसुम सुगंधहि धूप बनावै ॥ बहुत भांति आरती उतारै ॥ नानाविधि नैवेद सवारै ॥ ४२ ॥ षीरषांड घृत दधी लापसी ॥ लाडू पुवा चूरमा सुरसी ॥ व्यंजन करै और बहुतेरे ॥ भोगलगावै बहुहित मेरे ॥ ४३ ॥ नित दातुन ऊवटनो तेल ॥ करे स्नान पंचामृत मेल ॥अलंकार दर्शन आदर्श ॥ गीत नृत्य वाजंत्र सुपर्श ॥ ४४ ॥ बहुत भांति नैवेद संवारै ४ नित नाहीतौ पर्व न टारै ॥ बहुरि करै पावकमें पूजा ॥ मो बिन ताहि न जाने दूजा ॥ ४५ ॥ अग्निकुंडमें अग्निहि धरै ॥ समिध घृतादिक होमहि करै ॥ होमकरै पढि पढि मम मंत्र ॥ जिनकों कहैं बेद अरु तंत्र ॥ ४६ ॥ करी होम आचमन करावै ॥ ताकों मेरो रूपहि ध्यावै ॥ तप्तसुवर्ण तुल्यछबि अंग ॥ चारु चतुर्भुज आयुध संग ॥ ४७ ॥ पीतबसन कुंडल बनमाला ॥ सीसमुकुट कटिसूत्र विशाला ॥ भृगुलत्ता अरु लक्ष्मी आदी ॥ बहुविधि ध्यावै रूप अनादी ॥ ४८ ॥ पुनि नंदादि पारषद जे ते ॥ बलि विधान सो पूजे ते ते ॥ जपै मूलमंत्र बहुवार ॥ जा विधि बढे प्रेम अधिकार ॥ ४९ ॥ पीछै ता परसादहि लेवै ॥ लेकरी मम भक्तनकों देवै ॥ आग्या पाई आप तब पावै ॥ प्रीतिसहित जेतो जिय भावै ॥ ५० ॥ पुनि अर्पे सुगंध तांबूल ॥ उत्तममाला उत्तम फूल ॥ मेरै गुण ऊंचैसुर गावै ॥ नामनि भाषै प्रेम बढावै ॥ ५१ ॥ मेरे गुण अरु कर्म सराहै ॥ पूरणप्रेम सिंधु अवगाहै ॥ कथा नित्य मम सुने सुनावैं ॥ मो बिन कहूं न पल ठहराहै ॥ ५२ ॥ चरण पलोटै सयल कराई ॥ मुषतें नाम न भूलीजाई ॥ प्राकृत संस्कृत स्तोत्ररु वेद ॥ जेई जे अस्तुतिके भेद ॥ ५३ ॥ तिन तिनसौं मम अस्तुति करै ॥ वारवार चरणनिमें परै ॥ पीछै धार

जोरिकर दोई ॥ करे दीन ह्वै बीनति सोई ॥ ५४ ॥ हेप्रभु भवसागरतें तारै ॥ काल मृत्यु भय शोक निवारौ ॥ तुम बिन मेरै और न कोई ॥ पाऊं चरणनि कीजै सोई ॥ ५५ ॥ हृदयसु जोति जोतिमें धारै ॥ मूरतिकों सज्या विस्तारै ॥ यों आकार जहांलों देषै ॥ ते समस्त मम मूरति लेषै ॥ ५६ ॥ करे जथाबिधि सबमें पूजा ॥ मोकों छांडि न जानै दूजा ॥ याविधि क्रिया जोग मन लावै ॥ सो नर भुक्तिमुक्ति फल पावै ॥ ५७ ॥ ममहित उत्तम ग्रह संवरावै ॥ तामें मम प्रातिमा पधरावै ॥ मोकौं करै बाग फुलवाई ॥ जन्म महोत्सवकी अधिकाई ॥ ५८ ॥ ममहित सदाव्रतादिक देवै ॥ बहुत भांति मम भक्तनि सेवै ॥ ममपूजा प्रवाहके हेत॥ देय गाम पुरि हाटरु षेत ॥ ५९ ॥ सो मम सम ईश्वरता पावै ॥ तिहूं लोकको ईश कहावै ॥ जो मम प्रतिमा थापन करै ॥ सो सब भूपति ह्वै अवतरै ॥ ६० ॥ जो मेरो मंदीर संवरावै॥ तिहूं लोककी प्रभुता पावै । पूजादिकनि ब्रह्मको लोक ॥ जहां नहीं नाना भय शोक ॥ ६१ ॥ तीनौं किये लहै वैकुंठ ॥ कालादिक सबहुतें अकुंठ ॥ जो यौं सेवे ह्वै निहकाम ॥ सो ममभक्ति लहै सुषधाम ॥ ६२ ॥ निहकामी भावे त्यों सेवै ॥ जो तन मन धन मोकों देवै ॥ सो पावे मेरो निजज्ञान ॥ लहैं मोहि छूटै सब आन ॥ ६३ ॥ वृत्ति सुरनि अरु विप्रनि केरी ॥ अरु जो करि होए कछु मेरी ॥ दई औरकी किंवा आपू ॥ ताकों हरेकऱ्यौ सब पापू ॥ ६४ ॥ सो होवै कृमिं विष्ठा मांहिं ॥ बर्षकोटि कहु निकसे नाहीं ॥ कर्त्ता प्रेरक तथा सहाई ॥ अनुमोदक जिन रुचि उपजाई ॥ ६५ ॥ सबहिनकौं फल होइ समान ॥ भावें उत्तम भावै आन ॥ तातें ममहित कर्मनि करै ॥ सो बहुतनि ले भवजल तरै ॥ ६६ ॥ ॥ दोहा ॥ या विधि पूजाकौं करै,

ताकौं उपजै ज्ञान ॥ जातें मेरो पद लहै, ताकों करौं बषान ॥ ६७ ॥ ॥
इति श्रीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधे श्रीभगवदुद्धवसंवादेभाषायांसप्त विंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ॥

दोहा ॥ अष्टाविंशति ध्यायमैं, ज्ञान योग पुनि सार ॥ श्रीधर श्रीउद्धव प्रती, वर्णत नंदकुमार ॥ १ ॥ पूर्व कहे विस्तारसों, ज्ञानयोग हरिजोई ॥ सारसबै संक्षेप कर,पुनि बरनत प्रभुसोई ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ चौपाई ॥ उद्धव ताकौं भाषौं ज्ञान ॥ जातें लहै मोहि तजि आन ॥ उत्तम मध्यम कर्म सुभाव ॥ जे सब जगके नाना भाव ॥ १ ॥ तिन तिनकी निंदा नहिं करै ॥ अरु कछु नहिं अस्तुति विस्तरै ॥ प्रकृति पुरुष निर्मित सब जानै ॥ एक जानि सबभेदाहि मानै ॥ २ ॥ ब्रह्माआदि कीट परजंत ॥ एकरूप देषे मम संत ॥ जे जे बहुविधि कर्म सुभाव ॥ तिनकों आनै भाव अभाव ॥ ३ ॥ तासों होंइ अर्थतें भ्रष्ट ॥ माया मोह चित्त आकृष्ट ॥ मिथ्या मांहि चित्तकौं धरै ॥ तातें मूरख जनमें मरै ॥ ४ ॥ लीन होइ जब इंद्रिय देह ॥ स्वप्न लहै तब आतम एह ॥ जहँ मनलग्यौ तहां तहँ जावै ॥ बहुत भांतिके सुखदुख पावै ॥ ५ ॥ पुनि सुषुप्तिमें होवै लीन ॥ मरणो कहैं अहं मम हीन ॥ यौं सुषुप्ति अरु देखत सुपना ॥ जन्म मरण बहु सुषदुष उपना ॥ ६ ॥ ज्यौं लगि सो बैत्यौं लगि पावे ॥ जागे कछु ए नहीं रहावै ॥ त्यौं यह सुख दुख पापरु पुन्य ॥ जन्म मरण सब मानो शून्य ॥ ७ ॥ जापें यह सब द्वैत

असत्य ॥ मो बिन ओर कछू नहिं सत्य ॥ दषन कह न सुननमें आवै ॥ मन अरु बुद्धि जहा लगि जावै॥८॥ ते समस्त जो कछुवै नाही ॥ तो शुभ अशुभ कहैका मांहीं॥जद्यपिहै मिथ्या संसार॥ तोहूं दुषको वार न पार ॥ ९ ॥ ज्यौं लगि देहबुद्धि नहिं छूटै ॥ त्यौं लगि भव भय पलक न टूटै ॥ जैसें अपने ध्वनिकी जांई ॥ अरु प्रतिबिंब सिंहकी न्यांई ॥ १० ॥ सीप रूप जेवरिमें साप ॥ अरु मृग तृष्णा मांहीं आप ॥ है नाहीं परिहै सो जाने ॥ तिनतें सुखदुख बहुविधि माने ॥ ११ ॥ ज्यौं लगि मिथ्या जाने नाहीं ॥ त्यौं लगि सकल अनर्थ न जाहीं ॥ ब्रह्मरूप हय सब संसार ॥ जहां लगे कछुहै आकार ॥ १२ ॥ ब्रह्मरूप ब्रह्महि उपजावै ॥ ब्रह्म ब्रह्म आधार रहावै ॥ ब्रह्महि करे ब्रह्मप्रतिपाल ॥ ब्रह्मस्वरूप ब्रह्मको काल ॥ १३ ॥ जैसें जल बुद्बुद जल मांहीं ॥ जलकौंछोडि द्वैत कछु नाहीं ॥ त्यौंही ब्रह्मरूप सब एक ॥ देषै भ्रमतें जीव अनेक ॥ १४ ॥ परि यह सब जानो निर्मूल॥ ज्यौं मृगवारि गगनमें फूल ॥ त्रिगुण रचित सब यह जगजानौ ॥ ते गुण मायाकेही मानौ ॥ १५ ॥ जो या विधि सब मिथ्या जानै ॥ ब्रह्म भावना हृदये आनै ॥ परि जद्यपि सो जगमें रहै ॥ तो रवि ज्यौं गुण दोष न गहै ॥ १६ ॥ या जगमें शुभ अशुभ न देषै ॥ मिथ्या जोनि भर्मकरि लेषै ॥ ज्यौं प्रत्यक्ष घटादिक देषै ॥ उपजत विन सत मिथ्या लेषै ॥ १७ ॥ धरनी आदि काल त्रय सत्य ॥ नाम रूपते सकल असत्य ॥ त्यौंही ब्रह्मसत्य तिहुंकाल ॥ नामरूप मिथ्या जंजाल ॥ १८ ॥ अरु त्यौं करि देषै अनुमान ॥ भाई यह जड तन मन प्रान ॥ शक्ति कौनकी चेतन रहैं ॥ अपने अपने अर्थनि गहैं ॥ १९ ॥ निराकारतें चेतन होई ॥ सब आकार जहांलों जोई ॥ तातैं सब मिथ्या आकार ॥ चेतन ब्रह्म

सकल आधार ॥ २० ॥ अरु श्रुतिको परमाण विचारै ॥ नेति नति कहि वेदपुकारै ॥ अरु त्यौं देखैं अनुभव माहीं ॥ नाम रूप यह कछुहे नहीं ॥२१॥ अंत नरहै हुते नहिं आदी ॥ आतम निश्चल ब्रह्म अनादी ॥ ऐसो वहुविधिको विस्तार ॥ मिथ्या जानै वरणाकार ॥ २२ ॥ मन क्रम वचन होइ निहसंग ॥ ब्रह्मविचारहि करै अभंग ॥ ऐसैं बचन कहे भगवान ॥ तब उद्धव पूछ्यौ निज ज्ञान ॥ २३ ॥ ॥ उद्धव उवाच ॥ चौपाई ॥ ॥ हेप्रभु यह आतम अविनासी ॥ चेतन रूप स्वयं प्रकासी ॥ निर्गुण निराकार नित सुद्ध ॥ सदा अनावृत सदा प्रबुद्ध ॥ २४ ॥ ईहा रहित सदाआनंद ॥ सकल प्रकास कलिपै न दुंद ॥ अरुहै देह शक्तिकरि हीन ॥ जड अशुद्ध ह्वै जावै लीन ॥ २५ ॥ तातैं तिनको संन न कोई ॥ महाविशेष परस्पर होई ॥ कछु इच्छा नहिं आतम मांहीं ॥ अरु तनसौं कछु होवै नाहीं ॥ २६ ॥ आतमकौं बंधन नहिं कोई ॥ अरु आतम आवर न होई ॥ यह संसार लहै सो कौन ॥ आतम शुद्ध सदा सुषभौन ॥ २७ ॥ यह करि क्रपा मोहि समुझावौ ॥ मेरे प्रभु संदेह मिटावौ ॥ ऐसैं उद्धव पूछ्यौं ज्ञान ॥ तब बोले भवपति भगवान ॥ २८ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ आतमकौं नाहीं संसार ॥ अरु तिनको नाहीं आकार ॥ तिन दोनोंते जो अविवेक ॥ ताहीकौं भवदुःख अनेक ॥ २९ ॥ इंद्रिय प्राण देह मन बंध ॥ इनसौं जो आतम संबंध ॥ तातैं आभासै संसार ॥ महादुःख नाना परकार ॥ ३० ॥ ज्यौं लगिलौं इनिसौं संबंध ॥ त्यौं लगि आतम जाने बंध ॥ सो अज्ञान कर्‍यौ सब जानौ ॥ नाहीं कछू सकल करि मानौ ॥ ३१ ॥ जद्यपि है मिथ्या संसार ॥ परितोहूं कछु वारन पार ॥ महाजीव दुःखहिमें रहैं ॥ वार वार तनछोडे गहैं ॥ ३२ ॥ ज्यौं

सुपना कछुहोवै नाहीं ॥ परि सब साचे निद्रा मांहीं ॥ यों जे सुखदुख मनमें ध्यावे ॥ सो सो सकल सुपनमें आवे ॥ ३३ ॥ है नाहीं परिहै सो जानै ॥ नानाविधिकै सुखदुखमानै ॥ जागेतें कछु दीसत नाहीं ॥ सब व्यवहार वृथा व्है जाहीं ॥ ३४ ॥ हर्ष शोक भय सौचरु लोभ ॥ इच्छा क्रोध असोभरु सोभ ॥ जन्मरु मरण विकार जहांलौं ॥ अहंकार के सकल तहांलौं ॥ ॥ ३५ ॥ आतम सदा एक रस रहै ॥ अहंकार संगति दुष सहै ॥ इंद्रिय देह बुद्धि मन प्रान ॥ सूत्ररु महत्तत्त्व अभिमान ॥ ३६ ॥ इनिसौं मिलि करि आतम एक ॥ याकै सुखदुख गहै अनेक ॥ तिन तिनके हित कर्मनि करै ॥ कर्मनिके वश जनमैं मरै ॥ ३७ ॥ लिंगबद्ध देहनिमैं जावै ॥ तिनकै संग महादुष पावै ॥ बुद्धि बचन मन प्राण समीर ॥ महतत इंद्रिय कर्म शरीर ॥ ॥ ३८ ॥ सुख अरु दुख ममता हंकार ॥ तिनकौ नानाविधि संसार ॥ सो निर्मूल सकलही जानै ॥ ज्यौं जेवरी साप त्यौं मानै ॥ २९ ॥ ज्ञान खड्ग भजि मोहि उपावै ॥ गुरुसेवासौं सान धरावै ॥ तासौं काटी व्है निहसंग ॥ विचरे सब देखत मम अंग ॥ ४० ॥ गुरुकै वचन हृदयमैं धारै ॥ आदि अंतलौं श्रुती विचारै ॥ जन्ममरण देखे प्रत्यक्ष ॥ तजि अज्ञानसु होवै दक्ष ॥ ४१ ॥ साधन धर्म माहि थितहोई ॥ आतम देह विचारै दोई ॥ जो या जगके आदिरु अंत ॥ सोई मध्य विचारै संत ॥ ४२ ॥ आदिरु अंत मध्यमें एक ॥ नामरूप भ्रमरूप अनेक ॥ हेम एक ज्यौं आदिरु अंत ॥ मध्यकिये आभर्ण अनंत ॥ ४३ ॥ तो कछु हेम छोडि नहिं आन ॥ जो विचार करि देखे ज्ञान ॥ मिथ्या सकल नाम आकार ॥ हेम काल त्रय करे विचार ॥ ४४ ॥ त्यौं जग आदि मध्य अरु अंत ॥ मोहि अरूप विचारै संत ॥ आदि

अंतमें एक अरूप ॥ सोई मध्य वृथा सबरूप ॥ ४५ ॥ जाग्रत सुपन सुषुप्ति अवस्था ॥ आदिरु अंत मध्यमा स्वस्था ॥ इनके नाश भए जो रहै ॥ सकल छोडि ताकौं बुध गहै ॥ ॥ ४६ ॥ इंद्रिय वपु इंद्रियके देव ॥ इंद्रिय विषयनिके बहु भेव ॥ ते सब याहि एक बिन नाहीं ॥ सत्य ब्रह्म खोजो उरमांहीं ॥ ४७ ॥ जाहि प्रकासत सकल प्रकासैं ॥ जाकी शक्ति सत्यसैं भासैं ॥ मुखको मुख कर्णनिको कर्ण ॥ करको कर चरणनिको चर्ण ॥ ४८ ॥ नासा नास नैनको नैन ॥ जिह्वा जीभ वैनको बैन ॥ याबिधि सकल प्रकासक एक ॥ ताविन मिथ्या सकल अनेक ॥ ४९ ॥ एजे नाम रूप विस्तार ॥ जिनसौं पूरण सब संसार ॥ ते सब आदिहुते कछु नाहीं ॥ अरु नहिं रहियै अंतहु मांहीं ॥ ५० ॥ तातैं अबहूं मिथ्या मानै ॥ कारण ब्रह्म निरंतर जानै ॥ नामधर्‍यौ सो सकल विकार ॥ तिहूं कालमें माटी सार ॥ ५१ ॥ यह जो कछु सो ब्रह्म समस्त ॥ आदि मध्य अरु सबके अस्त ॥ ऐसैं बहु विधि वेद बखाने ॥ ब्रह्मबताय द्वैत सब भाने ॥ ५२ ॥ आदि समस्तहुतौ कछुनाहीं ॥ अब आभा सत है मधमाहीं ॥ यातैं परे ब्रह्म मम रूप ॥ सकल प्रकासक आप अनूप ॥ ५३ ॥ बहुविचित्रतामैं आभासैं ॥ ताकी शक्ती शक्ति-प्रकासैं ॥ तातैं सकल ब्रह्महीं लेखौ ॥ तजिकरि रूप अरूपाहि देखौ ॥ ५४ ॥ इनतें परे रूप मम जानौ ॥ अरु ए सब मम रूपहि मानौ ॥ द्वैतछोडि निश्चल है रहौ ॥ जानि ब्रह्म ता ब्रह्महि लहौ ॥ ५५ ॥ ऐसो जो नितकरैविचार ॥ मिथ्या जानै सब आकार ॥ गुरुसेवा करि ज्ञान बढावै ॥ चेतन मोहि अखंडित ध्यावै ॥ ५६ ॥ यह जो तनसो आतम नाहीं ॥ तन घटरूप विचारो मांहीं ॥ अरु इंद्रिय ते दीप समान ॥ इनहि प्रकासक आतम ज्ञान ॥ ५७ ॥ अरु त्यौं

देव पवन मन बुद्धी ॥ आतमकी नहिं जाने सुद्धी ॥ क्षिति जल तेज पवन आकास ॥ अहंकार गुण चित्त प्रकास ॥ ५८ ॥ स्याम प्रकृति तन मात्रा पंच ॥ इनहीसौं सब द्वैत प्रपंच ॥ ते जड आतमकों नहिं जानैं ॥ आतम शक्ति इहासो ठानैं ॥ ५९ ॥ सकल प्रकाशक आतम एक ॥ ए जड जान न सकें अनेक ॥ याविधि जो ममरूप विचारै ॥ सकल उपाधि उरैकी टारै ॥ ६० ॥ सो बनरहे इंद्रियनि थंभै ॥ किंवा पुरुष विषय आरंभै ॥ तोहूं ताकों नहिं गुणदोष ॥ जीवतहीं जिन पायो मोष ॥ ६१ ॥ जैसैं घन रवि आडे आए ॥ तो तिनसौं कछु रवि न छिपाए ॥ अरु जो मेघ दूरि ह्वै गये ॥ तो कछु रवि न प्रकाशत भये ॥ ६२ ॥ रविहे परे उरै घनवृंद ॥ जानैं लिप्त लोकमति मंद ॥ जैसैं प्रगट पवन घन तोई ॥ धूम धूल अरु दामनि होई ॥ ६३ ॥ ऋतुके गुणजु सीत उष्णादी ॥ उपजत विनसत रहे अनादी ॥ परि नहिं लिप्त अलिप्त अकास॥त्यौं आतमा परम परकास ॥६४॥परितोहूं संगति नहिं करै॥माया गुणनि दूरि परिहरै॥ज्योलौं करी न दृढ ममभक्ती ॥ छूटी नहिं रज तम आशक्ती ॥६५॥ द्वैत भेद नहिं भूलै तौलौं॥मम जन संगकरे नहिं जौलौं॥जैसै रोगहोइ तन मांहीं॥दृढकरि मूल उखार्‍यौ नाहीं॥६६॥ तजि औषदसु अपथ्यहि करै ॥ तासों रोग बहुरि विस्तरै ॥ त्यों हंकार रोग भवमूल ॥ सो न भयो जबलग निर्मूल ॥ ६७ ॥ त्यौं लगि संग अपथ्यजु करे ॥ तो बहुरो जगमैं अवतरे ॥ बंधु कुटुंब शिष्य बहुतेरे ॥ आवैं सकल सुरनके प्रेरे ॥ ६८ ॥ ते ते अंतराय सबकरैं ॥ जोगीकों कर्मनि विस्तरैं ॥ सो तिनतैं पावै अवतार ॥ बहुर्‍यौ करै भक्ति विस्तार ॥ ६९ ॥ कर्मपंथमें भूलै नाहीं ॥ मैं प्रेरक ताके उर मांहीं ॥ याविधि पाइ ज्ञान विज्ञान ॥ देखे मोहि मिटावे आन॥७०॥

तब ताकौ तन कर्मनि करै ॥ लेंनदेंन भोजन बिस्तरै ॥ पूरव संसकार करवावैं ॥ विधिको लिष्यौ न मिथ्या जावै ॥ ७१ ॥ सो मुनि मग्न ब्रह्मसुषमांहीं ॥ तातें कर्त्ता जानैं नाहीं ॥ जो बैठो अरु ठाढो होई ॥ आवै जाइ कहूंजे सोई ॥ ७२ ॥ अन्न खाइ जलपीवै सोवै ॥ जो व्यवहार देहको होवै ॥ सो सो कछू न जानै योगी ॥ निश्चल रहै ब्रह्मरस भोगी ॥ ७३ ॥ जो कबहूं देखै संसार ॥ इंद्रिय गोचर विविध प्रकार ॥ ते ते कछू सत्य नहिं जानै ॥ स्वप्नहिं सम ज्यौं जागे मानै ॥ ७४ ॥ प्रथम आतमाहु तो अबंध ॥ आपहि भयौ प्रकृतिसों बंध ॥ बहुर्‍यो मोसों विद्या पावै ॥ तब दुख जानी प्रकृति मिटावै ॥ ७५ ॥ तब बहुर्‍यौ ताकों नहिं गहै ॥ मोहि जानि मोहीमें रहै ॥ प्रथमहि जब मोकौं नहिं जान्यौ ॥ तब माया सुख उत्तम मान्यौ ॥ ७६ ॥ बहुरी जब ममसरणहि आवै ॥ मम प्रसाद अज्ञान मिटावै ॥ तब मायाकों दुखमय जानै ॥ परमानंद रूप मुहिमानै ॥ ७७ ॥ तातें आपहि गही उपाधी ॥ ताकौं तजै जानि करिव्याधी ॥ सदा निरंतर मोमें रहै ॥ बहुर्‍यो भवसागर नहिं बहै ॥ ७८ ॥ ज्यौं रवि अंश सकलही अक्ष ॥ परि रवि विना न लखै प्रतक्ष ॥ रविसंयोग बहुरि जब होई ॥ तब समस्त देखै सो सोई ॥ ७९ ॥ रविबिन अंधकार तब होवै ॥ तातें कोइ नैंन नहिं जोवै ॥ रविसंयोग प्रकाशहि पावैं ॥ तब सब देखे तमहि मिटावैं ॥८०॥ परितै नयन त्रिकाल अलेप ॥ अंधकारसों होय न लेप ॥ ते त्यौं के त्यौं तमहीं मांहीं ॥ परि रवि बिनु कछू दैंषै नाहीं ॥ ८१ ॥ रवितें तम उपाधि परिहरैं ॥ पाइ प्रकाश प्रकाशहि करैं ॥ त्यौं यह आतम मेरो रूप ॥ स्वयंप्रकाशरु परम अनूप ॥ ८२ ॥ जन्ममरण मर्यादारहित ॥ काहूकरि कबहूं न ग्रिहित ॥ दूजै रहित आतमा

तें मोकौं पावै ॥ बहुरौ भवदुषमैं नहिं आवै ॥ १०९ ॥ जो होवै मेरै आधीन ॥ आपहि मानै सब बलहीन ॥ मैं आधीन होइ ता जनकै ॥ ज्यौं आधीन देह या मनकै ॥ ११० ॥ केवल जो ममसरणहि आवै ॥ ताहीकी सब इच्छा जावै ॥ तातैं विघ्न न आवै कोई ॥ विघ्न तहां जहँ इच्छा होई ॥ १११ ॥ मम आनंद रहै आनंदित ॥ सब देवनको होवे वंदित ॥ तातैं उद्धव एही करनौ ॥ मेरो भजन हृदयमैं धरनौ ॥११२ ॥ जग अरु आप ब्रह्ममय जानै ॥ द्वैत भाव कबहूं नहिं आनैं ॥ ब्रह्मभावतें ब्रह्महि पावै ॥ जन्ममरणके दुख विसरावै ॥ ११३ ॥ ब्रह्म भावनहिं उपजै जोलौं ॥ जन्ममरण दुखमिटे न तोलौं ॥ तातैं ब्रह्मभावकौं करो ॥ दूजो सकल यत्न परिहरो ॥ ११४ ॥ ॥ दोहा ॥ ॥ एसो सुनि श्रीकृष्णसौं,अतिहीं दुष्करज्ञान ॥ पूछयो सुगम उपाय तब, उद्धव परमसुजान ॥ ११५ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणेएकादशस्कंधेश्रीभगवदुद्धवसंवादेभाषायांअष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

॥ दोहा ॥ उनतीसें अध्यायमैं, आगैको विष्तार ॥ श्रीधर भक्ती योग पुनि, कहे भक्त हित धार ॥ १ ॥ अती क्लेशवत जानिहिय, संपति योग असंग ॥ सुखोपाय पुनि कृष्णसौं, पूछयो उद्धव अंग ॥ २ ॥ उद्धव उवाच ॥

चौपाई ॥ हेप्रभु तुम यह ज्ञान बषान्यौ ॥ सोतो मैं अति दुष्कर जान्यौ ॥ बशनाहीं इंद्रिय मन जिनकौ ॥ केसें काज होय प्रभु तिनकौ ॥१॥ जेहं परमहंस दृढचित्त ॥ तिनकौं ब्रह्मदृष्टिहै नित्त और जे जे योगि विचारै ॥ पांचे पांचे या मनकौं धारैं ॥ २ ॥ तिनकौं मन बशहोइ न ज्यौं ज्यौं ॥

तिनहि भ्रमाय करैं ते अस्त ॥ ९६ ॥ तातैं उद्धव एही ज्ञान ॥ ब्रह्मजानि करि छोडे आन ॥ मेरो
भजन निरंतर करै ॥ जास प्रकाश द्वैत परिहरै॥९७॥अरु उद्धव जो योग कहावै ॥ अष्ट अंगको
वेद बतावै ॥ सो ज्यौं और विधि त्यौं जानौ॥भव मोचक कबहूं मतिमानौ ॥ ९८ ॥ जब याकै
तन प्रबल विकार ॥ करि न सकै भक्ती अधिकार ॥ तातैं बहुविध विधि विस्तरै ॥ मम
विश्वास पाइ परिहरै ॥ ९९ ॥ प्रथमहि योग धारणा करै ॥ सीत उष्णसो गहि परिहरै ॥ एसैं
करि तप पाप निवारै ॥ मंत्रनिग्रह बाधादिक टारै ॥ १०० ॥ भोजन क्षुधा औषधी रोग ॥
यौं तन जतन एकहै योग ॥ कामादिक मानसजु विकार ॥ जीतै मम सुमरण आधार ॥१०१॥
मम भक्तनकी सेवा करै ॥ ता परि दंभादिक परिहरै ॥ याविधि विघ्न समस्त निवारै ॥ मेरो
भजन हृदेमैं धारै ॥ १०२ ॥ अरु एके मूढनके राजा ॥ साधैं योग देहके काजा ॥ जो यह देह
मिटाई चहियैं ॥ देहमिटे मेरौ पद लहियैं ॥ १०३ ॥ मेरो अंश आतमा एह ॥ याकौं दुष दाता
यह देह ॥ ता देह हि जो राष्यौ चहै ॥ ते आपुहि या भवमैं वहै ॥ १०४ ॥ तनके रोग जरा-
दिक टारै ॥ स्वास जीति करि मृत्यु निवारै ॥ अंत मृत्यु होवै कल्पंत ॥ बहुऱ्यो
पावै देह अनंत ॥ १०५ ॥ तातैं वृथा करै श्रम मूढ ॥ मेरो भजन न पावै गूढ ॥ तातैं मैं हौं
संतनि मांहीं ॥ तिनकौं कबहूं आदर नाहीं ॥ १०६ ॥ अरु प्रथमहि जो योगहि करै ॥ विघ्न
निवारि भक्ति विस्तरै ॥ ताकौ तन जो निश्चल होई ॥ तोहूं आदर करै न कोई ॥ १०७ ॥
छोडै योग समाधि समेत ॥ गहि ममचरण बढावै हेत ॥ योग मांहि बाढै हंकार ॥ तातैं नहिं
छूटै संसार ॥ १०८ ॥ तातैं सब तजि मोकौं भजैं ॥ मम अधीन है आपो तजै ॥ मम प्रसाद

एक ॥ ताही करिए देह अनेक ॥ ८३ ॥ महानुभव सकल अनुभाव॥जामें कदैन कर्म स्वभाव॥
नित्यानंद सदा अतिशुद्ध ॥ सदा निरीहरु सदाप्रबुद्ध ॥ ८४ ॥ जाकरि इंद्रिय तन मन प्राना॥
चेतन ह्वै वरतें विधिनाना ॥ जोलों मन अरु वचन न जावै ॥ और कौन विधिताकौं पावै ॥
॥ ८५ ॥ परि जब मोतैं रहितजु भयौ ॥ तब ताकौ सब बल मिटिगयौ ॥ अंधकार आयौ
अज्ञान ॥ जातें दूरि भयौमें भान ॥ ८६ ॥ जब बहुरौ ममशरणहि आवै ॥ तब सो ज्ञानप्र-
कासहि पावैं ॥ तातें छोडै सकल उपाधी ॥ जो मोबिन करलीनी व्याधी ॥ ८७ ॥ ताकों अबहूं
परसै नाहीं ॥ परि मोबिना तजी नहिं जाहीं ॥ मोकों पाइ सकल परिहरै ॥ मेरे चरणनिकों
अनुसरै ॥ ८८ ॥ रविप्रकास मिटै तम जैसैं ॥ ममप्रकास द्वैत भ्रम ऐसैं ॥ सो पुनि मोकौं नहिं
विसरावै ॥ मोहि सेइ मोमांहिं समावै ॥ ८९ ॥ मोमेंहुते न माया ल्यावै ॥ ऐसो मायामें नहिं
आवै ॥ तातें नित्यहि मोमें रहै ॥ मौमिलि परमानंदहि लहै ॥ ९० ॥ उद्धव इतनोहीं अज्ञाना॥
जो केवलमें जानै नाना ॥ ब्रह्म विना कछु दूजो नाहीं ॥ जैसें साप जेवरी मांहीं ॥ ९१ ॥
द्वैत देह जड मिथ्या जानै ॥ चेतन एक ब्रह्म थिरमानै ॥ अरु यह पंचवरन विस्तार ॥ उपजै
विनसै वारंवार ॥ ९२ ॥ जाकौं मिथ्या वेदबखानै ॥ अरु त्यौंहीं गुरु साधू मानै ॥ पुनि अनु
भवतें त्यौंहीं देखै ॥ जागे सुपन जगत त्यौं लेखैं ॥ ९३ ॥ ऐसो जगत सत्यते जानै ॥
पुष्पितबानी वेद बखानै ॥ अंत न श्रुतिके वचन विचारै ॥ उरै कहे तेई उर धारै॥ ९४ ॥ तातें
कर्म काम बहु कहैं ॥ ते मूरष या भवमें बहैं ॥ कर्म विक्षेपित तिनकी बुद्धी ॥ तातें कदे न पावें
सुद्धी ॥९५॥ तातैं तिनकौं लगै न ज्ञान ॥ मूरष आपहि जानैं जान॥तातैं विषयी जीव समस्त॥

महाकलेश लहैं ते त्यौं त्यौं ॥ तिनको मनबस होइ न क्यौंही ॥ श्रमकरि जन्म गमावैं योंही ॥ ३ ॥ तव पद परमानंद समुद्र ॥ ताकौ भेद न जानैं क्षुद्र ॥ करैं योग यज्ञादिक कर्म ॥ तिनतें कदे न छूटै भर्म ॥ ४ ॥ यातें गर्व बढे जो करैं ॥ तातें युग युग जनमें मरैं ॥ केवल भक्त तुमारे जे ते ॥ परमानंद लहैं सब ते ते ॥ ५ ॥ जबहीं तें तव सरणहि आवैं ॥ तबहीं ते तव चरणनि पावैं ॥तबहीते पूरणसुख पावैं॥माया निकट न तिनकौं आवैं॥६॥तातें सहजहि जगत मिटावैं॥तुम चर्णनिमें सहज समावैं ॥तुम ब्रह्मादि सकलके नायक॥सब इनकौं प्रभुताके दायक ॥७॥ तिनके चरण गहैं जे दीन ॥ तुम तिनकौं होवो आधीन ॥ अरु यह कहा अचंभा स्वामी ॥ तुम सबके प्रभु अंतर्यामी॥८॥तिनकौं सब तजि सेवै जोई ॥करै आपवश तुमकों सोई ॥ सीस मुकुटधारीहें जे ते॥तव पद मुक्ति विचारें ते ते॥९॥शमरूप तुम भए मुरारी॥तिन कीनै वा नर अधिकारी॥वानर सकल सषा तुम करे ॥ सबहिनके सबहित आचरे ॥ १० ॥ तातें जो तव कृतहि विचारै ॥ सो क्यौं पल तुम भजन निवारै ॥ तुमहीं नष शिष देह सँवारी ॥ चेतन शक्ति तुमहि पुनिधारी ॥ ॥ ११ ॥सदा रहे तुमरे आधार ॥ तुमहीं तिन प्रतिपालनहार ॥ तो परि जीव तुमहि नहिं जानै ॥ कर्त्ता भर्त्ता औरनि मानै ॥ १२ ॥ तोहूं तुम अवगुण नहिं आनौ ॥ बहुविधि जहँ तहँ रक्षा ठानौ ॥ पुनि जबहीं तव सरणहीं आवै ॥ तव तुमसौं चारौं फल पावैं ॥ १३ ॥ परि तथापि सो अति अज्ञान ॥ तुमकों सेइ लेइ जो आन ॥ चारपदारथ सेवक ताकैं ॥ तुमरी भक्ति विराजै जाकैं ॥ १४ ॥ एक जहां नहीं तुमरो भजनौ ॥ नरक जानि सोई सो तजनौ ॥ तातें जो होवै सर्वज्ञ ॥ तुमरे उपकारनिको तज्ञ ॥ १५ ॥ अरु विधि सम आयुर्बल पावै ॥ बहुविधि

प्रत्युपकार बतावै ॥ तोहूं तव अनृणि नहिं होई ॥ ब्रह्माआदि जहांलौं जोई ॥ १६ ॥ जो तुम बाहिर सतगुरु रूप ॥ भीतर चेतन शक्ति अनूप ॥ यौं जीवनिकै पाप निवारौ ॥ आपहि दे भव संकट टारौ ॥ १७ ॥ तातैं भाषो भजनानंद ॥ सहज मिलौं तव छूटै फंद ॥ ए सुनि प्रिय उद्धवके बयन ॥ बोले कृष्ण कृपाके अयन ॥ १८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ चौपाई ॥ धन्य धन्य उद्धव ममभक्त ॥ सब जीवनके हित अनुरक्त ॥ तोसौं कहौं आपनौ धर्म ॥ जातैं मिटैं सहज सब कर्म ॥ १९ ॥ करते सुख आगै सुखपावै ॥ छोडी भवभय मोमें आवै ॥ उद्धव कर्मकरे नर जे ते ॥ मेरेहेत करै सब ते ते ॥ २० ॥ कर्मनिमें भाषैं मम नाम ॥ मेरे करि राषै धनधाम ॥ मोमें अरपै मनकी वृत्ती ॥ तातैं सब आचरणनि वृत्ती ॥ २१ ॥ मेरी प्रीतिकरै जो करै ॥ मेरी प्रीति रहित परिहरै ॥ जिन देसनिमें मेरे भक्त ॥ तिनकरि बास होइ अनुरक्त ॥ २२ ॥ सुर अरु असुर नरनिमें जे ते ॥ मेरे भक्त भयेहैं के ते ॥ तिन तिनके आचरणनि जानै ॥ त्यौंहीं त्यौं आपै नित ठानै ॥ २३ ॥ मेरेयज्ञ महोत्सव करै ॥ पर्वणिमैं मिलाय विस्तरै ॥ मेरी जहँ जहँ यात्रा होई ॥ तहां तहां चलिजावै सोई ॥ २४ ॥ गीत नृत्य वाजंत्र करावै ॥ छत्र चमर आदिक अधिकावै ॥ अति उदारता करि सब ठानै ॥ ममहित लगै भलो सो जानै ॥ २५ ॥ सब भूतनिमें मोकौं देषै ॥ अंतर बाहिर एकहि लेषै ॥ आप आदि जग मोमें जानै ॥ ज्यौं आकाश अनावृत मानै ॥ २६ ॥ यौं सबमें जानै ममभाव ॥ त्यागे सकल प्रवृत्ति सुभाव ॥ सबहिनकौं सतकारहि करै ॥ ज्ञान दृष्टि भेदहि परिहरै ॥ २७ ॥ एकै विप्र वेद अधिकारी ॥ एकै अंतज महाविकारी ॥ एकै विप्रनिके धनहरता ॥ अरु एकै धनकै विस्तरता ॥ २८ ॥

एके तेजहीन बहु देखै ॥ तेजवंत एकै बहु पेखै ॥ एके क्रूर सकल दुखदाई ॥ एके सात्विक सकल सहाई ॥ २९ ॥ इत्यादिक नाना विधिदेषै ॥ परि जो भेद कहूं नहिं लेषै ॥ मेरी दृष्टि सबनिमें आनै ॥ मम जन पंडित ताहि बखानै ॥ ३० ॥ या विधि सबमें मोकौं जानै ॥ देह भेद कछु वेनहिं आनै ॥ थोरे कालमांहि ता जनकै ॥ सब विकार मिटजावैं मनकै ॥ ३१ ॥ स्पर्धा तिरस्कार हंकार ॥ सकलमिटैं कछु लगै न वार ॥ तातैं देह दृष्टि नहिं धैरै ॥ लोक कुटुंब लाज परिहरै ॥ ३२ ॥ हासीकरें सकल ही लोक ॥ परिसो आनै हर्ष न शोक ॥ तिनकी कछु मनमें नहिं आनै ॥ सब जीवनमैं मोकों जानै ॥ ३३ ॥ षर षच्चर चांडालनि अंत ॥ जा लौं मेरी श्रष्टि अनंत ॥ नमस्कार तिन तिनकों करै ॥ दंड समान धरनिमैं परै ॥ ३४ ॥ ज्यों लगि थावर जंगम मांहीं ॥ मेरो भाव होइ थिरनाहीं ॥ त्यौं लगि मन वच काय समेत ॥ यों सबमें ठानै ममहेत ॥ ३५ ॥ याविधि करत रहे नर जोई ॥ ताकों सकल ब्रह्ममय होई ॥ मिटै अविद्या विद्या पावै ॥ तातैं बंधन सकल मिटावै ॥ ३६ ॥ उद्धव सकल मतेहैं जे ते ॥ ममरूपहि जानै सब ते ते ॥ उद्धव इसो धर्महै मेरो ॥ कथा प्रभाव कहों तिनकेरो ॥ ३७ ॥ मन क्रम वच्चन जहांलौं जे ते ॥ वेदमध्यमैं भाषे ते ते ॥ तिनमें एह मतो ममसार ॥ जातें वेगि मिटै संसार ॥ ३८ ॥ अणुरूप प्रगट जो होई॥क्यौंहीं बहुरि मिटै नहिं सोई ॥ जहां लगें गुणनिर्मित वस्तू॥ तहांलगें सब होवै अस्तू ॥ ३९ ॥ मैं निर्गुण सबगुणनि प्रकासी ॥ तातें ममधर्महि अविनासी ॥ मेरो नास कदे नहिं क्यौंहीं ॥ ममधर्मसु थोरोहूं त्यौंहीं ॥ ४० ॥ अरु उद्धव यह कहा कहीजे ॥ मेरो धर्म कदे नहिं छीजे ॥ उद्धव जो लौकिक व्यवहार ॥ राजस तामस विविध प्रकारा ॥

॥ ४१ ॥ जिनतें केवल होइ अनर्थ ॥ प्रवृत्तिहूंको मिटे न अर्थ ॥ नरकनि माँहीं डारनहार ॥ काम क्रोध द्वेषादि विकार ॥ ४२ ॥ जे तेऊते मौमें करे ॥ तोहूं मोहि लहै भवतरे ॥ जेसें कंस मरण भयकर्‍यौ ॥ मेरो धर्म नहीं आचर्‍यौ ॥ ४३ ॥ परिसो भयहि करी मोमांहीं ॥ ममपद पहुंच्यौ भवमें नाहीं ॥ अरु गोपीनि किये व्यभिचार ॥ लंघे बेद तजे भरतार ॥ ४४ ॥ परि बिभिचारसु मोमें कर्‍यौ॥तोहू तिन भवसागर तर्‍यौ॥अरु जो द्वेषकियो शिशुपाल ॥ जातें जीवन ग्रासै काल ॥ ४५॥ परिसोऊ मोमें करि दोष ॥ भवजल तजि करि पहुच्यौ मोष ॥ योंविष रूप विकारहि जे ते ॥ मोमें ए अमृत भए ते ते ॥ ४६ ॥ तातें यहि विविक चतुराई ॥ यही बुद्धि दूजी नहिं काई ॥ जो जूठे सों साचहि लीजें ॥ पूरणकाज आपनौ कीजें ॥ ४७ ॥ यह जूठो क्षणभंगुर देह ॥ सकल विकारनिको है गेह ॥ ताकरि पइयें हरि अविनासी ॥ निर्विकार पूर्ण सुखरासी ॥ ४८ ॥ यह सब ब्रह्मज्ञानकौ सार ॥ जातें मिटै सहज संसार ॥ मैं संक्षेप मांहि सब कह्यौ ॥ जातें सार न कहिवे रह्यौ ॥ ४९ ॥ यह नर तन अरु यह ममज्ञान ॥ देवनिकौं दुर्लभहीं जान ॥ जद्यपि जीवलहै नरदेह ॥ तोहूं ज्ञान न पावै एह ॥ ५० ॥ तातें में भाष्यौ निजज्ञान ॥ यातें मोहि लहै तजि आन ॥ उद्धव प्रश्न करी तुम जेती ॥ उत्तर सहित कहीमें तेती ॥ ५१ ॥ ते सब तत्त्व बेदकौ जानौ ॥ मेरो परमरूप करि मानौ ॥ यह तुमरो मेरो संवाद ॥ अध्यातम परमातम वाद ॥ ५२ ॥ ताकौं सुनी हृदयमैं धारै ॥ पावै मोहि आपकौं तारै ॥ जो यह मेरो पूरणज्ञान ॥ मेरे भक्तनि देवै दान ॥ ५३ ॥ सो कहिय तुहै मेरो दाता ॥ जहां तहां कहियत विख्याता ॥ जो जो देइ लहै सो सोई ॥ लोक बेद भाषतहै दोई

॥ ५४ ॥ तातें दान देइजो मेरो ॥ में आधीन होइ तिनकेरो ॥ मोहि देइ सो मोकौं पावै ॥ तिनकौं ले मोमांहि समावै ॥ ५५ ॥ जो जन याकौं नितहीं पढै ॥ ता जनको मोसों हित बढै ॥ सो जनमेरो अतिप्रिय होई ॥ ताके सम दूजो नहिं कोई ॥ ५६ ॥ जो यह सुनै नितहि करि सादर॥ और सकलकौ करै अनादर॥सो कर्मनिसौं लिप्त न होई॥मेरी भक्ति लहै दृढ सोई॥५७॥ में यह परमज्ञान उचार्यौ ॥ उद्धव तुम कछु हृदये धार्यौ ॥ शोक मोह भय भयो निवर्त ॥ निश्चल भयो हृदय आवर्त्त ॥ ५८ ॥ उद्धव यह मेरो है ज्ञान ॥ सो मतिजानौ मोतें आन ॥ तातें दंभसहित जो होई ॥ नास्तिक कलह कुवासा सोई ॥ ५९ ॥ प्रीति न जानैं नहिं ममभक्ती ॥ दुर्विनीत विषयनि आशक्ती ॥ तिनकौं ज्ञान न दैनो एह ॥ ज्यौं कलर भूबीजरु मेह ॥ ६० ॥ इन दोषनि करि होइ विहीन ॥ मेरो भक्त प्रीति दृढदीन ॥ इस्त्री सूद्र इसो जो होई ॥ तिनहीसौं अंतर नहिं कोई ॥ ६१ ॥ ऐसी विधि सुज्ञान हिकाहियें ॥ तो तिन सहित परमपद लहियें ॥ जो यह मेरो जानै ज्ञान ॥ ताहि जानवो रह्यो न आन ॥ ६२ ॥ ज्यौं कोई पीवे पीयूष ॥ ताकै दुजी रहै न भूष ॥ ज्ञानरु कर्म जोग अष्टांग ॥ कृषि वाणिज्य नीति सब अंग ॥ ६३ ॥ अर्थरु धर्म मोश अरु काम ॥ इन सबहिनको मोमें धाम ॥ तातें आवै मोमें जोई ॥ इन सबहिनकौं पावै सोई ॥ ६४ ॥ परि मेरो जन कछू न लेवै॥सकल त्याग करि मोकौं सेवै॥तातें साध्यरु साधन जे ते ॥ ममजन देषे मोमें ते ते ॥ ६५ ॥ सब तजि जब चरणनि मम सेवै ॥ आपनि वेदै कछु नहिं लेवै॥ताकै समदूजो प्रिय नाहीं॥सो नित मोमें में तामांहीं॥६६॥जब सुनि एसैं हरिकै बैन॥उद्धव अश्रुकलाकुल नैन॥आगे ठाढो अंजलि बंध॥प्रेममगन तन मन दृढ संध ॥ ६७॥

बैनहुतें बोल्यौ नहिं जावै ॥ कंठहु तैं गदगद सुर आवै ॥ तातैं उद्धव चुपकरि रहै ॥ कछु बेर कछु बैन न कहै ॥ ६८ ॥ बहुर्‍यौ चित्तथंभ करि धीरज ॥ पूरण प्रेम भयौ अब कीरज ॥ निश्चल आपुकृता रथ मान्यौ ॥ सब संदेह हृदेतें भान्यौ ॥ ६९ ॥ हरिके चरणनि माथे धार्‍यौ ॥ उद्धव भक्त वचन उच्चार्‍यौ ॥ जिनतें हरि सों बाढै प्रेम ॥ जिनसौं कहि सुनि उपजै क्षेम॥७०॥ उद्धव उवाच ॥ चौपाई ॥ ॥ नाथ अजन्मा अरु अविनासी ॥ परमानंद परम परकासी ॥ मैं तव सन्निधान जब आयौ ॥ तबहीं सब अज्ञान मिटायौ ॥ ७१ ॥ सन्निधान पावकके जावै ॥ सहज हितम भयसीत गमावै ॥ अरु तापरतुम परम दयालु ॥ मो निजजनपर भये कृपालु ॥ ७२ ॥ यह विज्ञानदीप सुहि दीनौ ॥ जातें सकल शुभाशुभ चीनौ ॥ तुमरे चरण सरण भुवमांहीं ॥ दूजो ठौर कदे सुख नाहीं ॥ ७३ ॥ जो कोई तुम कृतकौं जानै ॥ अरु तो परि भवकौं दुखमानै ॥ जो तुम चरण सरण नहिं आवै ॥ तो दूजे कहँते सुख पावै ॥ ७४ ॥ प्रभुजी तुम अतिकरुणा करी ॥ मम माया फासी परिहरी ॥ सकल जादवनिमांहिस्नेह ॥ अरु जुवत सुत वित ग्रह देह ॥ ७५ ॥ ए सब मेरे मनतें टरै ॥ अपने चरणकमलचित धरै ॥ तुम विस्तार अपनी माया ॥ जिन यह सकल जगत भरमाया ॥ ७६ ॥ सो तुम ज्ञान षड्गसौं छेदी ॥ व्है कृपाल निजप्रीति निवेदी ॥ नमोनमस्ते ज्ञान प्रकासी ॥ योगेस्वर ईस्वर अविनासी ॥ ७७ ॥ दीजै मोहि एकवर देवा ॥ निश्चल हृदय तुमारी सेवा ॥ तुमहि छोडि दूजो नहिं जानौं ॥ परि सेवक ह्वै सेवा ठानौं ॥ ७८ ॥ मोहि प्रसाद दीजियें एह ॥ तुमसौं निश्चल बढै सनेह ॥ यों करि विनति उद्धव भक्त ॥ बोले हरिजी व्है अनुरक्त ॥ ७९ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ चौपाई ॥

तथा अस्तु उद्धव ममभक्त ॥ ममचरणनि निश्चल आसक्त ॥ अब तुम उद्धव ऐसी करौ ॥ लोकनिकौं शिक्षा विस्तरौ ॥ ८० ॥ बदरिषंड आश्रम है मेरौ ॥ अति पुनीत दर्शन तिनकेरौ ॥ तहँ तीरथ ममचर्णनिकौ जल ॥ दरसपरस अस्नान हरेमल ॥ ८१ ॥ नाम अलक नंदा सो गंगा ॥ निर्मल करै दरस सब अंगा ॥ तहां जाइ तुम वासा करौ ॥ फल भच्छन तन बलकल धरौ ॥ ८२ ॥ द्वंद्वसीत उष्णादिक सहौ ॥ विनयादिक सुभलक्षण गहौ ॥ इंद्रियके अर्थनि परि-हरौ ॥ यह विज्ञान ज्ञान उरधरौ ॥ ८३ ॥ मोतें सिखे ज्ञान तुम जोई ॥ बैठि एकांत विचारो सोई ॥ बचन चित्त सब मोमें धरौ ॥ मेरो धर्म सदा विस्तरौ ॥ ८४ ॥ तब गुण तीनोकौं परिहरि हौ ॥ मम निर्गुण पदकौं अनुसरिहौ ॥ यह उद्धव प्रतिज्ञा मेरी ॥ फिरि उत्पत्ति न व्हैहै तेरी ॥ ८५ ॥ याविधि कृष्णवचन उच्चारे ॥ ते उद्धवले मस्तक धारे ॥ चरणनि परि प्रदक्षिणा दीनी ॥ तब चलवेकी इच्छाकीनी ॥ ८६ ॥ जद्यपि द्वंद्व हृदै नहिं आवै ॥ तोहूं हरिजी तजे न जावै ॥ अश्रुकंठ अति आतुर बुद्धी ॥ तन्मय भयौ न तनकी सुद्धी ॥ ८७ ॥ कृष्णवियोगनि क्यौं करिसहैं ॥ वारवार चलि फिरि फिरिरहै ॥ तब अंतर जामी गोपाल ॥ जनकौं जानै प्रेम विहाल ॥ ८८ ॥ निकट बुलाइ मिले दे अंग ॥ ज्ञान रूए कीने सर्वंग ॥ तब आपनी पावरी दीनी ॥ ते उद्धव जन माथे लीनी ॥ ८९ ॥ तोहू प्रथमहि कृष्णपधारै ॥ जादव ले परभास सिधारै ॥ तबहि तहां उद्धव चलि आये ॥ ऋष्ण एकही बैठे पाये ॥ ९० ॥ पुनि मैत्रेय पधारे तहां ॥ कृष्णदेव बैंठे थे जहां ॥ दुहूंकियो हरिकौं परनाम ॥ दर्शन पायौ अति अभिराम ॥ ९१ ॥ ठाढे भए जोरि कर दोई ॥ प्रेममग्न कछु कहै न कोइ ॥

तब तिनकौं हरिभाष्यौ ज्ञान ॥ जैसैं अंधकारकौं भान ॥ ९२ ॥ मैत्रेयकौं दीनौ आदेस ॥ विदुरहि कहियौ यह उपदेस ॥ आग्यादीनी उद्धव जनकौं ॥ अपनी शक्ति कियो थिर मनकौं ॥ ९३ ॥ तब उद्धव हरिचरणनि परे ॥ हरिहृदये निश्चल करि धरे ॥ पुनि उद्धवजन पहुचे तहां ॥ नरनारायण प्रगटे जहां ॥ ९४ ॥ तहां जाइ कीने आचरण ॥ जे जे हरिभाषे ते करण ॥ बलकल अंबर फल आहार ॥ प्रेममग्न नित ब्रह्मविचार ॥ ९५ ॥ तब त्रय गुण बिस्तार मिटायौ ॥ उद्धव ब्रह्म निरंजन पायौ ॥ यह हरि उद्धवको संवाद ॥ हरिजीको है परम प्रसाद ॥ ९६ ॥ जाकौं कृपाकैरे सो पावै ॥ तजि भवसिंधु ब्रह्ममें जावै ॥ जबतैं याकौं भाषै सुनै ॥ प्रेमसहित हृदयेमें गुनै ॥ ९७ ॥ तबतैं पावे परमानंद ॥ श्रमही विना मिटै दुषद्वंद ॥ यह स्वयमेव आप हरिकह्यौ ॥ जामें कछु संदेह न रह्यौ ॥९८॥ यामें एसो कृष्ण प्रभाव॥ मिटे जगत उपजै हरिभाव॥ जिन हरि प्रगट अमृत द्वै करे ॥ भक्तिनि पाइ सकल दुषहरे ॥ ९९ ॥ एक जलधितें अमृत उपा-यौं ॥ निजाधीर देवनिकौं पायौं ॥ जरा रोग आदिक दुषहरै ॥ बल उपजाइ विगत भयकरै ॥ १०० ॥ अरु दूजो यह अमृत एक ॥ वेद सिंधुतें ब्रह्मविवेक ॥ सो आपनें जन निकौं पायौ॥ जन्म मरण भव भयहि मिटायौ ॥ १०१ ॥ ऐसैं आदिपुरुष अविनासी ॥ सुनत मिटै जिनही भवफासी ॥ कृष्णराम लीनौ अवतार ॥ तिनकौं वंदन वारंवार ॥ १०२ ॥ ॥

दोहा ॥ ऐसौ शुनि शुकदेवसौं, परम तत्त्व उपदेश ॥ कृष्णकथाके प्रेमसौं, कीनौ प्रश्न नरेस ॥ १०३ ॥ इति श्रीभागवतमहापुराणएकादशस्कंधे श्रीभ

गवदुद्धवसंवादेभाषायांउद्धवमुक्तिनिरूपणंनामएकोनत्रिंशतितमोऽध्यायः ॥ ॥ २९ ॥ ॥ इतिभगवदुद्धसंवादसंपूर्ण ॥

दोहा ॥ ॥ इच्छाहै निजधामकी, मूशल छलकों धार ॥ कहत तीसवैं ध्यायमैं, यदुकुलको संहार ॥ १ ॥ प्रथम सुनी संक्षेपजो, अबपूछीं बिस्तार ॥ श्रीधर कथाऽवसानमैं नृपप्रति श्रीशुकसार ॥ २ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ हेप्रभु हरिकी कथा सुनावो ॥ कर्णपूट अमृत यह पावो ॥ हरि उपदेश उद्धवहि दीनौ ॥ पीछैं आप कहा तिन कीनौ ॥ १ ॥ यादव कुलकों प्रगटौ श्राप ॥ हरिजी कहाकर्‍यौ तब आप ॥ ईश्वरकौं बाधा नहिं कोई ॥ अरु द्विजशाप न मिथ्या होई ॥ २ ॥ सबके तन मन मोहन देह ॥ परमानंद सुधाको गेह ॥ जो नारी हरि दर्शन पावैं ॥ तिनसौं नैन न षैंचे जावैं ॥ ३ ॥ अरु जे हरिके रूपहि गावै ॥ बानी सहित मानते पावै ॥ अरु जे सुनिकरि हृदये धरै ॥ ते पलको नहिं छोडे परै ॥ ४ ॥ भारतमें अर्जुन रथमांहीं ॥ बैठे दर्श लहै जा जाहीं ॥ तिन तिन हरिकी समता पाई ॥ सब संसृति ततकाल गमाई ॥ ५ ॥ ऐसो तन हरि त्याग्यौ कैसैं ॥ कोई हरै नागमणि जैसैं ॥ ऐसैं वचन कहे नर देव ॥ उत्तर दीनौ श्रीशुकदेव ॥ ६ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ॥ ॥ चौपाई ॥ द्वारावति ऊठे उत्पात ॥ तिनकौं देषि कही हरिबात ॥ उग्रसेन आदिक सबलोक॥ सभा सुधर्मा हर्ष न सोक ॥ ७ ॥ तिनसौं कृष्णवचन उचारे ॥ हरिको मर्म न लषै विचारे ॥ निजमायासों मोहित करे ॥ ज्ञान विवेक सबनिके हरे ॥ ८ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ हेयादवो सुनो मम बात ॥द्वारावती बहुत उत्पात ॥ ए उत्पातहि मृत्यु निसा

ना ॥ तातैं तजिये यह अस्थाना ॥ ९ ॥ युवती बाल वृद्ध सब जे ते ॥ संखोद्धार पठैयें ते ते ॥ औरो सकल प्रभासहि जैयें ॥ तहँ पश्चिम सरस्वति अहैयें ॥ १० ॥ करी स्नान तन निर्मल करियें ॥ सुद्ध हृदय तीरथ वृतधरियें ॥ जे जे बहुत पितृ अरु देवा ॥ तिनकी करियें पूजा सेवा ॥ ११ ॥ अरु विप्रनकी पूजा कीजैं॥ करि सन्मान दान बहुदीजैं ॥ गाइ भूमि सोनों वस्त्रादी॥ हय हाथी रथ अन्न गृहादी ॥ १२ ॥ आशीर्वाद द्विजनको लीजैं ॥ जातें विघ्न सकल हू छीजैं ॥ देवरु विप्र गाइकी पूजा ॥ पापहरण विधि धर्म न दूजा ॥ १३ ॥ ऐसी सुनि हरि जीकी बानी ॥ सब यादवनि भलीकरि मानी ॥ नावनि बैठि सिंधुतें उतरै ॥ चढि करि रथनि प्रयाणौ करै॥१४॥ज्यौं हरि तिनकौं आग्यादीनी॥त्यौं त्यौं सबनि सबै विधिकीनी ॥ करि अस्नान धर्म बहुठानैं॥मध्य प्रभास आप बहुमानैं॥१५॥तब तिनकीयो मदिरा पान ॥ जातें भूलिगये सब ज्ञान ॥ तबते मत्त सकलहीं भये ॥ हरि माया विवेक हरिलये॥१६॥तिनमैं कलह भयौ उत्पन्न ॥ सब में प्ररके हरि प्रछन्न ॥ तब तिनकी ता सभा मझारी ॥ सात्यकि वीर गिराउच्चारी ॥ १७ ॥ कृत-वर्माको करि अपमान ॥ सात्यकि छोडे बाणीबान ॥ भाई जो क्षत्रिय तनधारी॥अरु बहुमें कहियें अधिकारी ॥ १८ ॥ सो ऐसी क्यौं करै ॥ सोवत बालनिकै सिरहरै ॥ यह प्रद्युम्नवचन सत-कार्‍यौ ॥ कृतवर्माकौं अति धिकार्‍यौ ॥ १९ ॥ तब कृतवर्मा कीनौ क्रुद्ध ॥ वाणीवाण प्रकास्यौ जुद्ध ॥ अरे करे क्षत्रियको ऐसी ॥ व्याध क्रूरतें कीनी जैसी ॥ २० ॥ भूरीश्रवा निरायुध भयौ ॥ जाकौ बाहु जुगल कटि गयौ ॥ ताकौ वधतें कीको एसैं ॥ व्याध कसाइ करै नहिं जेसैं ॥ २१ ॥ तब सात्यकि उठि बोलै बानी ॥ सुनोसुनोहे सारंगपानी ॥

इनको यश अरु आयु सरायौ ॥ तातैं इसौ मतो ह्वै आयौ ॥ २२ ॥ एकहि वचन षड्ग तिनकाढयौ ॥ कृतवर्माकौं मस्तक बाढयौ ॥ यद्यपि सबमिलि बहुत निवार्‌यौ ॥ तोहू सात्यकि क्रोध न टार्‌यौ ॥ २३ ॥ तातैं सकल भये ते क्रुद्ध ॥ सात्यकिहीसौं ठान्यौ युद्ध ॥ तातैं सकल भए द्वै ओर ॥ युद्ध रच्यौ सागरतट घोर ॥ २४ ॥ केई धनुष बानसौं लरैं ॥ केई षड्गगहें संहरैं ॥ केई फरसी गदा कुठार ॥ केई ले हसि हाथप्रहार ॥ २५ ॥ केई ग़ुरंज गोफना केई ॥ वृक्षादिकनि लरैं ते तेई ॥ हरषित सबै करैं संग्राम ॥ बैठे देखें कृष्णरु राम ॥ २६ ॥ हायसौं हयहाथीसौं हाथी ॥ रथसौं रथ साथीसौं साथी ॥ खरसौं खर ऊंठै ॥ ऊंठैनिसौं ॥ महिषरु महिष बैल बैलनिसौं ॥ २७ ॥ षच्चरसौं षच्चरमिलि लरैं ॥ नरसो नरसौं नरमिलि युद्धहि करैं ॥ महामत्त ह्वै लररहीं ऐसे ॥ युद्ध करै बनमैं गज जैसें ॥ २८ ॥ सांब प्रद्युम्न न ठान्यो युद्ध ॥ त्यौं अक्रूर भोज अतिक्रुद्ध ॥ अरु संग्राम जीत सुभद्र ॥ करैं युद्ध वीरनकौ भद्र ॥ २९ ॥ गदसे नाम कृष्णको भ्राता ॥ नामसु चारु पुत्र विख्याता त्यौं सात्यकिसौं मिलि अनिरुद्ध ॥ सुरथ सुमित्र करैं मिलियुद्ध ॥ ३० ॥ उल्मुकनि सठ सहस्र सतजीत ॥ जोधा भानू आदि अमीत ॥ आपु आपुमैं युद्धहि ठानैं ॥ हरिकरि मोहित कछु नहिं जानैं ॥ ३१ ॥ वृष्णिवंश दाशारहवंश ॥ सात्वत अंधक भोजवतंश ॥ अर्बुद सूरसेन मधुमाथुर ॥ देश विसर्जन कुंतय कूकुर ॥ ३२ ॥ आपु आपुमिलि युद्धहि ठान्यौ ॥ सबनि परस्पर सुहृदय भान्यौ ॥ पुत्र पिता भाई अरु भाई ॥ मामा अरु भानेज लराई ॥ ३३ ॥ काके भतिजे नाती नाना ॥ मित्र मित्रमिलि युद्धहि ठाना ॥ सुहृद सुहृद ज्ञातिनसौं ज्ञाती ॥ सबमिलि भए परस्पर घाती ॥ ३४ ॥ तब सरक्षीण भए सब तिनके ॥ टूटै धनुष तथा सब जिनके ॥

आयुध सकल छीन जब भए ॥ तब तिन करनि ऐरकालए ॥ ३५ ॥ भइ मूसल चूरणतें जेतें ॥ वज्रसमान सिंधुतट ते ॥ सकल करनि करिलीनै ॥ हरिसौं युद्ध क्रोधहीं कीनै ॥ ३६ ॥ रामकृष्ण बहुभांति निवारै ॥ परिते मूरख कछु न विचारै ॥ शपकृष्णकौं रिपुक रि जानै ॥ युद्ध बुद्धि अंतर्गत आनै ॥३७॥तब आपहूं कियौ तिनकोप ॥ कर्‍यौ चहैं सबाहिन-को लोप ॥ तब ऐरका करनि तिनलिये ॥ थोरे मांहि प्रलय सबकिये ॥ ३८ ॥विप्रशाप आच्छा-दित करैं ॥ हरिमाया विचार सबहरै ॥ प्रकटक्रोध अग्निक तहँ भयौ ॥ वांसविपिन कुलजरि मरि गयौ ॥ ३९ ॥ तब कुल सकल नष्ट हरि देख्यौ ॥ भूको भार उतार्‍यौ लेख्यौ ॥ जाकारण लीनौ अवतार ॥ सो परिहर्‍यौ धरणिको भार ॥ ४० ॥ तब समुद्रतटमें बलिभद्र ॥ कीनौ ब्रह्मध्यान अतिभद्र ॥ आपुहि ब्रह्ममांहि ले राख्यौ ॥ मानव देह दूरिकरि नाख्यौ ॥ ४१ ॥ रामप्रयाण लख्यौ हरि जबहीं ॥ लघुपिप्पलतलि बेठे तबहीं ॥ निर्मलरूप चतुरभुज धार्‍यौ ॥ दशहु दि-शाको तिमिर निवार्‍यौ ॥ ४२ ॥ ज्यौं बिनधूम अनल परकासा ॥ ऐसो प्रगटहि भयो उजासा॥ पीतवसन नूतन घनस्याम ॥ तप्तहेम सोभा अभिराम ॥ ४३ ॥ सुंदरहाससहित मुखपद्म ॥ कमलनयन सोभाके सद्म ॥ कर्णनि कुंडल मकराकार ॥ शीसमुकुट सोभा अधिकार ॥ ४४ ॥ रुचिर नील शिरकेश विसाल ॥ उर भृगुलता मणी बनमाल ॥ गळकौस्तुभ कटिसूत्र विराजै ॥ छुद्रघंटिका नूपर राजै ॥ ४५ ॥ बहु आभूषण भूषण अंग ॥ देखत मोहे अमित अनंग ॥ आयुध मूरतिवंत समस्त ॥ सुमर ताजि नहि होई भय अस्त ॥ ४६ ॥ उत्तम चरणकमल आरक्त ॥ जिनकौं उर ध्यावैं नितभक्त ॥ दक्षिण जंघानीचै कर्‍यौ ॥ वाम चरण ता ऊपर

धऱ्यौ ॥ ४७ ॥ यों निश्चल ह्वै बैठे कृष्ण ॥ सुमर तजि नहि मिटै भव तृष्ण ॥ अतिलघु मूशल षंडजु रह्यौ ॥ जलमें डाऱ्यौ मच्छहि गह्यौ ॥ ४८ ॥ सो वह मच्छ जालमैं आयौ ॥ ताकै उदर लोहसो पायौ ॥ जरा व्याध भलकासो कीनौ ॥ लेकरि शरके आगै दीनौ ॥ ४९ ॥ सो वह व्याधहुतो बनमांहीं ॥ हरिको पद तिन जान्यौ नाहीं ॥ हरिको चरण दृष्ट जब पऱ्यौ ॥ मृग मुष जानि घात तिन कऱ्यौ ॥ ५० ॥ सोई बाण लगायो चरण ॥ विप्रवचन नहिं मिथ्या करण ॥ सो वह बधिक निकट चलि आयौ ॥ रूप चतुर्भुज दर्शन पायौ ॥ ५१ ॥ चरणलग्यौ तब देष्यौ बान ॥ जराभयो तब मृतक समान ॥ चरणनि परि बोल्यो भयभीत ॥ कंपत अंग लग्यो ज्यौं सीत ॥ ५२ ॥ हेप्रभु मैं कीनौ अपराध ॥ तुमहि न जान्यौं मूरख व्याध ॥ यह मैं कीनौ सकल अजानै॥बान चलायौ मृगमुष जानै॥५३॥यह अपराध तुमहि प्रभुटारौ ॥जे तुम नाम लियेतें तारौ ॥ तुम सुमरण सब पाप विनासै ॥ मिटि अज्ञानहि ज्ञान प्रकासै ॥ ५४ ॥ ब्रह्मआदि करें आराध॥तिनको में कीनौ अपराध ॥ तातैं प्रभुजि बिलंब न करौ॥मो पापीके प्राणनि हरौ ५५ जातैं बहुरों करौं न ऐसो ॥ यह अपराध कऱ्यौ मैं जैसो ॥ जिनकी मायाकौ विस्तार ॥ ब्रह्मा शिव सनकादिकुमार ॥ ५६ ॥ औरौ श्रुति दृष्टाहैं जे ते ॥ क्यौंही जानिसकैं नहिं ते ते ॥ मोहित सकल तुमारी माया ॥ तातैं किनहूं पार न पाया ॥ ५७ ॥ तिनकौं पापयोनि हम जे ते ॥ कौन भांतिकरि जानै ते ते ॥ तातैं अब दूजी न विचारौ ॥ बेगी मो पापीकौं मारौ ॥ ५८॥ ऐसी जरा बधिककी बानी ॥ सुनि निहकपटहि सारंगपानी ॥ तब प्रभु आप वचन उच्चाऱ्यौ ॥ ताको सकल सोकभय टाऱ्यौ ॥ ५९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ चौपाई ॥ उठ उठ जराभयहि मति

आनौ ॥ अपनो कऱ्यौ पाप मति जानौ ॥ यह समस्त लीलाहै मरी ॥ यामैं कहा शक्तिहै तरी॥
॥ ६० ॥ मेरी कृपा जाई तूं स्वर्ग ॥ जहां महासुष नहिं उपवर्ग ॥ ऐसें बचन कहे हरि जबहीं ॥
ढऱ्यौ विमान स्वर्गतें तबहीं ॥ ६१ ॥ तीन परीक्रम अरु परनाम ॥ करिकैं बधिक गयौ सुरधाम॥
चढि विमान स्वरलोकहि गयौ ॥ जय जय शब्द जहां तहं भयौ ॥ ६२ ॥ तब रथ लिये सारथी
देषै ॥ परि हरिजीकौं कहूं न पेषै ॥ तुलसी गंध पवन जब पायौ ॥ ताकों षोज कृष्णपें आयौ ॥
॥ ६३ ॥ पिप्पलमूल कियो हे आसन ॥ प्रभा मनहु शशिसूरहुताशन ॥ आयुध आगे
मूरतिवंत ॥ यों देषे निजपति भगवंत ॥ ६४ ॥ तब दारुक धीरज नहिं कऱ्यौ ॥ रथ तजि
विह्वल चरणनि पऱ्यौ ॥ उमग्यौ हृदय नैनजल छाये ॥ प्रेममगन मुषबैन न आये ॥ ६५ ॥
तबकरि धीरज आंसु निवारें ॥ करुणासहित वचन उच्चारें ॥ हेप्रभु मैं तुमचरण न देषे ॥ ते
पल पलक कलपकरि लेषे ॥ ६६ ॥ जबतें नष्ट दृष्टमें भयौ ॥ सबदुष एकवार अनुभयौ ॥ भूलि
दिशान कहूं सुषपायौ ॥ ज्यौं उडुपति निसिमांहि छिपायौ ॥ ६७ ॥ तुम बिनमें ज्यौं तनबिन
प्रान ॥ जैसे नैन अंधबिन भान ॥ एसें वचन कहतही सूत ॥ देष्यो एकचरित
अदभूत ॥ ६८ ॥ गगनहुतें उत्तम रथआयौ ॥ हयनि सहित अरु गरुड सुहायौ ॥ मूर्तिवंत
हरि आयुध जे ते ॥ रथमें जाइ चढे सब ते ते ॥ ६९ ॥ यह चरित्र दारुक जब देष्यौ ॥ विस्मय
भयौ अचंभा लेष्यौ ॥ तब हरि सूतहि बचन सुनाए ॥ करि सन्मान दुःष विसराए ॥ ७० ॥
श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चोपाई ॥ सूत द्वारिकाकौं तुम जावौ ॥ समाचार सब जाइ सुनावौ ॥

सबकौ मरण राम निर्याणौ ॥ अरु मैंहू अब करत प्रयाणौ ॥ ७१ ॥ द्वारावती रहो मतिकोई ॥

तनके धारि जहांलौं जोई ॥ यह नरलोक तजों में जबहीं ॥ सिंधु द्वारिका बोरै तबहीं ॥ ॥ ७२ ॥ हमरै मातपितादिक जेई ॥ ले अपनै लोकनि ते तेई ॥ दिली जईयो अर्जुन संगा ॥ रहे द्वारिका व्है हो भंगा ॥ ७३ ॥ तिनकों यह संदेश सुनावो ॥ अरु तुम मम धर्मनि मन लावो ॥ मम माया रचना यह जानो ॥ नाम रूप सब मिथ्यामानो ॥ ७४ ॥ क्षणभंगुर सब नाना रूप ॥ निश्चल जानो मोहि अनूप ॥ जहँ तहँ व्यापक मोकों जानो ॥ नाम रूप मम मायामानो ॥ ७५ ॥ मेरे चरण निरंतर भजो ॥ दूजी सकल वासना तजो ॥ ऐसें ह्वै आवो मोमांहीं ॥ जातें फिरि दुष पावो नाहीं ॥ ७६ ॥ यह सुनि सूत कृष्णसों ज्ञान ॥ छोडे सोक मोह भय आन ॥ नमस्कार करि वारंवार ॥ प्रदक्षिणादे विविध प्रकार ॥ ७७ ॥ हरि बियोगतें अतिदुष पायो ॥ ज्ञानविचार चित्त ठहरायो ॥ हरिके चरणकमल चितधारै ॥ तब दारुक द्वारिका पधारै ॥ ७८ ॥ दोहा॥यह नृपमैं तुमसौं कह्यौ,यदुकुलको संहार॥अब भाषौं हरिको गमन,अरु हरिजन उद्धार ॥ ७९ ॥ इतिश्रीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधेश्रीशुकपरीक्षितसंवादेभाषायांबलदेवनिर्याणोनामत्रिंशतितमोऽध्यायः॥ ३० ॥ ॥ ॥

॥ दोहा ॥ ॥ कृष्णपधारे धामकौं,एकतीसवैं ध्याय ॥ तिनके पीछे प्रीतितैं, वसु देवादिक जाय ॥ १ ॥ हरिभजनके हेतकों,लीला विग्रहरूप ॥ श्रीधरभजै सुभावतैं तजै, अंध भवकूप ॥ २ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ तब ब्रह्मा सनकादिनि लिये ॥ भृग्वादिकनि तथा संगकिये ॥ सहित भवानी शंकरदेव ॥ इंद्रादिक अरु

सुर उपदेव ॥ १ ॥ विद्याधर किन्नर गंधर्व ॥ पितर महोरग चारण सर्व ॥ गरुड लोक पंक्षी अरु सिद्ध ॥ हरिके दर्श कामनाविद्ध ॥ २ ॥ सबमिलि हरिदर्शनकौं आए ॥ सब मिलि हरिके दर्शन पाए ॥ हरिके जन्म कर्म गुन गावैं ॥ सबमिलि जय जय शब्द सुनावैं ॥ ३ ॥ सकल विमान नि छायौ गगन ॥ वरषें पुष्प प्रेमकरि मगन ॥ वारंवार करें परनाम ॥ मुषतें भाषें हरिको नाम ॥ ४ ॥ ब्रह्मादिक सब कृष्णविभूती ॥ कृष्णहि करि तिनकी उदभूती ॥ ते समस्त देषै भग वान ॥ नैंन मुंदित बठान्यौं ध्यान ॥ ५ ॥ ब्रह्मरु आप एककरि ध्यायौ ॥ द्वैतभाव सब दूरि बहायौ ॥ निजतन लोकनिकौं अभिराम ॥ ध्यान धारणा मंगलधाम ॥ ६ ॥ ताकौं अग्नि धारणा करी ॥ अग्निउपाय भस्मसो करि ॥ तब हरिजी वैकुंठ सिधारे॥याविधि सबकै कारज सारे ॥ ७ ॥ तब दुंदुभि बाजे सुरलोक ॥ उपज्यौ हर्ष मिट्यो भयशोक ॥ सत्यरु कीरति धीरज धर्म ॥ सोभा अरु जे उत्तमकर्म ॥ ८ ॥ ते सब गए संग जगदीश॥ जातें हरि सबहिनके ईश॥ तातें जहांकथाहरिजीकी ॥ पूजाध्यानधारणानीकी ॥ ९ ॥तहांसमस्तरहैंतेईते ॥ इत्यादिक सब विधि जेईते ॥ ब्रह्मा आदि सकल सुरजेते ॥ हरिकी गती न जानैं ते तें ॥ १० ॥ हरि वैंकुंठ प्रयाणो कर्‍यौ ॥ सो किनहूंकौं जान न पर्‍यौ ॥ कहूं नहीं तिन हरिकौं देख्यौ ॥ ब डौ अंचभा सबहि न लख्यौ ॥ ११ ॥ जेसैं मेघ होइ आकाश ॥ अरु दामनी प्रगट घनपास ॥ ह्वै करि प्रगट गुप्त ह्वै जावै ॥ ताको षोज न कोई पावै ॥ १२ ॥ त्यौं हरिकियो प्रयाणो जबहीं ॥ काहू तिनहिं न देख्यौ तबहीं ॥ भूमें प्रगट हुते तब देखे ॥ गुप्त भए किनहू नहिं पेखे ॥ १३ ॥ हेंनृप एह अचंभा नाहीं ॥ शक्ति अनंत सदा हरिमांहीं ॥ यदुकुलमैं हरिको अवतार ॥ अरु

तनके धारि जहांलौं जोई ॥ यह नरलोक तजौं में जबहीं ॥ सिंधु द्वारिका बोरै तबहीं ॥ ॥ ७२ ॥ हमरे मातपितादिक जेई ॥ ले अपनै लोकनि ते तेई ॥ दिली जईयो अर्जुन संगा ॥ रहे द्वारिका व्है हौ भंगा ॥ ७३ ॥ तिनकों यह संदेश सुनावौ ॥ अरु तुम मम धर्मनि मन लावो ॥ मम माया रचना यह जानौ ॥ नाम रूप सब मिथ्यामानौं ॥ ७४ ॥ क्षणभंगुर सब नाना रूप ॥ निश्चल जानौ मोहि अनूप ॥ जहँ तहँ व्यापक मोकौं जानौं ॥ नाम रूप मम मायामानौ ॥ ७५ ॥ मेरे चरण निरंतर भजौ ॥ दूजी सकल वासना तजौ ॥ ऐसैं ह्वै आवो मोमांहीं ॥ जातें फिरि दुष पावौ नाहीं ॥ ७६ ॥ यह सुनि सूत कृष्णसों ज्ञान ॥ छोडे सोक मोह भय आन ॥ नमस्कार करि वारंवार ॥ प्रदक्षिणादे विविध प्रकार ॥ ७७ ॥ हरि बियोगतें अतिदुष पायौ ॥ ज्ञानविचार चित्त ठहरायो ॥ हरिके चरणकमल चितधारै ॥ तब दारुक द्वारिका पधारै ॥ ७८ ॥ दोहा ॥ यह नृपमैं तुमसौं कह्यौ, यदुकुलको संहार ॥ अब भाषौं हरिको गमन, अरु हरिजन उद्धार ॥ ७९ ॥ इतिश्रीभागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधेश्रीशुकपरीक्षितसंवादेभाषायांबलदेवनिर्याणोनामत्रिंशतितमोऽध्यायः॥ ३० ॥ ॥ ॥

॥ दोहा ॥ ॥ कृष्णपधारे धामकौं, एकतीसवें ध्याय ॥ तिनके पीछे प्रीतितैं, वसु देवादिक जाय ॥ १ ॥ हरिभजनके हेतकों, लीला विग्रहरूप ॥ श्रीधरभजै सुभावतैं तजै, अंध भवकूप ॥ २ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥ तब ब्रह्मा सनकादिनि लिये ॥ भृग्वादिकनि तथा संगकिये ॥ सहित भवानी शंकरदेव ॥ इंद्रादिक अरु

सुर उपदेव ॥ १ ॥ विद्याधर किन्नर गंधर्व ॥ पितर महोरग चारण सर्व ॥ गरुड लोक पंक्षी अरु सिद्ध ॥ हरिके दर्श कामनाविद्ध ॥ २ ॥ सबमिलि हरिदर्शनकौं आए ॥ सब मिलि हरिके दर्शन पाए ॥ हरिके जन्म कर्म गुन गावैं ॥ सबमिलि जय जय शब्द सुनावैं ॥ ३ ॥ सकल विमानि छायौ गगन ॥ वरषें पुष्प प्रेमकरि मगन ॥ वारंवार करें परनाम ॥ मुषतें भाषें हरिको नाम ॥ ४ ॥ ब्रह्मादिक सब कृष्णविभूती ॥ कृष्णहि करि तिनकी उदभूती ॥ ते समस्त देषे भगवान ॥ नैंन मुंदित बठान्यौं ध्यान ॥ ५ ॥ ब्रह्मरु आप एककरि ध्यायौ ॥ द्वैतभाव सब दूरि बहायौ ॥ निजतन लोकनिकौं अभिराम ॥ ध्यान धारणा मंगलधाम ॥ ६ ॥ ताकौं अग्नि धारणा करी ॥ अग्निउपाय भस्मसो करि ॥ तब हरिजी वैकुंठ सिधारे॥याविधि सबके कारज सारे ॥ ७ ॥ तब दुंदुभि बाजे सुरलोक ॥ उपज्यौ हर्ष मिट्यो भयशोक ॥ सत्यरु कीरति धीरज धर्म ॥ सोभा अरु जे उत्तमकर्म ॥ ८ ॥ ते सब गए संग जगदीश॥ जातें हरि सबहिनके ईश॥ तातें जहांकथाहरिजीकी ॥ पूजाध्यानधारणानीकी ॥ ९ ॥तहांसमस्तरहैंतेईते ॥ इत्यादिक सब विधि जेईते ॥ ब्रह्मा आदि सकल सुरजेते ॥ हरिकी गती न जानैं ते तें ॥ १० ॥ हरि वैकुंठ प्रयाणो कर्यो ॥ सो किनहूंकौं जान न पर्यो ॥ कहूं नहीं तिन हरिकों देख्यौं ॥ बडो अंचभा सबहि न लख्यौ ॥ ११ ॥ जेसैं मेघ होइ आकाश ॥ अरु दामनी प्रगट घनपास ॥ ह्वै करि प्रगट गुप्त ह्वै जावै ॥ ताको षोज न कोई पावै ॥ १२ ॥ त्यौं हरिकियो प्रयाणो जबहीं ॥ काहू तिनहिं न देख्यौं तबहीं ॥ भूमें प्रगट हुते तब देखे ॥ गुप्त भए किनहूं नहिं पेखे ॥ १३ ॥ हेंनृप एह अचंभा नाहीं ॥ शक्ति अनंत सदा हरिमांहीं ॥ यदुकुलमैं हरिको अवतार ॥ अरु

करिवौ नाना व्यवहार ॥ १४ ॥ सो समस्त माया करि जानौ ॥ हरिकी शक्ति होत सब मानौ ॥ हरिजी सदा एक रस रहै ॥ कर्म न करै जन्म नहिं गहै ॥ १५ औरै कर्म करत सब जानैं ॥ जन्मलियौ हरिजीको मानैं ॥ ए सब देहनिके व्यवहार ॥ हरिजी इन सबहिनकै पार ॥ १६ ॥ जैसैं नटबाजी विस्तारे ॥ बहुऱ्यौ आपहि सकल निवारै ॥ बाजीगरहि सकलतें न्यारा ॥ यौं हरि कर्म अरु अवतारा॥१७॥जिन हरि रच्यौ त्रिगुण संसारा ॥ नानाभांति प्रगट आकारा ॥ आप प्रवेश कियौ तिन तिनमैं ॥ सब बरताइ बिनासै छिनमैं ॥ १८ ॥ अंत आपकै आप हि रहै ॥ त्यौंही इन अवतारनि गहैं ॥ गुरुको मृतक पुत्र जिन आन्यौ ॥ काल मृत्यु को गर्वही भान्यौ ॥ १९ ॥ ब्रह्मशस्त्रतैं तुमहिं बचायो ॥ बधिकहि स्वर्ग सदेह पठायो ॥ तेजो अपनी रक्षाकरते ॥ तो तिनकौं काहे परि हरते ॥ २० ॥ सब जगकी उत्पत्ति ॥ प्रतिपाल ॥ नासकरै जिनकै बलकाल ॥ ऐसैं सकल शक्तिमय देवा ॥ ब्रह्मा आदिकरै जा सेवा ॥ २१ ॥ हरिवेकौं धरनिको भार ॥ धऱ्यो हु तौ मानुष अवतार॥तासौं भूकौ भार उताऱ्यो॥ पीछेउहै दूरिकरि डाऱ्यौ ॥ २२ ॥ ज्यौं कांटो लाटो लागे पगमांहीं ॥ सो काटे बिन निकसै नाहीं कांटे कांटो काढ्यो जबहीं ॥ सोऊ डारिदियो पुनि तबहीं ॥ २३ ॥ त्यौं हरि मृतक देह क्यौं राषै ॥ निजानंद पदसौं नाषैं ॥ अरु एकै अतिही अज्ञान ॥ तिनकौं प्रगट दिषायो ज्ञान ॥२४॥ योग साधिकरि राषे देह ॥ पुरुषारथ करि मानैं एह ॥ सकल विकारनिको आगार ॥ ताकौं राषितजैं सुख सार ॥ २५ ॥ तातैं तिनको मोह मिटायौ ॥ देह तजे तें ब्रह्म बतायौ ॥ ऐसैं तनकौ कियो अनादर ॥ तातैं कोई करै नहिं आदर ॥ २६ ॥ तातैं हरि वैकुंठ पधारै ॥

बाजी ज्यौं देहादि निवारै ॥ ब्रह्मा हर इंद्रादिक जे ते ॥ देषि प्रयाणौ हरिको तेते ॥ २७॥ विस्मय भए कृष्ण गुणगावैं ॥ अपनैं अपनैं लोकनि जावैं ॥ जो हरिचरित पढै उठि प्रात ॥ कृष्णदेवका निर्मल बात ॥ २८ ॥ सो दृढभक्ति कृष्णकी पावै ॥ जातैं कृष्णलोकमैं जावै ॥ हरि दारुक द्वारिका पाठयौ ॥ सो वसुदेव नृपतिपैं आयौ ॥ २९ ॥ भयो वियोग विकल अतिचित्त ॥ जेसै कृपण गएतें वित्त ॥ तिन दोनोंके चरणनि परे ॥ तब सारथी वचन उच्चरे ॥ ३० ॥ आंसु प्रवाह चले नैननितैं ॥ अति व्याकुल अटपट बैंननितैं ॥ सब यदुकुलको नास सुनायो ॥ अरु बलको निर्याण जनायो ॥ ३१ ॥ यौं सुनिलोक तप्त सब भये ॥ करत विलाप प्रभासहि गये ॥ तहां जाइ हरिजी नंहिं देषे ॥ तब वैकुंठ गए करि लेषे ॥ ३२ ॥ तब रोहिणि देवकि वसुदेव ॥ उग्रसेन राजा नरदेव ॥ हरि विजोगतैं उपज्यौ सोक ॥ तातैं चहूं तज्यौ नरलोक ॥ ॥ ३३ ॥ रामकृष्णको इसो विजोग ॥ जातें मिथ्यौ देह संजोग ॥ बल युवती सब ले बलदेह ॥ अग्नि प्रवेश कियो अतिनेह ॥३४॥ वसुदेवहि ले षोडश नारी ॥ किय सह गमन चिता संवारी॥ प्रद्युम्नहि जहांलौं जे ते ॥ तिनकी त्रियनि लियै सब ते ते॥३५॥ सबहिनकै अति कृष्णविजोग॥ जातैं कऱ्यौ अग्नि संजोग ॥ हरिकी वधू जहांलौं जेती ॥ रुकमनि आदि सकल मिलि तेती॥ ॥ ३६ ॥ हरिकौ रूप हृदेमें धऱ्यौ ॥ अग्नि प्रवेश सकल मिलि कऱ्यौ ॥ अर्ज्जुन परमसखा हरिजीकौ ॥ कृष्णवियोग प्रहारकजीकौ ॥ ३७ ॥ तातैं अर्ज्जुन अति दुखपायौ ॥ कृष्णज्ञान तब हृदये आयौ ॥ गीता मांहि कह्यौ हरिज्ञान ॥ मिथ्या देह सत्य भगवान ॥ ३८ ॥ ऐसौ बहुविधि ज्ञान विचाऱ्यौ ॥ कृष्णवियोग शोक सबटाऱ्यौ ॥ आप आपमैं मारे जे ते ॥

अपनै बंधु ज्ञाति प्रिय ते ते ॥ ३९ ॥ तिनकौं जो पिंडादिक दाना ॥ मृतक क्रिया जेती विधि नाना ॥ सोई सो अर्ज्जुन सब करि ॥ कृष्ण प्रीतितें नहिं परिहरी ॥ ४० ॥ तब द्वारिका कृष्णबिनु भई ॥ सायर बोरि पलकमें लई ॥ केवल हरिजीके ग्रह जे ते ॥ त्यौंही रहै सकलही ते ते ॥ ४१ ॥ नितविहार जहां हरिजीकौं ॥ सुमरत सुनत उधारणजीकौं ॥ मंगल सकल मंगलनि केरौ ॥ त्रिभुवन सुखहोवै नितचेरौ ॥ ४२ ॥ इस्त्री बाल वृद्ध सब जेते ॥ मरत मरत ऊबरे केते ॥ ते अर्जुनहि दिली ले आए ॥ समाचार पांडवनि सुनाए ॥ ४३ ॥ तुमरे सकल पितामह जेते ॥ कृष्ण प्रयाणो सुनिकरि ते ते ॥ तुमहि वंशधर राजाकियौ ॥ मथुरा तिलक वज्रकों दियौ ॥ ४४ ॥ ते सब तजि उत्तरादिशि गए ॥ कृष्णहि सेइ कृष्णमय भए ॥ जो यह हरिजीको अवतार ॥ जामें कर्मरु गुणविस्तार ॥ ४५ ॥ तिनकौं कहैं सुने नित जोई ॥ सब पापनितैं छूटे सोई ॥ याविधि हरिजीके अवतार ॥ बालापनतें कर्म अपार ॥ ४६ ॥ लोकवेदमें प्रगटहि जेते ॥ गावैं सुनैंविचारै तेते ॥ तब ते लहैं परम आनंद ॥ मिलै कृष्ण छूटै भवफंद ॥ ४७ ॥ ॥ दोहा ॥ ॥ यह हरिको अवतारमैं, तुमसौं कह्यौ सुनाइ ॥ याकौं कहि सुनि सुमरि नर, नरायण मिलि जाइ ॥४८॥ ॥ चौपाई ॥ ब्रह्म निरीह निरंजन स्वामी ॥ सकललोकके अंतरजामी ॥ भक्तनिं हेतधरे अवतार ॥ नाना भांति करैं उद्धार ॥ ४९ ॥ तिनमें कृष्ण स्वयं भगवान ॥ ज्ञान क्रिया सब शक्ति प्रधान ॥ जिनके गुणनि कहै शुकदेव ॥ सुनत हि तऱ्यौ परिक्षित देव ॥ ५० ॥ जिनको नामलिये भवनाहीं ॥ लेकरि राषै निजपद मांहीं

॥१०१॥

ऐसें कृष्ण संतकौवित्त ॥ नमस्कार तिन प्रभुकों नित्त ॥ ५१ ॥ तें अब संतदाससें नाम ॥ देहध-
री जीवनके काम ॥ कृपानिधान भक्तिकरवावै ॥ अपनी शक्ति हृदयमैं ल्यावै ॥ ५२ ॥ ऐसी
विधि भवदुःख मिटावैं ॥ अपनें परमहि पद पहुंचावैं ॥ कृष्णरूप तिन ज्ञान सुनायौ ॥
उद्धवजन निजपद पहुंचायौ ॥ ५३ ॥ सो लें कह्यौ संस्कृत ब्यास ॥ तातें होइन अर्थ
प्रकास ॥ जो पंडित तिहिजानें सोई ॥ दूजो कदे न जानै कोई ॥ ५४ ॥ तातैं तिन अब क-
रुणा कीनी ॥ मो सेवककौं आग्यादीनी ॥ सब लोकनिको हित मनधारी ॥ मम उर ह्वै भाषा
विस्तारी ॥ ५५ ॥ याकौं वाचे सुनैं सुनावैं ॥ ध्यानकरैं ऊंचै स्वरगावैं ॥ ते ते लहैं ज्ञान
वैराग ॥ प्रेम भक्ति हरिकौ अनुराग ॥ ५६ ॥ प्रेम प्रवाह मगन नितरहैं ॥ भव दावानल कदे
न दहैं ॥ एसें ह्वै करि ब्रह्मसमावैं ॥ तजि आनंद जगत नहिं आवैं ॥ ५७ ॥ कबहूं करै कामना
कोई ॥ यातैं लहै सकल सो सोई ॥ तातें जे जे होइ सकाम ॥ अरु जे बडभागी निहकाम
॥५८॥ तिन सबनीकौं भाषा एह॥ भुक्ती अरु मुक्तीको गेह ॥ तातैं यासौं कीजैं प्रीती ॥ यह
है सब संतनकी रीती ॥ ५९ ॥ संवत सोलह शत बांणवा ॥ ज्येष्ठशुक्ल षष्ठी कुजदिवा ॥ संत
दास गुरु आज्ञादीनी ॥ चतुरदास यह भाषाकीनी ॥ ६० ॥ दोहा ॥ परमज्ञान परगट
कियौ, ममघट ह्वै निजदेव ॥ ते मेरे ऊर नितवसैं, संतदास गुरुदेव ॥ ६१ ॥
॥ कुंडलिया ॥ चतुरदास कृत ग्रंथ यह ॥ सोध्यो श्रीधरसाम ॥ अब सम्यक सोधन कियो

पीतांबरसें नाम ॥ पीतांबरसें नाम रामको मारग देख्यो ॥ लघु गुरु अच्छर सोधि बोधिकें छंदसु पेख्यो ॥ अपभ्रंश जे शब्द शुद्ध संस्कृत कियसतुर ॥ जांहि पेखि हैं लोक गोप शब्दनिमैं चतुर ॥ १ ॥

इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधेश्रीशुकपरिक्षितसंवादेभाषायांश्रीकृष्णप्रयाणोनाम एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥ ॥

ताकौं अजमेर निवासी पण्डित हरिशंकरशर्म्मासे पदच्छेद करवाय कर ।
हरिप्रसाद भगीरथजीने गुजराती प्रिंटिंग प्रेसमें छपावायकर प्रसिद्ध किया.

हरिप्रसाद भगीरथजी.
कालकादेवीरोड़–रामवाड़ी
मुंबई.
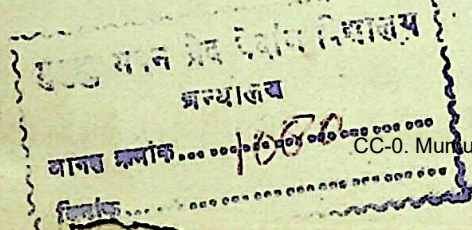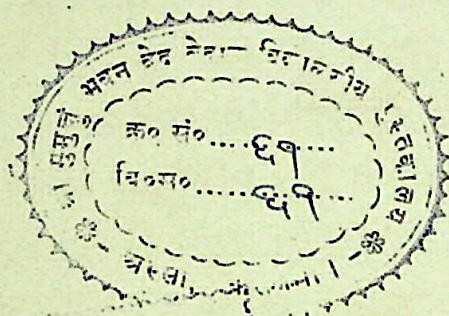
पुस्तक मिलनेका ठिकाणा.

हरिप्रसाद भगीरथजी.

कालकादेवीरोड रामवाड़ी-मुंबई.

इतिश्रीमद्भागवतएकादशस्कंधभाषा
क्र० सं०..........
वि०सं०..............
मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
वाराणसी।
दिनांक